इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों की कविता में मानवाधिकार का स्त्री पक्ष

IKKEESVEIN SADI KI HINDI KAVAYITRIYON KI KAVITA MEIN MANAVADHIKAR KA STREE PAKSH

शोध प्रबंध

(Thesis)

कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ़ फिलोसफ़ी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

Thesis submitted to the University of Calicut for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक :

डॉ. प्रमोद कोवप्रत

सीनियर प्रोफेसर

हिंदी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :

षामिला अब्दुल षुक्कूर

शोध छात्रा

हिंदी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

हिंदी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

2025

DECLARATION

I, SHAMILA ABDUL SHUKKOOR, do hereby declare that this thesis entitled **'IKKEESVEIN SADI KI HINDI KAVAYITRIYON KI KAVITA MEIN MANAVADHIKAR KA STREE PAKSH'** is a record of bonafide research work carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship or other similar Title or Recognition. Further, declare that the thesis is free from AI generated contents. This research work was supervised by Dr. PRAMOD KOVVAPRATH, Senior Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

C U Campus
Date : 3-07-2025

Shamila Abdul Shukkoor
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

Certificate

This is to certify that no corrections were suggested by the adjudicators of the PhD thesis of Shamila Abdul Shukkoor.

C U Campus

16.02.2026

Dr.Pramod Kovvaprath

Dr. PRAMOD KOVVAPRATH
Senior Professor
Department of Hindi
University of Calicut, Malappuram Dt.
Kerala - 673635

Dr. PRAMOD KOVVAPRATH
Senior Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **'IKKEESVEIN SADI KI HINDI KAVAYITRIYON KI KAVITA MEIN MANAVADHIKAR KA STREE PAKSH'** is a bonafide record of research work carried out by Smt. Shamila Abdul Shukkoor, under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any other University.

C.U.Campus
Date : 03 | 07 | 2025

Dr. Pramod Kovvaprath
(Supervising Teacher)

Dr. PRAMOD KOVVAPRATH
Senior Professor
Department of Hindi
University of Calicut, Malappuram Dt.
Kerala - 673635

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन i - v

पहला अध्याय

मानवाधिकार और उसका स्त्री पक्ष :एक सामान्य विश्लेषण **1 – 39**

1.1. विषय प्रवेश

1.2. मानवाधिकारों का इतिहास

1.2.1. मैग्ना कार्टा

1.2.2. द पेटिशन ऑफ राइट **(1628)**

1.2.3. संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा **(1776)**

1.2.4. मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा **(1789)**

1.2.5. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

1.3. मानवाधिकार **:** अर्थ एवं परिभाषा

1.4. भारत में मानवाधिकार

1.4.1. भारतीय संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार

1.4.1.1. समता का अधिकार

1.4.1.2. स्वतंत्रता का अधिकार

1.4.1.3. शोषण के विरुद्ध अधिकार

1.4.1.4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

1.4.1.5. संस्कृति और शिक्षा के संबद्ध अधिकार

1.4.1.6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

1.5. भारत का मानवाधिकार अधिनियम

1.5.1. अधिनियम का नाम एवं उद्देश्य

1.5.2. भारत की स्त्रियाँ और मानवाधिकार

1.5.2.1. भारतीय संविधान में नारी

1.5.2.1.1. विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद 1**4)**

1.5.2.1.2. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16)

1.5.2.1.3. वाक् – स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकार (अनुच्छेद19)

1.5.2.1.4. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 21)

1.5.2.1.5. मनुष्य के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)

1.5.2.1.6. राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व (अनुच्छेद 39)

1.5.2.1.7. प्रसूति सहायता के लिए उपबंध (अनुच्छेद 42)

1.5.2.1.8. मूल कर्तव्य (अनुच्छेद 51)

1.5.2.1.9. मताधिकार एवं निर्वाचन नामावली (अनुच्छेद 325, 326)

1.5.3. महिला अधिकार संबंधी अधिनियम

1.5.3.1. विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856)

1.5.3.2. बाल विवाह निरोधक अधिनियम (1929)

1.5.3.3. चलचित्र अधिनियम (1952)

1.5.3.4. विशेष विवाह अधिनियम (1954)

1.5.3.5. अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम (1956)

1.5.3.6. दहेज निवारण अधिनियम (1961)

1.5.3.7. औषधियों द्वारा गर्भ गिराने से संबंधी अधिनियम (1971)

1.5.3.8. समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976)

1.5.3.9. स्त्री अशिष्ट रूपण अधिनियम (1986)

1.5.3.10. प्रसवपूर्ण निदान तकनीकी अधिनियम (1994)

1.6. महिलाओं का वर्गीकरण

1.6.1. अवयस्क महिलाएँ

1.6.2. वयस्क महिलाएँ

1.6.3. विवाहित महिलाएँ

1.6.4. विधवा

1.7. महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग

1.7.1. सदस्यों की नियुक्ति

1.7.2. महिला आयोग के कर्तव्य

1.7.3. महिला अधिकारों का वर्गीकरण

1.7.3.1. कामकाजी महिलाओं के अधिकार

1.7.3.2. वैवाहिक अधिकार

1.7.3.2.1. हिंदू विवाह अधिनियम

1.7.3.2.2. मुस्लिम शादी का कानून (इस्लामी कानून)

1.7.4. धार्मिक अधिकार

1.7.5. सामाजिक अधिकार

1.8. महिला अधिकारों का वैश्विक परिदृश्य

1.9. महिला मानवाधिकार का नारीवादी दृष्टिकोण

1.9.1. उदार नारीवाद

1.9.2. मार्क्सवादी नारीवाद

1.9.3. समाजवादी नारीवाद

1.9.4. रेडिकल नारीवाद

1.10. निष्कर्ष

दूसरा अध्याय

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की विकास यात्रा **40 – 79**

2.1. विषय प्रवेश

2.2. इक्कीसवीं सदी की कविता की ज़मीन

2.2.1. व्यक्ति और समाज

2.2.2. जेंडर और यौनिकता : उभरती सोच एवं समाज

2.2.3. सोशल मीडिया और समाज

2.2.4. लोकतंत्र और राजनीति

2.2.5. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण

2.2.6. धर्मांधता और सांप्रदायिकता

2.3. हिंदी कविता : विकास के चरण

2.3.1. भारतेंदु युग

2.3.2. द्विवेदी युग

2.3.3. छायावाद

2.3.4. प्रगतिवाद

2.3.5. प्रयोगवाद

2.3.6. नई कविता

2.3.7. अन्य काव्यांदोलन

2.4. इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ

2.4.1. सांस्कृतिक परिवर्तन

2.4.2. घटती संवेदनशीलता

2.4.3. भूमंडलीकरण

2.4.4. मूल्य दृष्टि

2.4.5. पारिस्थितिक शोषण

2.4.6. आदिवासी जीवन की स्थिति

2.4.7. दिव्यांग जन की व्यथा

2.4.8. सांप्रदायिकता

2.4.9. वृद्धावस्था का चित्रण

2.4.10. लोकतंत्र की दशा

2.4.11. किसानों की स्थिति

2.4.12. अवसाद और आशावाद

2.5. निष्कर्ष

तीसरा अध्याय

हिंदी कविता में स्त्री स्वर : एक सर्वेक्षण **80 – 123**

3.1. विषय प्रवेश

3.2. स्त्री कविता की पहचान

3.2.1. थेरीगाथाएँ

3.3. आदिकाल की कवयित्रियाँ

3.3.1. मुक्ताबाई

3.4. डिंगल की कवयित्रियाँ

3.4.1. भीमा चारणी

3.4.2. पद्मा चारणी

3.4.3. बिरजूबाई

3.4.4. चम्पादे रानी

3.4.5. हरिजी रानी चावड़ी जी

3.4.6. रानी रारधरी जी

3.5. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ

3.5.1. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

3.5.1.1. निर्गुण धारा की कवयित्रियाँ

3.5.1.1.1. उमा

3.5.1.1.2. पार्वती

3.5.1.1.3. सहजोबाई

3.5.1.1.4. दयाबाई

3.5.1.1.5. इंद्रामती

3.5.1.2. सगुण भक्तिधारा की कवयित्रियाँ

3.5.1.2.1. कृष्ण काव्य की लेखिकाएँ

3.5.1.2.1.1. मीराबाई

3.5.1.2.1.2. गंगाबाई

3.5.1.2.1.3. ब्रजदासी रानी बाँकावती

3.5.1.2.1.4. रानी बख्त कुँवरि

3.5.1.2.1.5. महारानी सोनकुँवरि

3.5.1.2.1.6. वृषभानकुँवरि महारानी

3.5.1.2.1.7. ताज

3.5.1.2.2. राम काव्य की लेखिकाएँ

3.5.1.2.2.1. मधुर अली

3.5.1.2.2.2. प्रेम सखी

3.5.1.2.2.3. प्रताप कुँवरि बाई

3.5.1.2.2.4. तुलछराय

3.5.2. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

3.5.2.1. रीतिकाल की कवयित्रियाँ

3.5.2.1.1. प्रवीणराय पातुर

3.5.2.1.2. रूपवती बेगम

3.5.2.1.3. तीन तरंग

3.5.2.1.4. सुंदर कली

3.5.3. आधुनिक कालीन कवयित्रियाँ

3.5.3.1. महादेवी वर्मा

3.5.3.2. सुभद्रा कुमारी चौहान

3.5.3.3. शकुंतला माथुर

3.5.3.4. कीर्ति चौधरी

3.5.3.5. सुमन राजे

3.5.3.6. अनामिका

3.5.3.7. कात्यायनी

3.5.3.8. सुशीला टाकभौरे

3.5.3.9. नीलेश रघुवंशी

3.5.3.10. निर्मला पुतुल

3.5.3.11. सविता सिंह
3.5.3.12. गगन गिल
3.5.3.13. ज्योति चावला
3.5.3.14. जसिंता केरकेट्टा
3.6. निष्कर्ष

चौथा अध्याय

मानवाधिकार का स्त्री पक्ष : पितृतंत्र एवं महिलाएँ **124 – 151**

4.1. विषय प्रवेश
4.2. पितृसत्तात्मक व्यवस्था
4.3. पितृस्थानीय निवास एवं वंशानुक्रमण
4.4. पितृतंत्र एवं महिला अधिकार
4.5. स्त्री को बोनसाई बनाने की साजिश
4.6. सहनशीलता एवं चुप्पी
4.7. कन्यादान
4.8. विवाह संस्था
4.9. पारिवारिक समस्या
4.10. अकेली स्त्री और समाज
4.11. स्त्री देह की राजनीति
4.12. वस्त्र पर अधिकार
4.13. मात्र भाषण बनती स्त्री सशक्तिकरण
4.14. निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

मानवाधिकार और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा **152 – 187**

5.1. विषय प्रवेश
5.2. ऑनर किलिंग (असम्मान हत्या)
5.3. कन्या भ्रूण हत्या
5.4. घरेलू हिंसा
5.5. तेजाब हमले की समस्या
5.6. ऑनलाइन / प्रौद्योगिकी प्रेरित हिंसा
5.7. बलात्कार
5.8. कामकाजी स्त्रियों की स्थिति
5.9. आर्थिक स्वावलंबन

5. 10. घरेलू श्रम एवं महिला अधिकार
5.11. निष्कर्ष

छठा अध्याय

स्त्री अस्मिता एवं मानवाधिकार **188 – 213**

6.1. विषय प्रवेश
6.2. स्त्री : समाज, अस्मिता एवं अधिकार
6.3. दलित औरतों की अस्मिता एवं अधिकार
6.4. आदिवासी औरत के अधिकार की समस्याएँ
6.5. क्वीर औरतों की अस्मिता एवं अधिकार
6.6. महिला लेखक का अस्मितामूलक अधिकार
6.7. वृद्धाओं की अस्मिता एवं अधिकार
6.8. महिला कलाकारों की अस्मिता
6.9. यौन कर्मियों की अस्मिता एवं अधिकार
6.10. निष्कर्ष

उपसंहार **214 – 223**

संस्तुतियाँ **224 - 225**

सहायक ग्रंथ सूची **226 – 249**

परिशिष्ट I. लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम, एन.एच.आर.सी, नई दिल्ली – प्रमाण पत्र
II. लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम की विभिन्न झाँकियाँ
III. लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम – तिहाड़ जेल (महिला प्रकोष्ठ) की शैक्षणिक भ्रमण रिपोर्ट
IV. लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम – आशा किरण षेल्टर होम (एन.जी.ओ) की शैक्षणिक भ्रमण रिपोर्ट

प्राक्कथन

किसी भी कालखंड का साहित्य तत्कालीन परिस्थितियों की उपज होती है। समाज मानव निर्मितियों के आधार पर चलता है। मानव का कर्तव्य बनता है कि वह समाज के सदस्यों की रक्षा करें, उन्नति पर पहुँचा दे और उनके लिए हितकारी कार्य करें। जीवन जीने का अधिकार ही मानवाधिकार है। अगर एक व्यक्ति अपना जीवन निडर होकर अपनी चिंताओं एवं आशाओं के आधार पर जी पा रहा है, तो उसे मानवाधिकार प्राप्त व्यक्ति कह सकता है। जब तरह-तरह के बदलाव समाज में आते हैं, तो साहित्य में प्रतिबिंबित होना तो स्वाभाविक है।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता को अपने समय और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज़ कहना अधिक समीचीन लगता है। साहित्यिक विधाओं में कविता ने अलग पहचान बनाई है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याएँ कविता में द्रष्टव्य हैं। मानव जीवन स्थितियों पर ही समकालीन कविता केंद्रित है। मानव जीवन के अधिकारों को कविता ने महत्व दिया। मानवाधिकारों के विभिन्न पक्षों को समकालीन कविता ने नापा है। स्त्रियों के मानवाधिकार की बात तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में एक ज्वलंत मुद्दा है।

आधुनिक समाज में स्त्रियों के खिलाफ़ होने वाले अत्याचार एवं अन्याय को नकारा नहीं जा सकता। पितृसत्ता के विभिन्न उसूलों से स्त्री पर थोपी गई रीतियाँ उसके मानवाधिकार का उल्लंघन अवश्य हैं। बदलती सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक स्थितियों के साथ स्त्री की स्थिति में जो सकारात्मक बदलाव आया है, वह नगण्य है। अपने भोगे हुए यथार्थ को आवाज़ देना, कवयित्रियों ने अपना कर्तव्य समझा। मानवाधिकार के स्त्री पक्ष को स्त्री ही बेहतर ढंग से पेश कर सकती है। सहानुभूति से ज़्यादा स्वानुभूति ही स्त्री की स्थिति को प्रस्तुत कर सकती है। स्वानुभूतिपरक लेखन ही स्त्री की यातनाओं को शब्द बद्ध कर सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में कविता में मानवाधिकार के स्त्री पक्षीय चिंतन को कवयित्रियों के माध्यम से अध्ययन करने का प्रयास हुआ है।

मानवाधिकार से जुड़कर रेणु दुबे की 'मानवाधिकार एवं दलित समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन', सरला त्रिपाठी की 'मानवाधिकार की अवधारण एवं समकालीन काव्य', एल.मुरुगन की 'मानवाधिकार के संरक्षण में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की भूमिका', गुकमल प्रीत पाल सिंह की 'संयुक्त राष्ट्र तथा मानवाधिकारों के प्रति बदलता दृष्टिकोण', राजेश कुमार की 'प्रमुख दलित महिला रचनाकारों की कहानियों में मानवाधिकार',धर्मेन्द्र सिंह की 'भारत में मानवाधिकार', सत्यनारायण साबत की 'भारत में मानवाधिकार', प्रशांत अटकन की 'मानवाधिकार दर्शन के विमर्श', डॉ.मोहम्मद हनीफ़ ख़ान शास्त्री की 'मानव अधिकार' (वेदों के आलोक में), राजा बाला सिंह की 'मानवाधिकार और महिलाएँ', मुकुल स्त्रीवास्तव की 'मानवाधिकार और मीडिया', नंदकिशोर आचार्य की 'मानवाधिकार की संस्कृति', प्रभाकरन हेब्बार इल्लत की 'मानवाधिकार और समकालीन कविता', डॉ.पूरण मल की 'मानवाधिकार सामाजिक न्याय और भारत का संविधान' आदि पुस्तकें मानवाधिकार के अध्ययन की दिशा एवं दशा की ओर संकेत करती हैं। इसके अलावा पत्र-पत्रिकाओं में प्रस्तुत विषय संबंधी काफी लेख छपकर आये हैं।

इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों की कविता के परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार के स्त्रीपक्ष का अध्ययन एक महत्वपूर्ण और नया विषय है। साथ ही एक स्त्री होने के नाते कवयित्रियों की कविता में मानवाधिकार के स्त्री पक्षीय चिंतन का अध्ययन करना ज़्यादा सटीक लगा। इसलिए स्वानुभूति की दृष्टि से देखा जाए तो अध्ययन दुगुनि दृष्टि से मज़बूत प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक है – 'इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों की कविता में मानवाधिकार का स्त्री पक्ष'। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे छह अध्यायों में विभाजित किया है।

पहला अध्याय है – 'मानवाधिकार और उसका स्त्री पक्ष: एक सामान्य विश्लेषण'। इस अध्याय में मानवाधिकार के इतिहास, उत्पत्ति, मानवाधिकार की संवैधानिक स्थिति, मानवाधिकार

का राष्ट्रीय परिदृश्य, महिला आयोग, महिला अधिकारों का वैश्विक परिदृश्य आदि का विश्लेषण किया गया है।

दूसरा अध्याय है – 'इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की विकास यात्रा'। इसमें इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता के विकास के चरणों का उल्लेख है। इक्कीसवीं सदी की कविता की ज़मीन यानी कि जिस परिप्रेक्ष्य में कविता की सृष्टि हुई है, उन सामाजिक राजनैतिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्यों को परखने का प्रयास किया गया है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की यात्रा में उद्भूत काव्यांदोलनों के साथ इस कालखंड की कविताओं की नूतन प्रवृत्तियों के अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

तीसरा अध्याय – 'हिंदी कविता में स्त्री स्वर एक सर्वेक्षण' है। इसमें हिंदी कविता में जिस प्रकार स्त्री स्वर का आगमन हुआ, उसकी पहचान, विभिन्न कालखंड़ों जैसे कि आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल की कविताओं में स्त्री स्वरों की उपस्थिति हुई है, उसका अध्ययन हुआ है।

चौथा अध्याय है – 'मानवाधिकार का स्त्री पक्ष पितृतंत्र एवं महिलाएँ'। पितृतंत्र किस प्रकार महिलाओं के अधिकारों को कब्जा करता है, उसको सशक्त ढंग से इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। इस अध्याय में पितृसत्ता, पितृस्थानीय निवास एवं वंशानुक्रमण, पितृतंत्र का महिला अधिकार पर प्रभाव से जुड़ी समस्याएँ, विवाह संस्था एवं कन्यादान से संबंधित समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ, स्त्री देह एवं वस्त्र पर जुड़े अधिकारों की समस्याएं, मात्र भाषणों एवं सम्मेलनों में उमड़नेवाली स्त्री सशक्तिकरण जैसे मुद्दों को समकालीन कविता में कवयित्रियों की दृष्टि में किस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है, उसका अध्ययन हुआ है।

पांचवाँ अध्याय है – 'मानवाधिकार एवं महिलाओं के विरुद्ध हिंसा'। भारतीय समाज में महिलाओं पर होनेवाली हिंसा एक ज्वलंत समस्या है। महिलाओं के खिलाफ़ शारीरिक, लैंगिक,

एवं मानसिक रूप से हिंसाएँ होती हैं। इस अध्याय में महिलाओं पर होनेवाली हिंसाओं का अध्ययन है। ऑनर किलिंग, कन्या भ्रूणों की हत्या, घरेलू हिंसा, तेजाब हमला, प्रौद्योगिकी प्रेरित हिंसा, बलात्कार, कार्यक्षेत्र में हिंसा, आर्थिक हिंसा, घरेलू श्रम से जुड़ी समस्याएँ आदि महिला अधिकार के उल्लंघन से जुड़ी हिंसा के विविध रूप हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों के काव्य संसार ने बारीकी से अभिव्यक्त किया है। इस अध्याय में महिला अधिकारों के उल्लंघन करनेवाली विभिन्न हिंसात्मक प्रवृत्तियों को कवयित्रियों की कविताओं के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

छठा अध्याय – 'स्त्री अस्मिता एवं मानवाधिकार' है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के ज़रिए स्त्री के अस्मितामूलक अधिकारों पर आनेवाले प्रश्नचिह्न पर आवाज़ उठायी है। इस अध्याय के अंतर्गत स्त्रियों पर समाज द्वारा थोपी भूमिकाओं से जुड़कर उनकी अस्मिता की समस्या, तथाकथित हाशिएकृत औरतें जैसे कि दलित औरतें, आदिवासी औरतें, वृद्धाएँ, क्वीर औरतें आदि की अस्मिता से जुड़ी समस्याएँ निहित हैं। साथ ही विभिन्न कार्यक्षेत्र की स्त्रियों की समस्याएँ एवं अस्मितामूलक अधिकारों की समस्याएँ भी इसमें निहित हैं। इन समस्याओं का इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों की कविताओं के परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण यहाँ किया गया है।

अंत में उपसंहार प्रस्तुत है जो इस अध्ययन का सारांश है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के सीनियर प्रोफेसर डॉ. प्रमोद कोवप्रत जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। उन्होंने मेरे अध्ययन से जुड़ी त्रुटियों को सुलझाने में तथा प्रेरणा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह शोध-प्रबंध उनके अमूल्य निर्देशन, प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन का परिणाम है। वे प्रारंभ से लेकर अंतिम चरण तक प्रोत्साहित करते रहे। मैं उनके प्रति दिल से आभार व्यक्त करती हूँ।

विभाग के अध्यक्ष एवं अन्य गुरुवरों की प्रेरणा एवं सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मेरे सहयोगी साथियों के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ। मेरे आदरणीय माताजी श्रीमती षफ़ीना षुक्कूर तथा स्वर्गीय पिताजी अब्दुल षुक्कूर हुसैन, बहनों एवं भाईयों के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनके बिना यह कार्य संपन्न नहीं होता। मेरे जीवन सखा श्री. डानिश एवं अन्य परिवार वालों की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन ने भी मुझे निरंतर सक्रिय रहने के लिए प्रेरणा दी। उन सभी के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

षामिला अब्दुल षुक्कूर

पहला अध्याय

मानवाधिकार और उसका स्त्री पक्ष : एक सामान्य विश्लेषण

1.1. विषय प्रवेश

मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानवोचित लक्षणों या गुणों के कारण प्राप्त होते हैं। समस्त मानव को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अधिकार है। सभी व्यक्ति जन्म से एक समान हैं और पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, लेकिन स्वतंत्रता का उपभोग मानव तभी कर सकते हैं, जब उसे सुरक्षा प्राप्त हो, साथ ही साथ दूसरों का सहयोग हो। ये हमारे मानवीय चिंतन और सद्भावना पर आधारित होते हैं। मानवाधिकार के पीछे संकीर्णताओं से मुक्त समाज के सपने हैं।

मानवाधिकार की अवधारणा व्यापक जीवन दर्शन पर केंद्रित है, जिसके अंतर्गत मानव की ज़िन्दगी एवं सामाजिक व्यवस्था आ जाती हैं। इसका मूल सिद्धांत 'सर्वो भवंतु सुखिनः' पर आधारित है तथा इसी को केंद्र में रखकर ही मानव की गरिमा, स्वतंत्रता, जीवन के अधिकार आदि हैं। मानवाधिकार की यह अवधारणा शताब्दियों से हुए मानव के संघर्ष का फल है। इसके समर्थक विश्व के कोने-कोने में जन्में हैं, जिनके उग्र, जोशीले, अनवरत संघर्षों से ही इसकी अवधारणा हुई। मानवाधिकारों के प्रति मानव तभी सजग हो सकता है जब उसे अपने अधिकारों के बारे में ज्ञान हो। इसकी संकल्पना को सामान्यतः एक नैतिक आदर्श या अवधारणा की तरह लोगों ने स्वीकारा है। मानवाधिकार की संकल्पना में एक ऐसी सार्वभौमिक व्यवस्था का सपना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सभी तरह की पीड़ाओं से मुक्त एक सुखी एवं सार्थक जीवन जी सके।

1.2. मानवाधिकारों का इतिहास

मानवाधिकार एक विशेष समय में उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि इसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। कुछ लोग मानवाधिकार की शरुआत अंग्रेज़ों के खिलाफ़ स्वतंत्रता आंदोलन के समय से प्रारंभ हुआ मानते हैं। लेकिन हम भारतीय इतिहास की ओर ध्यान दें तो पता चलेगा कि प्राचीन काल से ही मानवाधिकार की रक्षा करनेवाले कई उदाहरण मिलते हैं। वैदिक काल से भारत में सहनशीलता और दूसरों की आस्था का सम्मान करते हुए मानवाधिकार संरक्षण की परंपरा रही है।

उस समय एक विकसित न्याय व्यवस्था का रूप देख सकते थे, लेकिन मानवाधिकार की संकल्पना नहीं थी।

मानवाधिकार की उत्पत्ति 539 ईसा पूर्व से मानी जाती है। बेबिलोन पर विजय प्राप्त करते हुए साइरस महान ने दासों को मुक्त कर दिया और घोषणा की कि सभी लोगों को अपना धर्म चुनने का अधिकार है। साथ ही नस्लीय समानता की स्थापना भी की। फिर इन सिद्धांतों को पके हुए मिट्टी के सिलेंडर पर दर्ज किए और बाद में यह साइरेस सिलेंडर नाम से जाने गए। ये प्रावधान मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के चार लेखों के लिए प्रेरणा बने। इसे इतिहास में पहली मानवाधिकार की घोषणा कही जाती है। इसके बाद मानवाधिकारों का विचार पूरे भारत, ग्रीस और यूरोप में फैल गया। बाद में मानवाधिकार की प्रगति में शामिल होनेवाले प्रमुख चरण रहे मैग्ना कार्टा (1215), पेटिशन ऑफ राइट (1628) संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा (1776), मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा (1789) तथा मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948)।

1.2.1. मैग्ना कार्टा

मानवाधिकार की स्थापना के प्रारंभिक पड़ाव के रूप में मैग्ना कार्टा या 'ग्रेट चार्टर' को देखा जाता है। "आधुनिक लोकतंत्र के विकास में सबसे महत्वपूर्ण कानूनी दस्तावेज़ों में से एक के रूप में देखा जानेवाला मैग्ना कार्टा स्वतंत्रता की स्थापना के संघर्ष में एक महत्वपूर्ण मोड़ था।"[1]

इंग्लैंड़ के राजा जॉन ने कई रीति-रिवाज़ों का उल्लंघन किया, जिसके ज़रिए शासन चल रहा था। उनकी प्रजा ने उन्हें मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया। इसमें मानवाधिकारों के रूप में किसे माना जाए, इसका उल्लेख था। इसमें प्रमुख रूप से चर्च का सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त होने का अधिकार, नागरिकों को संपत्ति रखने तथा प्राप्त करने का अधिकार, अत्यधिक कर से सुरक्षित रहने का अधिकार, रिश्वतखोरी पर रोक लगाने का प्रावधान,

संपत्ति की मालिक विधवाओं को पुर्नविवाह न करने का प्रावधान आदि शामिल थे। इसने कानून के समक्ष समानता के सिद्धांत को स्थापित किया।

1.2.2. द पेटिशन ऑफ राइट (1628)

इसमें लोगों के अधिकारों को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। मानवाधिकार की स्थापना का दूसरा चरण द पेटिशन ऑफ राइट (1628) को माना जाता है। इसे अंग्रेज़ी संसद द्वारा तैयार किया गया था। इसे नागरिक स्वतंत्रता के बयान के रूप में चार्लस प्रथम को भेजा गया। राजा की अलोकप्रिय विदेश नीति को संसद ने इंकार कर दिया। इसीलिए सरकार को अपनी अर्थ व्यवस्था के लिए जबरन ऋण लेना पड़ा। साथ ही प्रजा के घरों में सैनिकों की संख्या को कम करना पड़ा। उस समय राजा की मनमानी चलने लगी। मनमाने ढंग से गिरफ़्तारी और कारावास शुरू कर दी गई। उस समय पहले के कानूनों पर आधारित होकर सर एडवाड कोक ने 'द पेटिशन ऑफ राइट' (1628) शुरू की, जिसमें चार सिद्धांत थे, वे इस प्रकार हैं – संसद की सहमति के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता है, किसी भी प्रजा को बिना कारण कैद नहीं किया जा सकता, कोई भी सैनिक नागरिकों पर हमला नहीं कर सकते, शांति के समय में मार्शल लॉ का उपयोग न करें।

1.2.3. संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा (1776)

4 जुलाई 1776 को युनाइटेड स्टेट्स कांग्रेस ने स्वतंत्रता की घोषणा को मंजूरी दी। घोषणा का औपचारिक स्पष्टीकरण थॉमस जेफरसन ने किया था। घोषणा पत्र में प्रमुख रूप से दो विषयों पर ज़ोर दिया गया, एक तो व्यक्तिगत अधिकार और दूसरा क्रांति का अधिकार रहा। बिल ऑफ राइटस 1791 में स्थापित हुआ और यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, हथियार रखने और धारण करने का अधिकार, एकत्र होने की स्वतंत्रता आदि पर बल देता है।

1.2.4. मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा (1789)

सन् 1789 में फ्रांस के लोगों ने राजाशाही को खत्म कर दिया और पहले फ्रांसीसी गणराज्य की स्थापना की। राष्ट्रीय संविधान सभा द्वारा फ्रांस गणराज्य के लिए संविधान लिखने की दिशा में पहला कदम अधिकारों की घोषणा रहा। घोषणा पत्र के अनुसार "स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा और उत्पीड़न के प्रतिरोध" के अधिकारों की गारंटी दी जानी चाहिए। घोषणा पत्र को सामान्य जन की इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया।

1.2.5. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा को मानवाधिकारों के इतिहास में एक मील का पत्थर माना जाता है। "दुनिया के सभी क्षेत्रों से अलग-अलग कानूनी और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले-प्रतिनिधियों द्वारा तैयार किए गए इस घोषणा पत्र को 10 दिसंबर 1948 को पेरिस में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा (महासभा संकल्प 217 ए) सभी लोगों और सभी देशों के उपलब्धियों के एक सामान्य मानक के रूप में घोषित किया गया था।"[2]

मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा 30 अनुच्छेद में विभाजित है। वे निम्नलिखत हैं –

- अनुच्छेद 1 के अनुसार मनुष्य स्वतंत्र पैदा होते हैं और सम्मान और अधिकार के समान हकदार है। साथ ही मनुष्य को एक दूसरे के प्रति भाइचारे की भावना रखनी चाहिए।
- अनुच्छेद 2 मनुष्य के बीच रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या किसी भी प्रकार के भेदभाव नहीं होना चाहिए।
- अनुच्छेद 3 में प्रत्येक व्यक्ति की जीवन, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सुरक्षा के अधिकार की घोषणा है।
- अनुच्छेद 4 गुलामी या दास व्यापार को पूर्ण रूप से प्रतिबंधित करता है।

- अनुच्छेद 5 व्यक्ति के अनुसार किसी के साथ भी अपमानजनक व्यवहार न करें या दंड नहीं दिया जाए।
- अनुच्छेद 6 व्यक्ति को हर जगह कानून के समक्ष एक व्यक्ति के रूप में मान्यता पाने के अधिकार पर ज़ोर देता है।
- अनुच्छेद 7 कानून के समक्ष व्यक्तियों की समता पर है।
- अनुच्छेद 8 संविधान या कानून द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करनेवाले कृत्यों के लिए सक्षम राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों द्वारा प्रभावी उपचार पाने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 9 किसी व्यक्ति के मनमाने ढंग से गिरफ्तारी, नज़रबंदी या निर्वासित करने को रोकती है।
- अनुच्छेद 10 प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और दायित्वों के निर्धारण तथा अपने विरुद्ध किसी अपराधिक आरोप के संबंध में निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा सार्वजनिक सुनवाई के लिए पूर्ण एवं समान अधिकार देते हैं।
- अनुच्छेद 11 के अनुसार जब तक एक व्यक्ति सार्वजनिक सुनवाई में कानून के सामने दोषी साबित नहीं होता तब तक उसे निर्दोष माने जाने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 12 के अंतर्गत एक व्यक्ति की निजता, परिवार, घर या पत्र-व्यवहार में मनमाना हस्तक्षेप एवं उसके सम्मान और प्रतिष्ठा के विरुद्ध होनेवाले हमले के विरुद्ध कानूनी संरक्षण मिलने का अधिकार है।

- अनुच्छेद 13 प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक राज्य की सीमाओं के भीतर आवागमन और निवास की स्वतंत्रता का अधिकार है। एक व्यक्ति के अपने देश या किसी देश को छोड़ने तथा वापस लौटने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 14 के प्रत्येक व्यक्ति के सताए जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार। इसके अंतर्गत गैर राजनीति, अपराध एवं संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य नहीं आएँगे।
- अनुच्छेद 15 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र विशेष की नागरिकता लेने का अधिकार है। किसी को भी मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित न किया जाएगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जाएगा।
- अनुच्छेद 16 में बालिग स्त्री पुरुषों द्वारा किसी जाति, राष्ट्रीयता या पंथ की रुकावटों से हटकर विवाह करने और परिवार स्थापन करने, वैवाहिक जीवन जीने तथा विवाह विच्छेद करने का समान अधिकार है।
- अनुच्छेद 17 में प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर संपत्ति रखने तथा मनमाने ढंग से अपनी संपत्ति से वंचित न किया जाने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 18 प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतरात्मा और पंथ की स्वतंत्रता के अधिकार पर है। इस अधिकार के तहत अपने पंथ या विश्वास बदलने तथा दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तौर पर अपने विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना एवं व्यवहार के द्वारा प्रकट करने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 19 विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित है। इसके अंतर्गत किसी व्यक्ति को बिना किसी हस्तक्षेप के कोई राय रखना, किसी भी माध्यम के ज़रिए

सीमाओं की परवाह न करके किसी की सूचना और धारणा का अन्वेषण करने का अधिकार है।

- अनुच्छेद 20 के तहत प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्ण ढंग से एक होने और संगठन बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार है। साथ ही व्यक्ति को संघ से जुड़ने एवं बाध्य रहने के लिए मजबूर न किया जा सकता।
- अनुच्छेद 21 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में स्वतंत्र रूप से चुने गए प्रतिनिधि बनते, सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है। जनता की इच्छा सरकार की सत्ता का आधार होना चाहिए। इस इच्छा का प्रकटन समय-समय पर असली चुनावों द्वारा होगा। चुनाव सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा या गुप्त मतदान या किसी अन्य समान स्वतंत्र मतदान पद्धति से कराए जाएँगे।
- अनुच्छेद 22 व्यक्ति की सामाजिक सुरक्षा के अधिकार पर है। प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास एवं गौरव के लिए राष्ट्रीय प्रयत्न या अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आदि के लिए आवश्यक आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का हक है।
- अनुच्छेद 23 रोज़गार के अधिकार से संबंधित है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार काम करने, काम में उचित और सुविधाजनक परिस्थितियाँ प्राप्त करने का अधिकार है। साथ ही समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक पाने तथा अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी संघ बनाने और उसमें भाग लेने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 24 के तहत काम में, घंटों की उचित सीमा, विश्राम एवं अवकाश, समय-समय पर मज़दूरी सहित छुट्टियाँ आदि अधिकार सम्मिलित हैं।

- अनुच्छेद 25 में प्रत्येक व्यक्ति के जीवनस्तर को प्राप्त करने का अधिकार है। इसमें खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा से जुड़ी सुविधाएँ और आवश्यक सामाजिक सेवाएँ सम्मिलित हैं। बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढ़ापा जैसी परिस्थितियों में अगर कोई व्यक्ति आजीविका का साधन न होने पर उसे काबू न कर पाएं तो उसे सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। साथ ही विवाहिता या अविवाहिता माता से जन्मे बच्चे को भी समान सामाजिक संरक्षण का अधिकार प्राप्त है।

- अनुच्छेद 26 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्क होनी चाहिए। अभिभावकों को दी जानेवाली शिक्षा के चुनाव करने का अधिकार है।

- अनुच्छेद 27 स्वतंत्रता पूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनंद लेने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने के अधिकारों पर आधारित है।

- अनुच्छेद 28 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है।

- अनुच्छेद 29 में प्रत्येक व्यक्ति के समाज के प्रति कर्तव्य उस व्यक्ति का समाज में स्वतंत्रता और पूर्ण विकास का प्रावधान शामिल है। व्यक्ति द्वारा स्वतंत्रताओं एवं अधिकारों का उपयोग किसी भी तरह से भी संयुक्त राष्ट्रों के सिद्धांतों एवं उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जाएगा। हर एक व्यक्ति कानून द्वारा निश्चित सीमाओं का पालन करने के लिए बाध्य होगा।

- अनुच्छेद 30 घोषणा में उल्लिखित किसी भी अधिकारों का यह अर्थ नहीं है कि एक व्यक्ति किसी राज्य, समूह या किसी अन्य व्यक्ति की अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का विनाश न करें।

घोषणा का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज इस घोषणा को लगातार दृष्टि में रखते हुए अध्यापन और शिक्षा के द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि इन अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जागृत हो। मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र 30 अनुच्छेदों के माध्यम से यह घोषणा करता है कि हम सभी बिना किसी भेदभाव के समान रूप से अपने मानवाधिकारों के हकदार हैं। ये सभी अधिकार परस्पर संबोधित, अन्योन्याश्रित और अविभाज्य हैं।

1.3. मानवाधिकार : अर्थ एवं परिभाषा

मानवाधिकार मानव को प्रकृतिदत्त अधिकार है जिसका प्रयोग करके मनुष्य अपने सर्वांगीण विकास की दिशा की ओर बढ़ सकते हैं। मानवाधिकार वह विशेषाधिकार है, जिस पर सभी मनुष्यों का समान अधिकार है। छोटे-छोटे मतभेदों को छोड़कर मानवाधिकारों की प्रकृति को प्रत्येक देश में मान्यता प्राप्त है। कार्लमार्क्स ने लिखा है –"मानवाधिकारों की शुरुआत हम वहीं से मान सकते हैं, जब से इंसान ने अपने बारे में सोचना शुरू किया कि उसे भी सम्मानजनक जीवन यापन करने का अधिकार है।"[3] ये न तो मात्र अल्पसंख्यकों के लिए बने हैं, न नहीं बहुसंख्यकों के लिए, वरन् ये संपूर्ण मानव जाति के लिए बने हैं। हर एक मानव का फर्ज़ बनता है कि वह अपने और दूसरों के, दोनों के अधिकारों का संरक्षण करें। जोन डी रोक्कफेल्लेर के अनुसार "हर एक अधिकार का मतलब एक जिम्मेदारी है; हर एक अवसर एक उपकार और हर एक परिग्रह एक कर्तव्य है।"[4] मानवाधिकार मनुष्यों को केवल इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि वे मानव हैं। इसके बिना मानव अपने विकास के संबंध में सोच भी नहीं सकते। हेराल्ड लॉस्की का कथन है –"अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियाँ हैं, जिसके बिना आम तौर पर कोई

भी व्यक्ति सर्वोत्तम रूप पाने की आशा नहीं कर सकता ।"[5] इन परिस्थितियों का मूल सामाजिक स्वीकृति है। वे पूर्ण रूप से मनुष्य पर केंद्रित हैं। एल.के.ओड़ के शब्दों में "मानवाधिकार की रुचि न तो काल्पनिक ईश्वर में है और न अमूर्त शाश्वत चिंतन में उसकी रुचि तथा चिंतन का एकमात्र केंद्र मनुष्य तथा उसकी स्थिति है । उसकी आशाएँ, आकांक्षाएँ, उसके आदर्श, उसकी उपलब्धियाँ तथा दुर्बलताएँ, चिंतन की इसी श्रेणी में आती हैं।"[6]अर्थात मानवाधिकार का केंद्र मनुष्य है। उसकी आकांक्षाएँ, चिंताएँ आदि पर केंद्रित होकर ही मानवाधिकारों का संरक्षण होना चाहिए । प्रो. एच.सुवदनी देवी के अनुसार "मानव अधिकारों का मूल सिद्धांत "सर्वे भवंतु सुखिनः पर आधारित है, और इसी को आधार बनाकर मानव कि गरिमा, मानव की स्वतंत्रता और जीने का अधिकार संबंधी विषयों पर इंसानियत की मर्यादाओं को परिभाषित करने का प्रयास है मानवाधिकार ।"[7] अर्थात् मानवाधिकार से अभिप्राय सभी सुखी, निरोगी हो साथ ही सभी का मंगल एवं कल्याण हो। एनसाइक्लोपीड़िया ब्रिटानिका के अनुसार "मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो किसी व्यक्ति होने के कारण या अंतर्निहित मानवीय भेद्यता के परिणामस्वरूप, या क्योंकि वे न्यायपूर्ण समाज की संभावना के लिए आवश्यक हैं, प्राप्त होते हैं ।"[8] अर्थात् मानवाधिकार किसी व्यक्ति या समूह को इसलिए प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे मानव हैं साथ ही ये न्यायपूर्ण समाज की संभावना के लिए ज़रूरी भी हैं।

1.4. **भारत में मानवाधिकार**

मानवाधिकार एक ऐसा दर्शन है, जो मनुष्य के आनंद और कल्याण पर केंद्रित है । मानवाधिकार मनुष्य की प्रगति के लिए मार्ग दिखाते हैं। इसका लक्ष्य पूर्ण रूप से मानवता पर आधारित है और हर एक व्यक्ति की कुशलता और पूर्णता ही इसका दायित्व है। मनुष्य होने के नाते जो जन्मजात अधिकार उनको प्राप्त होते हैं, उन्हें मानवाधिकार कहलाते हैं। मानवाधिकार और प्राणियों के बीच समानता की परिकल्पना तथा व्यावहारिक जीवन में उसका होना भारतीय

संस्कृति और सभ्यता का आधारभूत गुण है। भारतीय संस्कृति के इतिहास एवं प्राचीन ग्रंथों में मानव के मौलिक अधिकारों का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। भारतीय संविधान में भी सभी मनुष्यों को समान ढंग से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी प्रकार के न्याय दिलाने की व्यवस्था है।

1.4.1. भारतीय संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार

संविधान सभी नागरिकों के लिए व्यष्टि और सामूहिक रूप से कुछ बुनियादी स्वतंत्रता देता है। भारतीय संविधान के तृतीय भाग में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की विस्तृत व्याख्या की गई है। मौलिक अधिकार व्यक्ति के नैतिक एवं भौतिक विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक हैं। जिस प्रकार जीवन जीने के लिए जल आवश्यक है, उसी प्रकार व्यक्तित्व के विकास के लिए मौलिक अधिकारों की आवश्यकता है। इसे छह भागों में विभाजित किया गया है। वे निम्नलिखित हैं-

1.4.1.1. समता का अधिकार

यह अधिकार कानून के समक्ष समानता, धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध करता है। साथ ही रोज़गार के संबंध में समान अवसर मिलने का अधिकार है। संविधान में कहा गया है - "राज्य की तरफ़ से धर्म, जाति, लिंग और वर्ण के नाम पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। राज्य की दृष्टि से सभी नागरिकों को समान मान दिया गया है। लेकिन राज्य के स्त्रियों, बच्चों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए विशेष सुविधा के नियम बनाने का अधिकार दिया गया है।"[9]अर्थात राज्य की तरफ़ से किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए साथ ही स्त्रियों, बच्चों एवं आदि के लिए प्रत्येक नियम बनाने की व्यवस्था भी संविधान में निहित है।

1.4.1.2. स्वतंत्रता का अधिकार

प्रजातंत्र में स्वतंत्रता को ही जीवन माना जाता है। नागरिकों के उत्कर्ष और उत्थान के लिए आवश्यक है, कि उन्हें लेखन, भाषण तथा अपने भाव व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी जाए। उन्हें कम से कम राज्य सरकारों द्वारा यह आश्वासन दिया जाए कि उनकी दैनिक स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया जायेगा। संविधान के अनुसार "भाषण और भावाभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण, निरायुध एक होने की स्वतंत्रता, राज्य के किसी भी कोने निर्विरोध घूमने की स्वतंत्रता, किसी भी तरह की आजीविका को चयन करने की स्वतंत्रता, प्राण और शारीरिक स्वाधीनता का संरक्षण आदि स्वतंत्रताओं को प्रदान करने में राज्य को सक्षम होना है। राज्य को यह अधिकार है कि वह किसी व्यक्ति की इन स्वतंत्रताओं का नियंत्रण कर सकता है, यदि वे समझते हैं कि इनके प्रयोग से समाज को हानि हो सकती हैं।"[10] राज्य के हर एक व्यक्ति को भावाभिव्यक्ति करने, निर्विरोध घूमने, अपनी आजीविका के चयन करने आदि का अधिकार है। साथ ही अगर कोई व्यक्ति समाज के लिए हानिकारक ढंग से अपने अधिकारों का उपयोग करता है तो राज्य उस व्यक्ति की स्वतंत्रताओं का नियंत्रण कर सकता है।

1.4.1.3. शोषण के विरुद्ध अधिकार

संविधान के अनुसार "मनुष्यों का क्रय-विक्रय बेगार तथा किसी अन्य प्रकार का ज़बरदस्ती लिया गया श्रम अपराध घोषित किया गया है। यह बताया गया है कि 14 वर्ष से कम आयुवाले बालकों को कारखाने, खान अथवा अन्य संकटमय नौकरी में नहीं लगाया जा सकता।"[11] इस अधिकार का उद्देश्य लोगों को शोषण से बचाना है साथ ही इच्छा के विरुद्ध श्रम करने के लिए मजबूर करने में रोक लगाना। 14 वर्ष की आयु वाले बच्चों को कारखाना, खान तथा अन्य संकटमय नौकरियाँ नहीं करा सकते।

1.4.1.4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

संविधान द्वारा भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 25, 26, 27 और 28 में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार उल्लिखित है। "राज्य में किसी भी धर्म को अधिक महत्व नहीं दिया जाएगा। धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ धर्मविरोधी नहीं होता। अतः प्रत्येक व्यक्ति की आयु, नैतिकता और स्वास्थ्य को हानि पहुँचाए बिना अपना धर्म पालन करने का संपूर्ण अधिकार है।"[12] यह अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है। इसके तहत हर व्यक्ति को अपने धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार है। धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार इस बात को भी सुनिश्चित करता है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा। साथ ही धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा।

1.4.1.5. संस्कृति और शिक्षा के संबद्ध अधिकार

संस्कृति और शिक्षा को सत्ता विकास का रीढ़ कहा जाता है। संविधान द्वारा भारतीय संस्कृति को बचाने का प्रयास भी हुआ है। अल्पसंख्यकों की शिक्षा तथा संस्कृति से संबंद्ध हितों की रक्षा की व्यवस्था की गयी है। संविधान के अनुसार "नागरिकों के किसी भी समूह को जो भारत या उसके किसी भाग में रहते हैं, अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने के अधिकार हैं। धर्म के नाम पर किसी भी इंसान को शिक्षण संस्थान में नाम लिखने से रोका नहीं जा सकता।"[13] संस्कृति और शिक्षा से जुड़े अधिकार समाज के सभी वर्गों के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसमें लोगों को कला, शिक्षा एवं अन्य सांस्कृतिक अनुभवों तक पहुँचने का अधिकार प्राप्त है। अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है। शैक्षिक अधिकारों से अभिप्राय चौदह वर्ष की उम्र तक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।

1.4.1.6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को अतिक्रमण से बचाने की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का संरक्षक माना गया है। प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान में मौलिक अधिकारों के उल्लेख से भी अधिक अहम बात उसे क्रियान्वित करने की व्यवस्था है और इसके बिना मौलिक अधिकारों की व्यवस्था अर्थहीन है। इसी उद्देश्य से ही 'संवैधानिक उपचारों का अधिकार' को संविधान में स्थान दिया गया है। संविधान के अनुसार "नागरिक अपने अधिकारों को लागू करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालयों के शरण ले सकते हैं।"[14]

1.5. भारत का मानवाधिकार अधिनियम

भारतीय संविधान के भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों को इंग्लैंड में मैग्ना कार्टा, अमेरिका में बिल ऑफ राइट्स तथा फ्रांस में मानवाधिकार घोषणा पत्र की संज्ञा दी जाती है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार इन मूल अधिकारों की परिभाषाएँ बदलती रही हैं। नए - नए रूपों में प्रवर्तन हो भी रहे हैं। जब मानवीय मूल्यों का ह्रास तथा मानवाधिकारों का उल्लंघन बढ़ने लगे तब न्यायालयों ने नई व्यवस्थाएँ देकर इन्हें पुनःस्थापित करने के उपाय सोचे। सभ्य समाज में मानवाधिकार का मूल्य इतना बढ़ता गया कि इसके संरक्षण के लिए संसद द्वारा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 पारित किया गया। यह अधिनियम मानवाधिकार के संरक्षण की दिशा में एक मील का पत्थर बनके रहेगा।

1.5.1. अधिनियम का नाम एवं उद्देश्य

मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए संसद द्वारा पारित किए गए अधिनियम को मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के नाम से अभिहित किया जाता है। अधिनियम के प्रारंभ से ही इसका उद्देश्य बताया गया है। इस अधिनियम के प्रमुख रूप से निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- मानवाधिकारों का बेहतर संरक्षण
- राष्ट्रीय मानवाधिकार संरक्षण आयोग का गठन
- राज्यों में राज्य मानवाधिकार संरक्षण आयोग की स्थापना

इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संसद द्वारा अधिनियम पारित किया गया है।

1.5.2. भारत की स्त्रियाँ और मानवाधिकार

मानव सभ्यता का विकास प्रकृति की कोख से हुआ है। नर हो या नारी दोनों को प्रकृति एकसमान रख-रखाव देती है। भारतीय सभ्यता की ओर नज़र डाले तो पता चलता है कि मनुष्य पहले गुफाओं और कंदाओं में रहा करते थे। धीरे- धीरे छोटे-छोटे समूह बनकर रहने लगे। बाद में वह कबिलाई युग से जाने लगा। उसी युग में स्त्री-पुरुष के बीच काम का बँटवारा भी हो चुका था। पुरुष शिकार करके सामान ले आता था, तो स्त्रियाँ कंद-मूल इक्ठा करती थीं। जब सामग्रियों का उपयोग बढ़ता गया और सामग्रियाँ खतम होने लगीं, तो फिर से जाना एक आम बात बनने लगी। आगे चलकर सामग्रियों का संग्रह शुरू हो गया और धीरे - धीरे कृषि की व्यवस्था भी प्रारंभ होने लगी। परिणामस्वरूप संपत्ति की व्यवस्था का उदय हुआ और आगे चलकर निजी संपत्ति के हस्तांतरण का मामला सामने आया। समूह के अंदर ही आपस में वर्चस्व की अवधारणा आई कि संपत्ति किसको दी जाएगी, इस प्रश्न का सबसे आसान उत्तर यह निकाला गया कि एक समूह की स्त्री सिर्फ़ एक पुरुष के साथ ही संबंध बना सकती है। बाद में निजी संपत्ति

और वंश परंपरा के वास्ते कहकर यह आवश्यक बना दिया गया कि महिलाएँ चार दीवारों के अंदर रहकर ही सबकुछ करें, बच्चों का पालन -पोषण आदि घर में रहनेवाली स्त्री पर थोपा गया। और उस समय पुरुष बाहर से जीवन यापन की सामग्री जुटाने लगे। धीरे – धीरे 'पॉवर' उसी के हाथ में आने लगा जो यह सामग्री जुटा रहा है। इसी तरह हमारे समाज को पितृसत्तात्मक समाज होने में वक्त नहीं लगा। आगे चलकर सामाजिकीकरण की प्रक्रिया ने पितृसत्तात्मक समाज को बनाए रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। स्त्री, पुरुष, थर्ड जेंडर का विभाजन, उनका रहन-सहन, पहनावे, व्यवहार कार्यक्षेत्र सबकुछ समाज द्वारा निर्धारित किए गए। लेकिन उन्नीसवीं सदी तक आते-आते समाज सुधार आंदोलनों का आगमन हुआ। सती प्रथा, बाल विवाह जैसी प्रथाओं का विरोध किया गया। स्त्री शिक्षा आदि पर बल दिये जाने लगा।

1.5.2.1. भारतीय संविधान में नारी

भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए गए हैं। सभी क्षेत्र जैसे कि शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति, समाजसेवा आदि खुले हैं। स्वतंत्रता के पश्चात जब हमारे ही भाग्य लेखन का हक हमारे हाथ में आया, तब भारत के विचारशील एवं जागरूक नेताओं ने नारी को सभी क्षेत्रों में अधिकार देने की बात को ध्यान में रखा। भारतीय संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक न्याय, समता एवं प्रतिष्ठा बिना किसी भेदभाव के प्रदान करता है। महिला तथा पुरुषों में भेदभाव न होने से संबंधित संविधान की धाराएँ और महिलाओं के अधिकार से संबंधित संविधान की धाराएँ और महिलाओं के अधिकार से संबंधित अधिनियम इस प्रकार हैं :-

1.5.2.1.1. विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद 14)

विधि के समक्ष समता से अभिप्राय यह है कि कानून के सामने सभी समान हैं। इसमें यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि देश के कानूनों द्वारा हर एक नागरिक को समान रूप से संरक्षण मिलता है।

संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार “लिंग, जाति, धर्म या जन्मस्थान इनमें से किसी के आधार पर भी भेदभाव नहीं होगा और कोई भी व्यक्ति के कहीं पर भी बसने, व्यवसाय करने या किसी भी सार्वजनिक स्थल पर मनोरंजन के लिए किसी भी तरह के रोक नहीं लगाए जाएँगे।”[15]

1.5.2.1.2. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16)

अवसर की समानता के अधिकार में किसी भी नागरिक को नौकरी के लिए धर्म, लिंग, वंश, जाति आदि के कारण भेदभाव नहीं किया जा सकता। संविधान के अनुच्छेद16 के अनुसार “सार्वजनिक रोज़गार के लिए सभी नागरिकों के समान अधिकार हैं। राज्य के अधीन किसी पद के संबंध में धर्म, वंश, जाति, लिंग के आधार पर कोई नागरिक अयोग्य नहीं होगा।”[16]

1.5.2.1.3. वाक् – स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकार (अनुच्छेद19)

संविधान के अनुच्छेद 19 के अनुसार सभी को भाषण देने की समानता का अधिकार है। किसी व्यक्ति या समुदाय द्वारा अपने मत एवं विचारों की अभिव्यक्ति देने की स्वतंत्रता का मुख्य उद्देश्य है। अपने शब्दों की अभिव्यक्ति में प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल है। जनता की तार्किक शक्ति, जिससे लोकतांत्रिक सरकार का उचित संचालन होता है, अभिव्यक्ति के बिना उसको विकसित नहीं किया जा सकता।

1.5.2.1.4. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 21)

संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राण, दैहिक स्वतंत्रता और संरक्षण के अधिकार की व्यवस्था है। यह अधिकार भारत के सभी नागरिकों एवं विदेशी नागरिकों को भी मिलता है। इसमें शोषण से मुक्त होकर मानवीय गरिमा से जीवन जीने के अधिकार शामिल है। सर्वोच्च न्यायालय के मुताबिक प्रदूषण मुक्त वातावरण में रहना भी प्राण की स्वतंत्रता में शामिल है।

1.5.2.1.5. मनुष्य के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 द्वारा ज़बरदस्ती काम करवाना भीख मंगवाना, मानव तस्करी आदि पर प्रतिबंध लगाई गई है। इसका उल्लंघन कानून के तहत दंडनीय अपराध है। यह अधिकार नागरिक और गैर नागरिक दोनों को प्राप्त है। यह संरक्षण व्यक्तियों को राज्य के कार्यों से ही नहीं बल्कि निजी कार्यों से भी सुरक्षा देता है।

1.5.2.1.6. राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व (अनुच्छेद 39)

संविधान के अनुच्छेद39 के अनुसार राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व का पालन करने के लिए हर एक नागरिक बाध्य है। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य द्वारा सभी लोगों को पर्याप्त ढंग से आजीविका सुनिश्चित करनी चाहिए। साथ ही बचपन और युवावस्था को शोषण से बचाना चाहिए।

1.5.2.1.7. प्रसूति सहायता के लिए उपबंध (अनुच्छेद 42)

भारतीय संविधान अनुच्छेद 42 के अनुसार गर्भावस्था में काम करने से छूट तथा अवकाश देना चाहिए। राज्य द्वारा काम की उचित और मानवीय स्थितियों को सुनिश्चित करेगा। साथ ही मातृत्व राहत के लिए प्रावधान किया जाएगा।

1.5.2.1.8. मूल कर्तव्य (अनुच्छेद 51)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 के तहत मौलिक कर्तव्यों की संख्या 11 है। इसमें वर्णित मूल कर्तव्यों में से महिलाओं के सम्मान से जुड़कर एक कर्तव्य यह है कि "हर एक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में महिलाओं के अधिकार सुनिश्चित किए है।"[17]

1.5.2.1.9. मताधिकार एवं निर्वाचन नामावली (अनुच्छेद 325, 326)

देश के नागरिकों को संविधान द्वारा प्रदत्त सरकार का चयन करने के लिए अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने के अधिकार को मताधिकार कहते हैं । एक लोकतंत्रात्मक देश में इसका बहुत अधिक महत्व है । अनुच्छेद 325 और 326 के तहत महिलाओं को पुरुषों के समान ही मत देने और चुने जाने का अधिकार है । धर्म, मूलवंश जाति, लिंग आदि के कारण निर्वाचक नामावली में स्थान मिलने के अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता । “निर्वाचक नामावली में महिला और पुरुष को समान रूप से मत देने और चुने जाने का अधिकार है ।”[18]

1.5.3. महिला अधिकार संबंधी अधिनियम

भारत में महिला एवं पुरुषों को संविधान ने बराबरी का अधिकार दिया है । इसको लोगों तक पहुँचाने हेतु विभिन्न अधिनियम बनाए गए हैं । इसमें महिला श्रम से जुड़े अधिकार, महिलाओं के सामाजिक अधिकार, महिलाओं के विवाह एवं तलाक संबंधी अधिकार आदि आते हैं । भारत में महिलाओं से संबंधित मानवाधिकारों को मूल अधिकारों के साथ ही जोड़ा गया है । मानवाधिकार खास करके महिलाओं के मानवाधिकार संबंधी कुछ अधिनियम निम्नलिखित हैं –

1.5.3.1. विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856)

इस अधिनियम ने विधवाओं के पुनर्विवाह को वैध बनाया । 1829 के सती प्रथा उन्मूलन के बाद यह सबसे बड़ा सामाजिक सुधार माना जाता है । यह कानून अपने अंदर बाल विधवाओं को भी शामिल करता है । विधवा को अपने मृत पति से मिलनेवाली विरासत को वह अपनी इच्छानुसार छोड़ सकती है । इसके अंतर्गत विधवा विवाह तथा उस विवाह के बाद उत्पन्न संतान को वैध माना गया ।

1.5.3.2. बाल विवाह निरोधक अधिनियम (1929)

बाल विवाह निरोधक अधिनियम को शारदा एक्ट भी कहा जाता है। इस कानून के द्वारा छोटी बच्चियों के विवाह पर रोक लगाने की कोशिश रही। आगे चलकर 1968 में इसका संशोधन करके लड़की के विवाह की आयु14 और लड़के की 18 वर्ष तय की गई। आगे बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006 बाल विवाह अधिनियम 1929 को निरस्त करके बनाया गया। इस अधिनियम ने 18 साल से कम उम्र वाली लड़की तथा 21 साल से कम उम्र वाले लड़के के विवाह को बाल विवाह माना। बाल विवाह करनेवाले, संचालित करनेवाले एवं तय करने वाले को दोषी ठहराया गया है। साथ ही यह दंडनीय अपराध है।

1.5.3.3. चलचित्र अधिनियम (1952)

यह अधिनियम भारत में फ़िल्मों के विनिमय और प्रमाणन से जुड़ा हुआ है। इसके अंतर्गत फ़िल्मों की सार्वजनिक प्रदर्शनी के लिए प्रमाणन करने की प्रक्रिया का उपबंध है। इस अधिनियम के तहत ही केंद्रीय फ़िल्म प्रमाणन बोर्ड की स्थापना हुई, जिसके माध्यम से फ़िल्मों की समीक्षा एवं प्रमाणन होता है। इस अधिनियम के अंतर्गत विशेष सेंसर बोर्ड का प्रावधान किया गया है कि ऐसे फिल्मों पर रोक लगाई जाएगी जिसमें महिलाओं के मर्यादा भंग हो जाता हो।

1.5.3.4. विशेष विवाह अधिनियम (1954)

यह अधिनियम भारतीय संसद द्वारा परित ऐसा अधिनियम है, जिसके माध्यम से सभी नागरिकों के लिए विवाह की सुविधा मिलती है। इसके अंतर्गत धर्मनिरपेक्ष विवाह पंजीकरण करने का प्रावधान है। साथ ही विवाह करने वाले को कानूनी सुरक्षा के अधिकार प्राप्त है। इस अधिनियम के तहत धर्मनिरपेक्ष विवाह करनेवाले जोड़े को विरासत का अधिकार, उत्तराधिकार संबद्ध अधिकार आदि प्राप्त है। इस अधिनियम के माध्यम से महिलाओं को पैतृक संपत्ति में

उत्तराधिकार प्रदान किया गया। हिंदू विवाह अधिनियम स्त्रियों को भरण-पोषण और दांपत्तिक प्रदान करता है।

1.5.3.5. अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम (1956)

उस अधिनियम के अनुसार वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए लोगों की तस्करी और यौन शोषण दंडनीय अपराध है। इसमें वेश्यावृत्ति को अवैध माना गया। वेश्यावृत्ति के लिए किसी व्यक्ति को खरीदना, प्रेरित करना, ले जाना आदि भी दंडनीय अपराध है। इसके अंतर्गत व्यवस्था है कि संदिग्ध या अपराधी महिला से पूछताछ, तलाशी एवं गिरफ्तारी केवल महिला पुलिस या महिला सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा ही की जाएँगी।

1.5.3.6. दहेज निवारण अधिनियम (1961)

इस अधिनियम ने दहेज को किसी भी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति माना। विवाह में एक पक्ष दूसरे पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो दिया जाता है उसे दहेज कहा जाता है। इस अधिनियम के तहत दहेज लेने और देने के लिए दंड़ की व्यवस्था की गई है और दहेज - मृत्यु पर सात वर्ष से लेकर आजीवन कारावास का प्रावधान है।

1.5.3.7. औषधियों द्वारा गर्भ गिराने से संबंधी अधिनियम (1971)

इस कानून के अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी अस्पताल से अधिकृत डॉक्टर से अपना गर्भपात करा सकती है। यह अधिनियम 2021 में संशोधित हुआ, जिसके अनुसार 12 से 20 हफ्ते की गर्भावस्था को एक डॉक्टर की इजाज़त की आवश्यकता है। 20 से 24 हफ्ते की गर्भावस्था को महिला से सर्वाइवर, नाबालिग या विकलांग गर्भपात करा सकती है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार सभी महिलाएँ, जिनमें अविवाहित महिलाएँ भी हैं गर्भ गिरा सकती हैं।

1.5.3.8. समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976)

इसके अंतर्गत समान कार्य के लिए महिलाओं को भी पुरुषों के समान पारिश्रमिक देने का प्रावधान किया गया। समान प्रकृति वाले काम के लिए समान वेतन देना है। यह कानून रोज़गार में महिलाओं के खिलाफ़ होनेवाले भेदभाव को रोकता है। अगर किसी श्रमिक को अपने श्रम के लिए न्यूनतम दर नहीं मिलता तो वह श्रम आयुक्त के सामने इसकी शिकायत कर सकती है।

1.5.3.9. स्त्री अशिष्ट रूपण अधिनियम (1986)

इस अधिनियम के अंतर्गत प्रावधान है कि किसी भी महिला को इस प्रकार चित्रित नहीं किया जाएगा, जिससे उसकी सार्वजनिक नैतिकता को ठेस पहुँचे। विज्ञापन हो या प्रकाशन आदि में अश्लीलता पर प्रतिबंद लगाया गया है। इसमें महिलाओं का अशिष्ट चित्रण करनेवाले विज्ञापनों, लेख, चित्र, आंकड़ा आदि किसी भी तरह महिलाओं का अपमानजनक रूपण करना प्रतिबंधित है।

1.5.3.10. प्रसवपूर्ण निदान तकनीकी अधिनियम (1994)

इस अधिनियम का उद्देश्य यह है कि गर्भधारण से पहले या आगे चलकर लिंग निर्धारण करने की प्रक्रिया तथा लिंग चयनात्मक गर्भपात को रोकना है। यह कानून जन्म से पहले भ्रूण के लिंग की जांच करना, इसके लिए सहयोग देना, इससे संबंध विज्ञापन करना आदि दंडनीय अपराध है। इसमें गर्भावस्था में बालिका भ्रूण की पहचान कराने पर रोक लगाई गई है। संविधान प्रदत्त इन सारे अधिकारों का संरक्षण भी अनिवार्य है।

1.6. महिलाओं का वर्गीकरण

हमारे देश भारत में महिलाओं की स्थिति में कुछ सदियों से बदलती जा रही है। कानूनी आयु को ध्यान में रखकर ही संविधान द्वारा महिला अधिकारों को निर्धारित किया जाता है। एक

व्यक्ति किस उम्र में कौन सी गतिविधि में शामिल हो सकती है, यह कानून तय करता है। कानून समाज की स्थितियों के अनुसार भी संशोधित होता है। कानूनी आयु तथा महिलाओं की स्थिति के अनुसार महिलाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है।

1.6.1. अवयस्क महिलाएँ

इसके अंतर्गत प्रमुख रूप से 18 वर्ष से कम आयु की महिलाएँ आती हैं, जिनको लड़की या बाला भी कह सकते हैं। इनको पुत्री, बहन जैसी भूमिकाओं का मात्र अधिकार प्राप्त हैं। 18 से कम उम्रवाली लड़कियों का विवाह हिंदू विधि,भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, विशेष विवाह विधि आदि के अनुसार दंडनीय अपराध है।

हिंदू विधि के अनुसार पूर्ण या अर्ध रक्त संबंध के कारण अवयस्क महिला को संपत्ति के अधिकार प्राप्त हैं साथ ही पिता की मृत्यु के बाद अवयस्क महिला माता तथा अन्य भाई बहनों के साथ एक भाग की अधिकारिणी हो जाती है। धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के आधार पर पिता से भरण पोषण पाने की अधिकारिणी भी है। स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार अधिनियम के अनुसार 21 वर्ष की आयु वयस्कता (1956) के लिए मानी गई है। यानि कि 21 वर्ष से कम उम्र की महिला अवयस्क है। उनके अनैतिक व्यापार कराने में दंड संहिता में प्रावधान है। इस प्रकार अवयस्कता की आयु भिन्न स्थितियों में अलग-अलग है।

1.6.2. वयस्क महिलाएँ

संविधान के अनुसार वयस्क महिलाओं में अविवाहित वयस्क महिलाएँ आती हैं। इनको पिता की संपत्ति पर अधिकार है। हिंदू विधि के तहत पूर्ण रक्त और अर्द्ध रक्त संबंधों के कारण जो अधिकार प्राप्त होते हैं, उनके लिए भी ये अधिकारिणी हैं। चाहे हिंदू विवाह विधि हो या विशेष विवाह विधि, वे अपनी स्वेच्छा से ही विवाह कर सकती हैं। यदि किसी वयस्क

महिला के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध संभोग या फिर कुछ हो जाता है, तो वह दंडनीय अपराध है । उसकी सहमति के बिना हर एक मानव के समान उस पर कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए । भारतीय दंड संहिता की धारा 366 में यह स्पष्टता से कहा गया है । उसकी वयस्कता का निर्धारण लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत होता है ।

1.6.3. विवाहित महिलाएँ

भारत में हिंदुओं में हिंदू सप्तपदी, आदिवासियों की परंपरागत विवाह विधि, मुसलमानों की मुस्लिम विधि, पार्सियों की पार्सी विधि, ईसाइयों के लिए ईसाई विधि, आर्य समाज विवाह आदि प्रचलित हैं । इन विवाह पद्धतियों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है, साथ ही साथ विधि के अनुसार मान्यता भी प्राप्त है । विवाह एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जिससे स्त्री और पुरुष के वैवाहिक संबंध को सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। विवाह के बिना कोई संतान उत्पन्न होता है, तो उसे 'अवैध' संतान कहा जाता है। लेकिन ऐसी'अवैध' संतान को पिता से भरण-पोषण व्यय पाने का अधिकार प्राप्त है । धारा 497 दंड संहिता के तहत विवाहित स्त्री का 'विवाहित महिला' कहा जाना आदि का स्पष्ट विवरण मिलता है ।

1.6.4. विधवा

सामान्यतः पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी को विधवा कहा जाता है । विधवाओं को पति की संपत्ति पर पूरा अधिकार है (1955 के हिंदू कोड बिल) । साथ ही साथ यह प्रावधान भी है कि कोई भी विधवा पुनर्विवाह कर सकती है ।

1.7. महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग

अधिनियम के धारा (2) (1) (ञ) में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 की धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय महिला आयोग अभिप्रेत है । राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम

(1990) के अनुसार राष्ट्र के लिए एक महिला आयोग का गठन किया गया है। इसके अंतर्गत एक अध्यक्ष, पाँच सदस्य और एक सदस्य सचिव आते हैं। अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति केंद्र सरकार करती है। अध्यक्ष पद पर सिर्फ महिला को नियुक्त किया जाता है, जो नारी हितों की रक्षा कर सकती है।

1.7.1. सदस्यों की नियुक्ति

सदस्यों की नियुक्ति प्रत्येक क्षेत्र में अनुभव रखनेवालों को मिलती है। विधि अथवा विधान, प्रशासन, आर्थिक विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण, औद्योगिक प्रबंध, औद्योगिक संगठन, व्यवसाय संघ, स्वैच्छिक महिला संगठन आदि में अनुभव रखनेवाले व्यक्तियों की नियुक्ति सदस्यों के रूप में होती है।

1.7.2. महिला आयोग के कर्तव्य

महिला आयोग के कर्तव्यों को अधिनियम की धारा 10 में सूचित किया गया है जो निम्नलिखित हैं -

- संविधान एवं विधियों में महिलाओं के लिए प्राविधित रक्षोपायों से जुड़कर विषयों की जाँच, परीक्षण आदि करना।
- रक्षोपायों से जुड़कर ठीक समय पर सरकार को प्रतिवेदन देना।
- महिला संबंधी विधियों की समीक्षा समय पर करना साथ ही उनमें संशोधन देने के लिए सुझाव देना।
- किसी भी प्रावधान या किसी विधियों का उल्लंघन किए जाने पर प्रभाव कार्यवाही करना।

- विभिन्न मामलों में जैसे, नारी अधिकारों से वंचित किया जाना, विधियों का क्रियान्वयन नहीं किया जाना, महिलाओं को राहत प्रदान करनेवाली नीतियों, मार्गनिर्देशकों आदि का पालन न किया जाना, मामलों के संबंधित शिकायतों पर विचार करके उनके निवारण का प्रयास करना आदि।

1.7.3. महिला अधिकारों का वर्गीकरण

हमारे संविधान ने हर एक नागरिक के समान ही महिलाओं को अपने अधिकार दिये हैं। अगर किसी व्यक्ति, संस्था आदि के द्वारा उसकी अवहेलना या उल्लंघन किया जाए, तो प्रत्येक व्यक्ति कानून की मदद ले सकता है। इसके लिए महिलाओं द्वारा यह जानना अनिवार्य है कि उन्हें क्या क्या अधिकार प्राप्त हैं।

1.7.3.1. कामकाजी महिलाओं के अधिकार

आजकल महिलाओं की शिक्षा का स्तर बढ़ता जा रहा है। शिक्षित महिला आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती जा रही है। इन महिलाओं में अपने ऊपर आत्मविश्वास उत्पन्न होता जा रहा है। परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में महिलाएँ अहम भूमिका निभा रही हैं। जो महिलाएँ घर से बाहर निकलकर अपना व्यवसाय चलाती हैं या काम करती हैं, उनको कामकाजी महिलाओं की संज्ञा दी जाती है। साथ ही कोरोना काल के बाद घर के चार दीवारी के अंदर रहकर व्यावसायिक ढंग से काम करनेवाली बहुत सारी महिलाएँ भी हैं। कामकाजी महिलाएँ एक साथ कई सारे कार्य संभालने में समर्थ हैं। आज वे हर एक क्षेत्र में पैर रख के समाज, परिवार एवं देश की सेवा में लगी हैं।

भारत सरकार ने कामकाजी नारियों की सहायता के लिए नियम एवं कानून बनाए हैं जो समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976) के तहत आते हैं। इसके अनुसार समान वेतन, समान रूप

से किसी काम में भर्ती आदि मिलने का हक महिलाओं को है । यदि महिला को कार्यालय में अधिक समय के बाद रुकना पड़े और रात 8.30 के बाद रुकना अनिवार्य है, तो उसके घर पहुँचाने की ज़िम्मेदारी साथ ही रक्षा का कार्य कार्यालय की जिम्मेदारी है । किसी भी महिला कर्मचारी को एक हफ्ते तक लगातार अधिक रात तक काम करने के लिए न कहें। पुरुषों द्वारा कार्यालय में शारीरिक शोषण किए जाने पर यदि कोई महिला शिकायत दर्ज कराती है, तो इस कारण से उसका उत्पीड़न न करे । न्यायालय के अनुसार यौन उत्पीड़न के अंतर्गत जान-बूझकर स्त्री को छूना, इशारा करना, अश्लील हरकतें करना, पोर्नोग्राफी करना, सेक्स संबंधी बातें करना आदि आते हैं।

1.7.3.2. वैवाहिक अधिकार

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ विवाह को एक अटूट बंधन माना जाता है, जिसे मृत्यु के उपरांत भी निभाया जाता है । प्राचीन काल से विधुर के विवाह के समान ही विधवा विवाह को भी प्रोत्साहन दिया जाता था। स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय एवं स्वामी विवेकानंद ने विधवाओं को मान-सम्मान के साथ ही साथ सती प्रथा का विरोध करने पर बल दिया। इस प्रकार महात्मा गाँधी, पैगंबर मोहम्मद जैसे महान हस्तियों ने भी पुनर्विवाह एवं विधवा विवाह पर बल दिया । देश के कुछ भागों में बहुपत्नी प्रथा होती है । कुछ जगहों में तो में तो बहुपति प्रथा होती है । लेकिन हिंदू विवाह अधिनियम का आगमन एवं भिन्न विवाह से संबंधित अधिनियम से बदलाव अवश्य आ रहे हैं।

1.7.3.2.1. हिंदू विवाह अधिनियम

हिंदू विवाह विधि के अनुसार हिंदू विवाह वर और वधू का विवाह समाज के रीति रिवाज़ों के अनुसार होना चाहिए । इसके लिए वर और वधू का हिंदू होना ज़रूरी है । इनका

मानसिक रूप से स्वस्थ होना अनिवार्य है । वर और वधू करीबी रिश्तेदार नहीं होना चाहिए । शादी के वक्त वर की उम्र 21 वर्ष और कन्या की 18 वर्ष होनी चहिए ।

1.7.3.2.2. मुस्लिम शादी का कानून (इस्लामी कानून)

इस्लामी कानून के अनुसार शादी का पैगाम पहले लड़के की ओर से दिया जाता है । और लड़की इसे इंकार या स्वीकार कर सकती है । इस रिवाज़ को 'निकाह' कहते हैं । इस निकाह को स्वीकारने के लिए महर (कोई रकम या क़ुरान) तय किया जाता है । सबसे उचित 'महर' इस्लाम का पावन ग्रंथ क़ुरान माना जाता है । यह 'महर' लड़का लड़की को निकाह के वक्त देता है ।

1.7.4. धार्मिक अधिकार

गाँधीजी के अनुसार "धर्म एक ऐसा आधार है, जो हमें सत्य से परिचित कराता है । मनुष्य के मन को स्वच्छ करता है ।"[19] धर्म हमेशा मूल्यों को तोड़ने की नहीं, जोड़ने की बात करता है । वैदिक काल की ओर अगर हम दृष्टि डालें तो वेदों में स्त्री को उच्च स्थान या सम्मानजनक स्थान दिया गया है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक अपनी गृहस्थी संभालने में माहिर थे । साथ ही युद्ध के समय पर शत्रुओं से युद्ध करते थे । इस काल में स्त्री सारे धार्मिक कार्यों का पालन करने वाली थी । पती-पत्नी का संबंध समानता, मित्रता और समभावना का था । विवाह धर्म एवं संस्कार से जोड़कर देखा गया। इस कालखंड में स्त्रियों को शिक्षा का पूर्ण अधिकार भी था । आधुनिक काल तक आते-आते मनुष्यों द्वारा बने बनाए धार्मिक बंधन ने सारे रिश्तों को जकड़ दिया । नारी समस्या इन्हीं बुराइयों की देन है ।

1.7.5. सामाजिक अधिकार

प्रसिद्ध चिंतक एवं विचारक अरस्तु का मत है – "नारी की उन्नति या अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्धारित है।"[20] सामाजिक संरचना के सुसंचालन के लिए स्त्री और पुरुष का समान भागीदारी आवश्यक है। पुराने समय में जब पुरुष घर के बाहर आहार सामग्री जुटाने जाते थे, घर में बैठी पत्नी या स्त्री का यह फर्ज़ बनता था कि बच्चों को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति सिखाए। लेकिन मध्यकाल तक आते-आते विदेशी आक्रमणकारियों के आने से स्त्रियों को पर्दा में रखा जाने लगा। उसी समय के साथ ही बहुपत्नी विवाह, यौन शोषण आदि होने लगा। सती प्रथा, बाल विवाह आदि पर रोक लगा दी गई। विधवा पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। घर की चार दीवारी के अंदर रहने की मजबूरी थी। कोई भी शुभ कार्य में उनकी भागीदारी मना कर दी गयी। उनका जीवन धार्मिक रूढ़ियों के कारण कष्टप्रद हो गया। राजा राम मोहन रॉय जैसे समाज सुधारकों ने नारी की स्थिति को बदलने का सशक्त प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप ही 1829 में सती प्रथा पर कानूनी रोक लगा दी गई। 1856 में विधवा विवाह अधिनियम पारित हुआ। उसी समय मृदुला साराभाई ने कुछ अन्य महिलाओं के सहयोग से 'ज्योतिसंघ' की शुरुआत की।

ज्योतिसंघ का उद्देश्य महिलाओं को आत्मविश्वास प्रदान करना, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं औद्योगिक विकास के लिए स्वावलंबी बनाना, आर्थिक आत्मनिर्भरता देना, निडर होकर जीना सिखाना आदि था। सन् 1934 में ज्योतिसंघ के नेतृत्व में छोटे-छोटे गृह उद्योगों का प्रशिक्षण शुरु हुआ था। सिलाई प्रशिक्षण, मशीन बुनाई प्रशिक्षण, कसीदा व फैंसीवर्क प्रशिक्षण आदि प्रशिक्षण दिये जाने लगे।

1.8. महिला अधिकारों का वैश्विक परिदृश्य

विश्व महिला अधिकारों के घटनाक्रम की ओर दृष्टि डाले तो पता चलता है कि आधुनिक नारीवादी आंदोलन के संस्थापक मैरी वोलस्टोन क्राफ्ट द्वारा महिला अधिकारों पर ब्रिटेन में

1792 में प्रकाशित पुस्तक 'ए विडिंकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ वुमेन' तथा 1869 में जे.एस.मिल की पुस्तक 'दी सब्जेक्शन ऑफ वुमन' का प्रकाशन एक प्रमुख घटना है। 1857 में अमेरिका के लोउर ईस्टर नामक इलाके में शोषण एवं बदहाली से त्रस्त महिलाओं ने वहाँ से बगावत की। इसी कारण से 8 मार्च को विश्व में महिला दिवस मनाया जाता है। 1890 में अमेरिका में राष्ट्रीय महिला संगठन की स्थापना 1908 में इंटरनेशनल वुमन राइट्स एलायंस की स्थापना, तथा 1913 में नेशनल वुमन पार्टी कि स्थापना हुई। विश्व में प्रथम बार महिलाओं को मताधिकार 1893 में न्यूजीलैंड में प्राप्त हुआ। बाद में 1901 में ऑस्ट्रेलिया, 1913 में नॉर्वे, 1916 में कनाडा, 1918 में ब्रिटेन, 1920 में अमेरिका, 1945 में इटली आदि देशों को मताधिकार प्राप्त हुआ। 1917 में भारत में वुमन इंडियन असोसियेशन अर्थात् भारतीय महिला संघ तथा 1927 में ऑल इंडिया वुमन लीग की स्थापना हुई। 1946 तक आते-आते संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्टाटस ऑफ वुमेन, नाम से एक आयोग का गठन किया, जिसके माध्यम से दुनिया भर के महिलाओं की उन्नति को बढ़ावा देने का प्रयास हुआ। 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र स्वीकार किया। 1952 में महिलाओं के राजनैतिक अधिकार को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 409 वीं बैठक में अनुमोदित किया गया। 1960 के उत्तरार्द्ध में महिला मुक्ति आंदोलन का आगमन यूरोप में हुआ। 1974 में सिमोन द बुआ नारी मुक्ति आंदोलन की अध्यक्ष चुनी गई। 1975 में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा मैक्सिको में विश्व के अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन हुआ। वर्ष 1975 अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया। 1976 में महिलाओं के लिए संयुक्त राष्ट्र विकास निधि की स्थापना की। महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति के लिए प्रसंविदा संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18 दिसंबर, 1979 को स्वीकृत किया और सितंबर 1981 में लागू भी किया। 1992 में भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन हुआ। 1993 में संविधान के 73 वें एवं 74 वें संशोधन द्वारा

पंचायती तथा स्थानीय नगर निकायों में एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित है। इसके ज़रिए निर्णय में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। 2001 को महिला सशक्तिकरण नीति (एनपीईडब्ल्यू) लागू की गई। इस नीति का उद्देश्य महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और नागरिक क्षेत्रों में अधिकार दिलाना। इसके अंतर्गत आनेवाली प्रमुख योजनाएँ थीं बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ (बी.बी.बी.पी), महिला समृद्धि योजना, प्रधान मंत्री मातृ वंदना योजना, कामकाजी महिला छात्रावास, स्वाधार गृह योजना आदि। 2016 में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय नीति को संशोधित किया गया। 2 जुलाई 2010 को यू.एन.वुमन नामक संगठन का निर्माण संयुक्त राष्ट्र ने किया। इसका उद्देश्य लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण था। संक्षेप में कह सकते हैं कि मानवाधिकार की अवधारणा, स्थापना तथा स्थापित होने में विश्व के ज़्यादातर देशों की महत्वपूर्ण भूमिका है। हर एक देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों में भिन्नता होने के कारण मानवाधिकार की स्थापना एवं प्रचार अलग-अलग कालखंड में हुआ है।

1.9. महिला मानवाधिकार का नारीवादी दृष्टिकोण

मानवाधिकार के स्त्री पक्ष तथा उससे जुड़ी पितृसत्ता के स्रोत, गुणों, प्रकृति, संरचना आदि को समझने के लिए नारीवाद के प्रमुख दृष्टिकोणों पर ध्यान देना अनिवार्य है। मैरी वोलस्टोन क्राफ्ट अपनी पुस्तक 'ए विन्डिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ वुमेन' में कहती हैं–"यदि महिलाओं को मानव जाति के प्राकृतिक अधिकारों में भागीदारी के बिना बाहर रखा जाना है , तो पहले अन्याय और असंगति के आरोप को दूर करने के लिए तर्क के साथ साबित करें, अन्यथा आपके 'नए संविधान' में यह हमेशा दिखाएगा कि पुरुष को किसी न किसी रूप में अत्याचारी की तरह काम करना होगा और यह अत्याचार समाज के किसी भी हिस्से में नैतिकता को कमज़ोर कर देगा।"[21]

नारीवाद आधुनिक युग का एक सामाजिक आंदोलन है जिसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता स्थापित हो। साथ ही स्त्रियों के खिलाफ़ होनेवाले शोषण समाप्त हो । नारीवादी दृष्टिकोण को प्रमुख रूप से उदारवादी, मार्क्सवादी, समाजवादी और रेडिकल सुधारवादी दृष्टिकोणों के रूप में वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है।

1.9.1. उदार नारीवाद

"उदार नारीवाद का दार्शनिक आधार व्यक्तिवाद के सिद्धांत में निहित है।"[22] उदारवादी नारीवाद का मुख्य विचार यह है कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों को समान रूप से बनाया है और सभी का इस दुनिया में समान अधिकार है। इनके अनुसार महिला शोषण एवं उत्पीड़न का प्रमुख कारण सामाजिक तौर-तरीके हैं, जो पुरुषों को ऊँचा दर्जा देते हैं। इसमें 'पितृसत्ता' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, लेकिन उसके स्थान पर पुरुषों द्वारा उत्पीड़न यानि पुरुष वर्चस्व पर बात की है। उदार नारीवादियों के अनुसार पुरुषों के समान ही पुरुषों के अंदर भी समान मानसिक क्षमता है। इसीलिए , सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को भी समान अवसर मिलनी चाहिए। बेट्टीफ्रीदन ने महिलाओं को घरेलू जीवन में संतुष्टि तलाशकर रहनेवाली, तथा उसी में सुरक्षा ढूँढनेवाली स्थिति को 'स्त्रीत्व मिथक' शब्द से अभिहित किया। वे इस विचार का कट्टर विरोध करती हैं और कहती हैं कि 'स्त्रीत्व मिथक' रूपी संकल्पना को तोड़कर आगे बढ़ने की सशक्त आवश्यकता है। परंपरागत भूमिकाओं से ऊपर होकर स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में भाग लेना चाहती हैं।

1.9.2. मार्क्सवादी नारीवाद

मानवाधिकार के स्त्री पक्ष के मार्क्सवादी दृष्टिकोण के विकास में फेडरिक एंगेल्स की रचना 'ओरिजिन ऑफ दि फैमिली, प्राईवेट प्रोपर्टी एंड दि स्टेट' (1884) का प्रमुख योगदान है। फ्रेडरिक एंगेल्स कहते हैं –"इस प्रकार, एक ओर जिस अनुपात में धन में वृद्धि हुई, उसने परिवार में पुरुष की स्थिति को महिला की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण बना दिया, और दूसरी ओर, अपने

बच्चों के पक्ष में, उसे उखाड़ फेंकने के लिए इस मज़बूत स्थिति का फायदा उठाने के लिए एक आवेग पैदा किया।"[23] यहाँ एंगेल्स कहते हैं कि पूँजीवाद के उत्थान के साथ-साथ महिलाओं के घर का काम पुरुष के उत्पादक श्रम की तुलना में महत्वहीन हो गया। मातृक प्रभुत्व का स्थान पैतृक प्रभुत्व ने ले लिया। इस तरह पितृसत्ता और पूँजीवाद को यहाँ आपस में जोड़ा गया है। मार्क्सवादी नारीवादियों के अनुसार महिलाओं की दासता और वर्गों का विभाजन निजी संपत्ति के साथ विकसित हुए। इनके अनुसार व्यक्ति की समस्त पहचान उत्पादन पर आधारित है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से 'गौण' भूमिका निभानेवाली स्त्री की छवि नकारात्मक है। घर के काम करनेवाली स्त्रियों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। मार्क्सवादी नारीवाद इसके खिलाफ़ प्रतिरोध करता है और यह तर्क आगे रखती हैं कि घरेलू कार्यों के लिए महिलाओं को पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। साथ ही साथ घरेलू कार्यों के प्रति समाज में व्याप्त लैंगिक विभाजन का विरोध करता है और हर जगह को कार्य-स्थल के रूप में देखकर समान वेतन का विचार सामने रखता है।

पूँजीवाद के आगमन ने महिलाओं को गृहस्थ क्षेत्र में सीमित रहने के लिए मजबूर किया और साथ ही पुरुषों को सार्वजनिक उत्पादन प्रक्रिया में होने का विशेषाधिकार दिया। इनके अनुसार नारी मुक्ति के लिए श्रम का पूनर्मूल्यांकन करना अनिवार्य है, जिसमें पूँजीवाद को उखाड़ के फेंका जाए।

1.9.3. समाजवादी नारीवाद

"सामाजिक नारीवाद जो महिलाओं की विशिष्टता से उत्पन्न होता है, महिलाओं की ओर से व्यापक सार्वजनिक कार्रवाई के लिए एक तर्क है।"[24] सामाजिक नारीवादियों के अनुसार पुरुष महिलाओं को वेतन वाले श्रम से अलग रखकर प्रजननात्मक श्रम तक सीमित रखने में तत्पर है। घरेलू क्षेत्रों में महिलाओं के कार्यों को ज़्यादा महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि व्यापार करने लायक किसी वस्तु का उत्पादन वे नहीं करतीं। महिलाओं से यह उम्मीद रखा जाता है कि

वे पुरुषों को घर के कामों एवं बच्चों के पालन-पोषण से मुक्त कर दें । समाजवादी नारीवाद पितृसत्ता और पूँजीवाद का सक्त विरोध करता है । इनके अनुसार महिलाओं को हर एक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर कार्य करना चाहिए । पितृसत्तात्मक उत्पादन के केंद्र में महिलाओं के घरेलू श्रम को रखा गया है और साथ ही पति पत्नी के श्रम पर अधिकार जताता है । कहीं न कहीं हमारा समाज पितृसत्तात्मक व्यवस्थापन और संरक्षण का स्थल बन जाता है ।

1.9.4. रेडिकल नारीवाद

"रेडिकल नारीवादी निजी और राजनीतिक क्षेत्रों के विभाजन और इस विचार पर कि परिवार निजी और गैर राजनीतिक है, पर सवाल उठाते हैं । निजी-सार्वजनिक का विभाजन महिलाओं के शोषण को मान्यता देता है ।"[25] इस वाद के प्रमुख समर्थक हैं–वूवियर, केट मिलेट, फायरस्टोन आदि । इसे आमूल-परिवर्तनवादी नारीवाद भी कहते हैं । रेडिकल नारीवाद उस सामाजिक संरचना का विश्लेषण करता है, जिसने महिलाओं को पुरुषों के अधीन माना । समलैंगिक संबंध (लेसबियनिसम) को स्त्री – केंद्रित एवं स्त्रियों द्वारा शुरू की गई यौन-संबंधों को स्व-केंद्रित यौन क्रिया के रूप में देखा । रेडिकल नारीवादियों के अनुसार महिलाओं के साथ होनेवाले अत्याचार लोगों की सोच से जुड़े हुए हैं और इसमें परिवर्तन लाने के लिए समाज में परिवर्तन लाना आवश्यक है । राज्य एवं समाज रूपी उत्पीड़नकारी शक्तियाँ ही पितृसत्ता को मज़बूत बनाती हैं । रेडिकल नारीवादी उत्पीड़न के इस तंत्र को पूर्ण रूप से मिटाना चाहती हैं । वे पूर्ण रूप से पितृसत्तात्मक संरचना को बदलने का आह्वान देती हैं ।

उपर्युक्त नारीवादों के अलावा 1980 से जो नई नारीवादी प्रथाएँ उभरकर सामने आई हैं जैसे कि औपनिवेशिक नारीवाद, अश्वेत नारीवाद, मनोविश्लेषणात्मक नारीवाद, पर्यावरणीय नारीवाद, उत्तर आधुनिक नारीवाद, समलैंगिक नारीवाद । ये सब पारंपरिक संरचना के निजी सार्वजनिक विभाजन को चुनौती देते हैं ।

1.10. निष्कर्ष

मानवाधिकार एक व्यक्ति को मानवोचित लक्षणों या गुणों के कारण प्राप्त होता है। प्रारंभ में रीति, मर्यादा आदि के नज़रियों से चलकर मौलिक अधिकार और फिर कुचलने के विरुद्ध आवाज़ के रूप में परिणित हो गई। यह एक अवसर पर उत्पन्न हुआ नहीं है, बल्कि यह एक विकासक्रम का फल है। मानवाधिकार की उत्पत्ति 539 ईं. से पूर्व से मानी जाती है। बाद में चलकर इससे जुड़े विचार पूरे भारत, यूरोप, ग्रीस आदि में फैल गए। मानवाधिकार की प्रगति में शामिल प्रमुख चरण हैं – मैग्ना कार्टा, पेटिशन ऑफ राइट, संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा, मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा तथा मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र। मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा का उद्देश्य यह रही कि हम किसी प्रकार के भेदभाव के बिना मानवाधिकारों के हकदार हैं।

भारत में भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकार, विभिन्न अनुच्छेद, धाराएँ एवं अधिनियम सशक्त रूप से मानवाधिकार को स्थापित करने में सक्षम हैं। संविधान में मानवाधिकार के स्त्री पक्ष के सुचारू संचालन के लिए विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद 74), लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16), वाक्-स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकार (अनुच्छेद 19), प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 21), मनुष्य के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद23), प्रसूति सहायता के लिए उपबंध (अनुच्छेद 42), मताधिकार एवं निर्वाचन नामावली (अनुच्छेद 325,326) आदि अनुच्छेद एवं विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856), बाल विवाह निरोधक अधिनियम (1929), चलचित्र अधिनियम (1952), अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम (1956), समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976), प्रसवपूर्ण निदान तकनीकी अधिनियम (1994) आदि महिला अधिकार संबंधी अनुच्छेद, धाराएँ एवं अधिनियम संविधान के विभिन्न प्रावधान समर्थन देते हैं।

1993 में पारित भारत के मानवाधिकार अधिनियम में मानवाधिकार की अवधारणा, उद्देश्य एवं मानवाधिकार संबंधी आयोगों का विवरण मिलता है। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन 1990 की धारा 3 के अधीन आता है। इसमें सदस्यों के रूप में नियुक्ति प्रत्येक क्षेत्र जैसे कि प्रशासन, आर्थिक विकास, औद्योगिक संगठन आदि में अनुभव रखनेवालों को मिलती है। आयोग के प्रमुख कर्तव्य ये होते हैं कि महिलाओं के लिए प्राविधित रक्षोपायों से जुड़कर विषयों की जाँच, परीक्षण आदि करना, महिलाओं को राहत प्रदान करनेवाले नीतियों एवं मार्ग निर्देशों का पालन न करनेवाले मामलों से संबंधित शिकायतों पर विचार करके उनके निवारण का प्रयास करना आदि।

महिला अधिकारों के भारतीय तथा वैश्विक विकास के घटनाक्रम को देखा जाए तो सन् 1792 में ब्रिटेन में मैरी वुल्स्टोन क्रैफ्ट द्वारा महिला अधिकारों की स्थापना के लिए किये गये प्रयासों से लेकर इक्कीसवीं सदी तक आते- आते बहुत सारे विकास के पडावों से महिला अधिकार यहाँ तक पहुँचे हुए हैं। इसके साथ, महिला अधिकार से जुड़े विभिन्न नारीवादी दृष्टिकोणों जैसे कि उदार नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद, समाजवादी नारीवाद, रेडिकल नारीवाद आदि का आगमन हुआ। विश्व भर के संविधानों एवं कायदे-कानूनों से नारी के अधिकार तो अवश्य निर्धारित किए गए हैं। लेकिन असलियत यह है कि यह कथनी - करनी में अंतर बहुत दिखाई देता है। मात्र सम्मेलन, सेमिनार एवं भाषणों से कुछ नहीं होता। महिलाओं के विरुद्ध होनेवाले अत्याचार चाहे शारीरिक हो या मानसिक पूरे विश्व में आम बात बन गई है। इसीलिए महिलाओं की हालत में मूलभूत सुधार लाने के बगैर प्रगति के लिए की जानेवाली तमाम कोशिशें अधूरी रह जाएँगी। ज़रूरत है कि हर एक नागरिक अपने अधिकारों को जान लें तथा संरक्षण के महत्व को समझें।

संदर्भ ग्रंथ

1. https://www.unitedforhumanrights.in/what are human rights/brief-history/ magna-carta.html
2. www.un.org/en/about-us/universal declaration of human rights.
3. मानवाधिकार नई दिशाएँ: वार्षिक अंक 20, 2023, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत, पृ.सं,117.
4. मानवाधिकार नई दिशाएँ: वार्षिक अंक 4, 2017, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत, पृ.सं,108.
5. डॉ.पूरणमल, मानवाधिकार सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पृ.सं,1.
6. डॉ. अंबिली. वी. एस, हिंदी साहित्य में मानाधिकार, पृ.सं,12.
7. मानव अधिकार संचयिका, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, 2014,पृ.सं.88.
8. “Human rights, rights that belong to an individual or group of individuals simply for being human or as a consequence of inherent human vulnerability or because they are requisite to the possibility of a just society”. Britanica.com.
9. सेंट्रल लॉ एजेंसी,भारत का संविधान, 2018,पृ.सं.6,7.
10. वहीं, पृ.सं. 8.
11. वहीं, पृ.सं. 13.
12. वहीं, पृ.सं. 14.
13. वहीं, पृ.सं. 15.

14. वहीं, पृ.सं. 19.
15. वहीं, पृ.सं.6.
16. वहीं, पृ.सं.7.
17. वहीं, पृ.सं.24.
18. वहीं, पृ.सं.193.
19. रमा शर्मा, महिलाओं के कानूनी, धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार, पृ.सं,48.
20. रमा शर्मा, महिलाओं के कानूनी, धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार, पृ.सं,55.
21. "If women are to be excluded without having a voice from a participation of the natural rights of mankind prove first to the ward of the charge of injustice and inconsistency that they want reason, else this flaw in your 'new constitution' will ever show that man must in some shape, act like a tyrant and tyranny, in whatever part of society it rears its brazen front, will ever undermine minority." Mary Wellstone Craft, Vindication of rights of women, p.11.
22. साधना आर्य, लता सिंह (सं)-भारत में महिला आंदोलन विमर्श और चुनौतियाँ, पृ.सं.30.
23. "Thus, on the other hand, in proportion as wealth increased, it made the man's position in the family more important than the woman's and on the other hand created an impulse to exploit this strengthened position in order to overthrow, in favour of his children, the traditional order of inheritance." Friedrich Engels, Marx/Engels -The

origin of the family, Private property and the State, Selected works, Volume 3, Translated by Alick West, p.30.

24. “Social feminism’ that derives from women’s specificity and argument for wider public action on the part of women” Naomi Black, Social Feminism, p.11.

25. साधना आर्य, लता सिंह (सं), भारत में महिला आंदोलन विमर्श और चुनौतियाँ, पृ.सं.34.

दूसरा अध्याय

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की विकास यात्रा

2.1. विषय प्रवेश

कहा जाता है कि साहित्य हमेशा कालजयी एवं शाश्वत रहता है। हज़ारों साल पहले लिखी गई रामायण की प्रासंगिकता, कबीर की रचनाओं की शाश्वतता आदि इसके लिए उत्तम उदाहरण हैं। कविता साहित्य का ऐसा रूप है, जिसका उपयोग प्राचीन काल से ही मानवीय परिस्थितियों, इच्छाओं, संस्कृति, पीड़ा आदि को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। कविता व्यक्ति और उसके रचनात्मक पक्ष को पकड़ती है और उसे अपने वैयक्तिक अनुभवों को व्यक्त करने में मदद करती है। साथ ही साथ दूसरों को लयबद्ध तरीके से प्रेरित करने में सहायता देती है। कविता युग की आवाज़ होती है। कविता का सीधा संबंध सभ्यता, संस्कृति, संवेदना और करुणा से है। युग परिवर्तन के साथ - साथ कविता में भी परिवर्तन आया है।

आज हम जिस समय में जी रहे हैं, वह आविष्कार, बाज़ार, व्यापार, संचार आदि का समय है। यह मनुष्यता पर होने वाले प्रहार का भी समय है। ऐसा एक समय आ गया है जहाँ दुराचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि बढ़ते जा रहे हैं। यह समय सिर्फ प्यार, मुहब्बत का नहीं, बाज़ार और नफरत का भी समय है। इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य आम जनता की व्यथा, अवसाद निराशा, घुटन, पीड़ा, कुंठा सर्वोपरि जीवन - संघर्ष आदि की अनुगूँज से जुडा हुआ है।

2.2. इक्कीसवीं सदी की कविता की ज़मीन

परिवर्तन की गति हमेशा धीमी होती है। कुछ घटनाएँ तो समाज को ज़्यादा प्रभावित करती हैं। इक्कीसवीं सदी एक दिन में रूपयित नहीं हुई है। यह सदी आधुनिक विचारों एवं सूचना की सदी है। यह सूचना तो व्यक्तिमुक्त है। इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचने में समय नहीं लगता। व्यवस्था से लेकर मनोरंजन तक सबकुछ कंप्यूटर की दुनिया से चलने लगे। नए-नए

अनुसंधानों की प्राप्ति ने इस सदी को और विशिष्ट बनाया। इसकी पृष्ठभूमि की बनावट में बीसवीं सदी का योगदान है।

2001 का अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर, न्यूयोर्क का हमला, 2003 में इस्तांबुल बम विस्फोट, 2008 का मुंबई ताज होटल पर हमला आदि इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। इन घटनाओं ने आतंकवाद के भय को चारों ओर फैला दिया। इस सदी को प्रगति की सदी मानी जाती है। लेकिन कभी प्रगति के नाम पर दूसरों को ध्वस्त किया जाता है। ताकतवर द्वारा कमज़ोर को कुचला दिया जाता है। सामाजिक न्याय की बात करना बेकार रहा, क्योंकि हर एक को अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के अधिकार को पाना कठिन रहा। लेकिन भारतीय संविधान की प्रस्तावनाओं के अनुरूप ढलने के लिए समय तो लगेगा। सभी अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए संघर्षरत हैं।

इक्कीसवीं सदी तक आते -आते भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नई दुनिया का निर्माण पूर्ण रूप से होने लगा। प्रत्येक देश पूँजी के बीचे भागने लगा। अमेरिका सर्वोपरि हो गया। पृथ्वी की सारी चीज़ें पूँजीवालों की होने लगीं। लेकिन उस समय भी सकारात्मक मानवीय संवेदनाओं से यह सदी भरी पड़ी है। लेकिन उसके स्वरूप में अवश्य बदलाव आ गया था। पक्ष और विपक्षों का आगमन ज़्यादा होने लगा।

इक्कीसवीं सदी में ही बाइनरी के भीतर के विभिन्न दृष्टिकोण भारत में ज़ोर पकड़ने लगे। प्रकृति के संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग होने लगा। स्वार्थ लाभ के बाद चीज़ों को दुत्कार दिया जाता था। इस युग के मानव ज़्यादा वैज्ञानिक और तार्किक होने के बावजूद धार्मिक कट्टरता में बढने लगी। सांप्रदायिक दंगे सोशल मीडिया के माध्यम से भी होने लगे।

औद्योगिकी से प्रौद्योगिकी तक की यात्रा का परिणाम इक्कीसवीं सदी को जन्म देता है। ऐसा युग है जहाँ देवालय भी कैमरा निगरानी से चलता है। टेक्नॉलजी के विकास ने मानव के

निजी जीवन से उसे अलग कर दिया है। इसके साथ मनुष्य के सोच-विचार एवं चिंता शक्ति में अवश्य बदलाव आए हैं। इस बदलाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इक्कीसवीं सदी की कविता की ज़मीन को जानने के लिए उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्यों के पक्षों को जानना अनिवार्य है।

इक्कीसवीं सदी का समाज एक विशेष प्रकार का समाज है। यह उत्तराधुनिकतावादी दुनिया प्रैग्मैटिज़्म के विचार से चलता है। इक्कीसवीं सदी के समाज में जिस प्रकार के परिवर्तन हमें देखने को मिलते हैं , वह दीर्घकालीन परिवर्तनों का परिणाम है। हमारा समाज अत्यधिक कुंठित और संशयग्रस्त हो गया है। संशय और अनास्था ने एक व्यक्ति के जीवन में उसकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघर्षरत बनाया। भावनात्मक संबंधों में दरार आने लगी है। प्रौद्योगिकी के आगमन ने व्यक्ति को मशीन में तब्दील कर दिया है।

2.2.1. व्यक्ति और समाज

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। समाज में व्यक्ति संबंधों का निर्माण करता है, जिससे मनुष्य मनुष्य के साथ जुडे रहते हैं। लेकिन आजकल मनुष्य तो मशीन की भांति बन रहे हैं। साथ ही मनुष्य मनुष्य से बातें न करके 'आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेन्स' से ज़्यादा बातें करने लगे हैं। मशीन तो निर्देशों के अनुसार चलता है। मनुष्य भी उसी भाँति हो रहे हैं। मनुष्य के अंदर होनेवाले मानवीय मूल्य आजकल परिवर्तित दिखाई दे रहे हैं। स्नेह एवं सहयोगी भावना का अभाव, सहानुभूति के स्थान पर स्वार्थ, घुटन, संत्रास, अजनबीपन आदि नज़र आते हैं। डेटिंग एप्स के आगमन से ही पता चलता है कि मनुष्य किस प्रकार अपनी भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाने के लिए तड़प रहे हैं। उसे एक दोस्त या साथी मिलना कठिन होता जा रहा है। लेकिन जिस प्रकार 'मशीनी मानव' ने सोचा कि 'डेटिंग एप्स' काम करेगा वह नहीं हुआ। मोबाइल में जो दिखता है, वह असलियत में तब्दील नहीं होता। "डेटिंग एप्स जो कभी रोमांस और साथ होने का वादा

करते थे, अब अवसाद और अकेलेपन का कारण बन रहे हैं।"[1] दुख, असंतुष्टि और सामाजिक एकांत उसके अंर्तमन को एकांतता से भर देता है। यह अकेलापन मनुष्य के जीवन को निर्जीव बना देता। अकेलापन व्यक्ति को अवसाद की ओर खींचता है। यह व्यक्ति के मन में असुरक्षा का वातावरण भी पैदा करता है। मशीनीकृत समाज व्यक्ति को समाज से काटकर एक कमरे के अंदर कैद कर रहा है, जिससे व्यक्ति के अंदर यांत्रिकता, हृदयशून्यता, संवेदनहीनता आदि जन्म लेते हैं। परिणामस्वरूप इक्कीसवीं सदी की पीढ़ी के लिए ऐसा माहौल बना रहता है जहाँ बेचैनी और घुटन ज्यादा हैं । यह घुटन ही अंत में व्यक्ति को तोड़ता है।

2.2.2. जेंडर और यौनिकता : उभरती सोच एवं समाज

मानव शरीर को समाज द्वारा जेंडर दिया जाता है। यह समाज द्वारा थोपी गई मनगढ़त सच है। इसको अंग्रेज़ी में बाइनरी जेंडर कहा गया है अर्थात् दो जेंडर पर आधारित समाज। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते बाइनरी जेंडर समाज पर ज़ोरदार प्रश्न किये जाने लगे। ट्रांसजेंडर लोगों ने इस प्रस्ताव को आगे रखा कि जेंडर पहचान को बदला जा सकता है, वह अस्थायी है साथ ही जन्म के साथ दिए जानेवाली पहचान को खुद की इच्छानुसार बदला जा सकता है। पैदाइशी जननांग स्पष्ट न होनेवाले को समाज द्वारा किसी न किसी जेंडर में धकेल दिया जाता है। चिकित्सा विज्ञान ने उन्हें सर्जरी का विकल्प दिया। इस तरह के नवजात बच्चों पर 'इंटरसेक्स' लोगों ने आवाज़ उठाई। इसके स्थान पर उनकी यह माँग रही कि वयस्क व्यक्तियों को उनकी इच्छानुसार मेडिकल हस्तक्षेप करने का मौका दिया जाए। "इसको सुप्रीम कोर्ट के 2014 के फैसले (NALSAजजमेंट) ने ज़्यादा मज़बूती दी, जिसमें द्विआधारी लिंग के अलावा तीसरे लिंग के रूप में मानने का निर्देश रखा गया।"[2]

जेंडर पहचान हो या यौनिकता इसमें व्यक्ति के निजी अधिकार पर ज़ोर देनेवाले ज़माने के रूप में इक्कीसवीं सदी बदल गई। इस सदी में ही समलैंगिकता के खिलाफ़ प्रतिशोध की

भावना लोगों द्वारा व्यक्त किया गया। "सुप्रीम कोर्ट में रोहतागी नामक याचिकर्ता ने कहा कि 1954 के विशेष विवाह अधिनियम के तहत समलैंगिक जोड़े को भी वहाँ संरक्षण दिया जाना चाहिए जो अंतरजातीय और अंतरधार्मिक जोड़े को दिया गया है, जो विवाह करना चाहते हैं।"[3] लेकिन भारत में समलैंगिक जोड़ों के पंजीकृत विवाह को मान्यता नहीं दी जाती। भारतीय दंड संहिता की धारा 377, जिसमें समलैंगिक व्यक्तियों की आपसी सहमति से होनेवाले यौन क्रियाकलापों को अपराध बनाती है। इसको 2018 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने रद्द किया और यह निर्देश रखा कि समलैंगिक जोड़े 'लिव-इन' में रहकर अपने अधिकार एवं लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के समाज ने जेंडर और यौनिकता की नई सोच आगे रखी। यह सदी हर एक व्यक्ति के जेंडर, यौनिकता आदि चुनने के अधिकार पर बल देती है।

2.2.3. सोशल मीडिया और समाज

इक्कीसवीं सदी में सोशल मीडिया संवाद का सशक्त माध्यम बनकर उभर रहा है। जीवन के हर महत्वपूर्ण पहलू को सोशल मीडिया में पोस्ट करनेवाले लोगों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। आम जनता से लेकर बड़ी-बड़ी कंपनियों तक इसका प्रयोग करती हैं। भारत के आधिकांश इंटरनेट उपयोगकर्ता मोबाइल फोन का इस्तेमाल कर रहे हैं। डॉ.ए.के.प्रकाश के अनुसार "फोन आपके मस्तिष्क को लगातार उत्तेजित करके उसे जागृत रखता है। यह नींद में खलल डालने का सबसे आम कारण है, यहाँ तक कि आपके सो जाने के बाद भी।"[4] सोशल मीडिया ने आम आदमी को अपनी बाच दुनिया के सामने रखने का अवसर दिया। नए-नए उद्योग सोशल मीडिया के माध्यम से उभरकर सामने आया। युवा पीढ़ी के ज़्यादातर लोग 'यूटूब' आदि सोशल मीडिया के प्लेटफोम के माध्यम से अपना घर चला रहे हैं। लेकिन आजकल सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभावों से ज़्यादा नकारात्मक पक्ष सामने आ रहे हैं।

सोशल मीडिया के माध्यम से भड़काऊ या संवेदनशील संदेश देकर मानसिक रूप से क्षति पहुँचाने के लिए 'ट्रोल्स' का इस्तेमाल किया जाता है। इसके माध्यम से लोग छद्म समाचार या झूठी ख़बर भी भेजते हैं। इक्कीसवीं सदी में सोशल मीडिया ने सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष दोनों दृष्टि से समाज को प्रभावित किया है। ज़रूरत है फ़ेक न्यूज़, ट्रोल्स, धोखाधड़ी आदि को समझकर समाज को विखंड़ित होने से बचाए।

2.2.4. लोकतंत्र और राजनीति

इक्कीसवीं सदी की भारतीय राजनीति अधिकतर पूँजी एवं पूँजीपतियों के हाथ में है। पूँजीवादी शक्तियाँ अपने आप को इतना सशक्त बनाकर रख देती हैं कि राष्ट्र-राज्य की राजनीति तथा नीति-निर्माण की पद्धति में कार्य उसी के अनुकूल आ ही जाते हैं। भारत के प्रजातंत्र का सामाजिक आधार (social base) अपनी विशिष्टता रखता है। यहाँ की सभ्यता बहुत पुरानी है। हमारे देश का संविधान इस देश की प्रजातांत्रिक प्रणाली का बहुत बड़ा दस्तावेज़ है। लेकिन प्रजातंत्र धीरे - धीरे राजनैतिक परिस्थितियों के कारण राजतंत्र में तब्दील होते नज़र आती है।

मैनेजर पांडेय के अनुसार "शासक वर्ग अनेक प्रकार के विचारधारात्मक प्रयत्नों की सहायता से अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए अपनी समाज-व्यवस्था के सच को सार्वभौम सच के रूप में पेश करता है और जनता की स्वीकृति तथा सहमति प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के भ्रम पैदा करके जनता की चेतना को भ्रमित करता है।"[5] आजकल सत्ता प्राप्ति ही सभी राजनैतिक पार्टियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रजातंत्र में वे प्रजा को भ्रमित करते हैं। इक्कीसवीं सदी में लोकतंत्र की मृत्यु की जा रही है। सत्ता को बनाए रखने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। चुनाव के पहले किए गए वादे बाद में गायब हो जाते हैं। अधिकांश जनता पाँच वर्ष तक न्याय एवं उन्नति की प्रतीक्षा में रहती है। जनता अगर विरोध करना भी चाहे, तो उसे किसी भी हाल में चुप कराया जाता है। आज की

राजनीति में भ्रष्टाचार, पदलोलुपता, अवसरवादिता, षड्यंत्र आदि आम बात बन गई हैं, जिसके ज़रिए पता चलता है कि लोकतंत्र का हाल दयनीय है।

इक्कीसवीं सदी में राजनैतिक सत्ता अपने विरोधी विचारों को कोई स्थान नहीं देता। बदला लेने की भावना सत्ता में हमेशा से बनी रहती है। सत्ता पर बैठनेवाले वर्ग अपने विरोधियों को कमज़ोर बनाने के लिए सरकारी संस्थाओं का दुरुपयोग करते हैं। घृणा की राजनीति के प्रमुख उपकरण धर्म और सांप्रदायिकता है। इस तरह की राजनीति के लिए वह आवश्यक है कि प्रत्येक वर्ग के अंदर सांप्रदायिकता के बीज बोया जाए और दूसरे वर्ग के प्रति भड़काया जाए। घृणा की राजनीति के कारण दंगे होते हैं, जिसके मध्यवर्गीय आम जनता शिकार होती है। राजनैतिक सत्ता के दिमाग से उत्पन्न घृणा की राजनीति के षडयंत्र को रोकना ही होगा।

2.2.5. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण

इक्कीसवीं सदी के आर्थिक परिप्रेक्ष्य की ओर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि यह पूँजीवाद की सदी है। राष्ट्र एवं राज्य को सीमाहीन होने के लिए कहा गया ताकि हर कहीं पूँजी का राज हो। ग्लोबल विलेज की अवधारणा ने बाज़ार का विस्तार किया। कृत्रिम विज्ञापनों के कारण चीज़ें बाज़ार में ज़्यादा बिकने लगी। उपयोग एवं ज़रूरत के बावजूद चीज़ों की खरीददारी हो रही थी। पूँजीपतियों ने लोकतंत्रात्मक अवधारणाओं पर बल नहीं दिया। आर्थिक विषमता समाज में छाई हुई है। साथ ही महंगी कोलोनियों के बीच उपस्थित स्लम भी चिंता का विषय है। पूँजी का एकाधिकार गरीब और अमीर के बीच की दूरी को बढ़ा रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था को जानने के लिए उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण आदि के पक्षों को भी समझना अनिवार्य है।

सन् 1991 के बाद भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव लेकर एल. पी. जी (Liberalisation, Privatisation, Globalisation) का आगमन हुआ। वैश्वीकरण रूपी मूल संकल्पना को आकार देने का काम ऐसी अर्थव्यवस्था करती है, जो किसी देश विशेष के हितों से ज़्यादा संसार भर में पूँजी की लेन-देन को सुगम बनाती है। आर्थिक दृष्टि से यह व्यवस्था असमानता को बढ़ावा देता है साथ ही दबे-कुचले साधारण जन के मूल अधिकारों को भी हड़प लेती है। परिणामस्वरूप यह मानव को मात्र आर्थिक रूप से ही नहीं बाँटता बल्कि सांस्कृतिक, भाषिक आदि विभिन्न रूपों में विखंड़ित एवं विभाजीत करता है।

अर्थव्यवस्था को सुलझाने के लिए नया उपाय खोजा गया। निजीकरण से अभिप्राय स्वामित्व के सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र में तब्दील होने की घटना या प्रक्रिया से है। बाज़ारीकृत समाज में तब्दील होकर न्यू ट्रेड्स या फैंशन के पीछे दौड़ने वाले नव मानव दिखाई देता है। विज्ञापनों ने इस तरह की संस्कृति को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सूचना प्रौद्योगिकी ने तो बाज़ार को बेडरूम तक पहुँचा ही दिया। इक्कीसवीं सदी में वस्तुओं और सेवाओं के लिए वित्त का स्थानांतरण इलक्ट्रोनिक तरीकों से किया जाने लगा है। इक्कीसवीं सदी में अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक बदलाव दिखाई देते हैं। अपनी संस्कृति, अस्तित्व, उपयोगिकता आदि से बहुत दूर मशीनों के बीच आधुनिक मानव को प्रतिष्ठित किया गया है। जाने-अनजाने मनुष्य इस अर्थव्यवस्था के गुलाम बन गए हैं।

इक्कीसवीं सदी में धर्म निरपेक्षता की भावना को हाशिए की ओर धकेल दिया जाने की कुछ प्रवृत्तियाँ जारी हैं। उसके स्थान पर धर्मांधता पनप रही है। धर्मांधता के उन्माद में दूसरों के प्रति घृणा का प्रदर्शन किया जा रहा है। धर्म के नाम पर रूढीवादी एवं पुनरुत्थानवादी सोच को बढ़ावा दिया जाता है। धार्मिक भावनाओं की सुरक्षा के लिए विभिन्न समुदायों में हिंसात्मक

प्रवृत्तियों एवं तनाव को बढ़ावा देना, धार्मिक भवनाओं का राजनैतिक लाभ उठाना आदि इक्कीसवीं सदी के समाज में हो रहे हैं।

2.2.6.धर्मांधता और सांप्रदायिकता

ईश्वर और धर्म मनुष्य के विश्वास से जुड़ी हुई बातें हैं। धर्मांधता वह स्थिति है जब एक व्यक्ति धर्म के नाम पर कही जानेवाली बातें बिना कुछ सोचे समझे विश्वास करता है और अंधे व्यक्ति की तरह साथ चल पड़ता है। धर्मनिरपेक्ष समाज का धर्मांध समाज में तब्दील होने से पूँजीवादी बाज़ार को इसमें स्थान मिलता है। धर्मांधता समाज में व्याप्त पिछड़ेपन असामना, शोषण आदि को बढ़ावा देता है। इक्कीसवीं सदी में धर्म को ऑनलाइन भी बेचा जा सकता है। इसलिए ही समाज में धर्मांधता इक्कीसवीं सदी में एक जटिल समस्या है।

मानवीयता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है सांप्रदायिकता। बाबरी मस्जिद की घटना, गोधरा का दंगा आदि कई घटनाएँ हमारे सामने मौजूद हैं। जिस क्षेत्र में सांप्रदायिकता घुस बैठती है, वहाँ घृणा, शोषण, उत्पीड़न, क्रूरता तथा अनाचार का बोल बाला होता है। धर्म मानव प्राणी की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों में सुख शांति की स्थापना करने पर बल देता है तो सांप्रदायिकता द्वेष और हिंसा का बीजारोपण करती है। स्वार्थ मानव अपने स्वार्थों के लिए धर्म को अपने अनुरूप बदलता है और दूसरों की सुख-शांति को बरबाद करता है। 2002 के गुजरात दंगे, 2013 के मुज़फर नगर के दंगे 2020 दिल्ली दंगे (CAA -NRC) आदि दंगे इक्कीसवीं सदी के समाज की धार्मिक असहिष्णुता एवं धर्मांधता को दर्शाता है।

2.3. हिंदी कविता : विकास के चरण

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता को जानने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालना अनिवार्य है। हिंदी कविता के आंरभिक पड़ावों की विशेषता यह रही कि पहला पड़ाव

आदिकाल या वीरगाथाकाल युद्ध और श्रृंगार का पड़ाव रहा। दूसरा पड़ाव भक्तिकाल भक्ति को प्रधानता देनेवाला पड़ाव रहा जिसमें जायसी, तुलसी, कबीर, मीरा,ताज, सूर आदि भक्ति के कवियों ने भक्ति के उदात्त संदेश काव्य के माध्यम से दिया। रीतिकाल तीसरा पड़ाव रहा, जिसमें रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त कविताएँ प्रमुख रहीं। आधुनिक हिंदी कविता तक आते-आते हिंदी कविता की यात्रा नई चाल में ढलने लगी। उसमें सामाजिक पक्ष को अधिक महत्व मिला। रीतिकालीन कविता के बाद भारतेन्दु युग को आधुनिक कविता का प्रस्थान बिंदु कह सकते हैं।

2.3.1. भारतेंदु युग

हिंदी कविता संसार में आधुनिक चेतना का उदय भारतेंदु युग से माना जाता है। कविता को जीवन यथार्थ से जोड़कर तथा नए विषयों को ग्रहण करके लिखने का प्रयास भारतेंदु ने किया। पुरानी परंपरा को सुरक्षित रखते हुए नए नए उपमानों एवं प्रतीकों को आगे लाने का प्रयास हुआ है। इसी आधुनिकता पर विचार व्यक्त करते हुए प्रभाकर श्रोत्रीय लिखते हैं –“सच्ची आधुनिकता तो वह है जिसमें कवि समाज के यथार्थ और गतिशील बोध से जुड़ने के लिए प्रतिष्ठानों से संघर्ष करता है और अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रख पाता है। इसे मानने में धर्म, रहस्य, रीति, राज्य सबका सहारा छोड़कर अपने पैरों पर खड़ा भारतेंदु युग का कवि आधुनिकता का अग्र पुरुष है।”[6]

भारतेंदु युग की विशेषता यह रही कि सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में अतिरिक्त सक्रियता एवं जागरण रहे हैं। इस युग की जनचेतना में पुनर्जागरण की भावना रही है। इसीलिए तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का प्रयास इस युग में हुआ है। हास्य व्यंग्य के विभिन्न मुहावरे तथा जनभाषा को देश-संबंधी समस्याओं से जोड़ने का प्रयास इस युग की खासियत है। भारतेंदु युगीन कवियों का काव्यफलक अत्यंत विशाल है। उस समय की कविताओं में राष्ट्रीयता, देशप्रेम की भावना, श्रृंगारिकता, सामाजिकता, भक्तिभावना, रीति निरूपण, समस्यापूर्ति, काव्यानुवाद आदि प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। इस

युग के साहित्यकार तो कवि से ज़्यादा समाजसुधारक थे। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, छल-कपट, मिथ्याचार, पाश्चात्य सभ्यता में डूबे हुए शिक्षित वर्गों की कटु आलोचना, देश की दुस्थिति आदि मुद्दों को प्रस्तुत करने का प्रयास इस समय के कवियों ने किया। इस प्रयत्न में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बहुत अधिक सराहनीय काम किया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र विलक्षण प्रतिभा के धनी थे, जिन्होंने बाल्यावस्था में ही अपनी काव्यरचना आरंभ की थी। अपनी कवित्व प्रतिभा तथा रचना क्षमता का ऐसा परिचय दिया था कि पत्रकारों एवं साहित्यकारों ने मिलकर 1880 में इन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि दी। वे सिर्फ कवि ही नहीं थे, बल्कि पत्रकार भी रहे। उनके संपादन में प्रकाशित हुई पत्रिकाएँ हैं –'कविवचनसुधा' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका'। नाटक, निबंध आदि क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाकर खड़ीबोली का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी काव्य कृतियों 'प्रेम-मालिका', 'प्रेम सरोवर', 'गीत गोविंदानंद', 'वर्षा विनोद', 'विनय प्रेम पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणु गीत' आदि उल्लेखनीय हैं। भारतेंदु ने अपनी रचनाओं में भक्ति, श्रृंगारिकता, सामाजिक परिवेश, प्रकृति के विभिन्न संदर्भों को चित्रित किया है। भारतेंदु के जीवनकाल में ही कवियों और लेखकों का एक विशेष मंडल तैयार हो गया था जो भारतेंदु मंडल नाम से विख्यात है। इस मंडल के प्रमुख साहित्यकार थे प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, अंबिका दत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि। भारतेंदु युग की विशेषता यह है कि वह पुरातन और नवीन के संधिस्थल पर स्थित है। समकालीन परिवेश ने इस युग के कवियों को परस्पर विरोधी दृष्टियाँ अपनाने के लिए मजबूर किया है। इस युग की कविताएँ वस्तुनिष्ठता, बुद्धिवादिता, सुधारात्मकता एवं इतिवृत्तात्मकता से युक्त हैं। भारतेंदु युग के कवियों ने प्राचीन और नवीन विषयों के समन्वय पर बल दिया है।

2.3.2. द्विवेदी युग

आधुनिक हिंदी कविता का दूसरा सोपान द्विवेदी युग है । इस युग के पथ-प्रदर्शक, सर्वस्वीकृत साहित्यनेता, विचारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया । यह युग जागरण-सुधारकाल नाम से भी जाना जाता है । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी मौलिक रचनाओं के ज़रिए सभी विधाओं को बल देने का प्रयास किया । उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन द्वारा नए कवियों को आगे बढने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने उस समय भाषा की अस्थिरता को दूर करके भाषा को परिमार्जित करने का प्रयास किया । वे खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयास में कार्यरत हुए । इस युग की कविताएँ आदर्शवादी और नीतिपरक हैं । वर्ण्य विषय का क्षेत्र तो बहुत विस्तृत है । राष्ट्रीयता बोध, मानवता की भावना, नैतिकता की भावना विकृत रूप में श्रृंगार को प्रस्तुत करने का विरोध आदि विभिन्न मुद्दों को प्रस्तुत करने का प्रयास द्विवेदी युगीन कवियों ने किया है ।

रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में जन्मे महावीर प्रसाद द्विवेदी संस्कृत, मराठी, गुजराती और अंग्रेज़ी के अच्छे पंड़ित थे । सन् 1903 में वे सरस्वती पत्रिका के संपादक बने और 1920 तक वे संपादक के रूप में कार्यरत रहे । इन्हीं की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उस समय के लेखकों की पीढ़ी का निर्माण हुआ । वे कवि होने के साथ-साथ आलोचक, निबंधकार, अनुवादक तथा संपादकाचार्य थे । इनकी गद्य-पद्य रचनाओं को मिलाकर लगभग 80 ग्रंथ लिखे हैं । मौलिक काव्य रचनाओं की अपेक्षा अनूदित रचनाएँ सरस हैं । उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं- 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'कान्य-कुब्ज', 'अबला-विलाप' (मौलिक पद्य), 'गंगा लहरी', 'ऋतु तरंगिणी'आदि । इनकी भाषा की खासियत यह रही कि इन्होंने दो प्रकार से भाषा का इस्तेमाल किया है एक तो समस्त भाषा का तत्सम प्रधान रूप तो दूसरा प्रचलित शब्दावलियों से युक्त सरल भाषा का ।

द्विवेदी युगीन कवियों में अन्य प्रमुख कवि हैं -हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, बालमुकुंद गुप्त, भगवानदीन, अमीर अली मीर, लोचनप्रसाद पांडेय, कामता प्रसाद गुरु, मुकुटधर पांडेय आदि । द्विवेदीयुगीन काव्य में विषयगत विविधता एवं व्यापकता है । खड़ीबोली के स्वरूप को निर्धारित करने में इस कालखंड़ ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । छंदों की विविधता भी प्रचुर मात्रा में दर्शनीय है । राष्ट्र को उद्बोधित करनेवाला तथा सुधारने वाला सामर्थ्य इस युग की कविताओं में देखा जा सकता है । साथ ही खड़ीबोली के निर्माण एवं संस्कार में जो भूमिका निभाई है, जिससे हिंदी काव्य के इतिहास में द्विवेदी युग के स्थान महत्वपूर्ण बन जाता है।

2.3.3. छायावाद

हिंदी कविता के विकास की यात्रा में अगला सोपान तो छायावादी युग का रहा। तत्कालीन समय का एक महत्वपूर्ण आन्दोलन है छायावाद। छायावादी प्रवृत्ति का आरंभ सन् 1916 से माना जाता है। 1916 के आसपास छायावादी पद्धति की रचनाओं का प्रकाशन शुरू हुआ । निराला की 'जुही की कली' का प्रकाशन 1916 में तथा पंत के 'पल्लव' की कुछ कविताओं की रचना भी 1920 में हुई थी । इससे यह व्यक्त है कि उस समय के आस पास साहित्य में नया मोड़ आने लगा था। यह एक ऐसी काव्यधारा है जो अपने आप में एक स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। इसके आरंभिक समय में तो रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वानों ने इसे पाश्चात्य साहित्य की रोमांटिक काव्य धारा तथा बंगाल साहित्य का अंधानुकरण कहा। कुछ विद्वानों ने इस रहस्यवाद का अभिन्न अंग माना।

छायावाद का उद्भव 'श्रीशारदा' और 'सरस्वती' नामक पत्रिकाओं से माना जाता है। इस पर डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त का कहना है –"हिंदी की कुछ पत्र-पत्रिकाओं में श्रीशारदा और सरस्वती क्रमशः सन् 1920 और 1921 में मुकुटधर पांडेय और श्री सुशील कुमार द्वारा दो लेख

हिंदी में छायावाद शीर्षक में प्रकाशित हुए थे, अतः कहा जा सकता है कि इस नाम का प्रयोग सन् 1920 या उसके पूर्व से होने लग गया था । संभव है मुकुटधर पांडेय जी ने इसका प्रयोग व्यंग्यात्मक रूप में - छायावादी काव्य की अस्पष्टता (छाया) के लिए किया था,किंतु आगे चलकर यहीं नाम स्वीकृत हो गया ।"[7]

छायावादी काव्य आरंभिक दौर में व्यक्तिनिष्ठ और कल्पना प्रधान रहा है । प्रसाद, निराला जैसे कवियों ने अधिकतर अपनी सुख एवं दुखमयी अनुभूति को ही मुखर किया है जिसमें समाज का हिस्सा भी शामिल है । छायावादी काव्य में अधिकाशत मनोजगत की वाणी को संजोने का प्रयास हुआ है । बाद में व्यक्तिनिष्ठ परिधि से बाहर निकल आए । बाह्य प्रसंगों को चित्रित करनेवाली रचनाओं में प्रसाद की 'प्रलय की छाया', निराला की 'राम की शक्तिपूजा', पंत की' परिवर्तन' आदि प्रसिद्ध हैं । काव्य रूपों की दृष्टि से भी छायावादी काव्य अत्यंत समृद्ध है । 'आँसू', 'तुलसीदास' जैसे खंडकाव्य, महाकाव्य, 'कामायनी', लंबी कविताएँ जैसे प्रलय की छाया, राम की शक्तिपूजा, परिवर्तन आदि रचनाएँ कव्य रूपों की समृद्धि को दर्शाती हैं ।

छायावाद के प्रमुख कवियों में छायावाद के चार स्तंभ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा आते हैं । छायावादी युग में अन्य और भी ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने छायावादी रचनाएँ लिखी, जिसमें रामकुमार वर्मा, माखनलाल चुतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं । छायावादी काव्य के निर्माण में छायावादी युग में अन्य और भी ऐसे रचनाकार है, जिन्होंने छायावादी काव्य संसार को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है । छायावादी काव्य के निर्माण में तल्लीन रहनेवाले कुछ कवि हैं - रामकुमार वर्मा, मोहनलाल महतों 'वियोगी' आरसी प्रसाद सिंह, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' आदि । इसके अलावा प्रेम और मस्ती का काव्य, हास्य व्यंग्यात्मक काव्य, ब्रजभाषा काव्य जैसी धाराएँ भी चलती रही । संक्षेप में कह सकते हैं कि इस युग के कवियों ने सर्जना के विभिन्न क्षेत्रों में

अपनी गतिशीलता की छाप डाली है, साथ ही साथ नई सोच को खोलकर पाठकों के सामने रखने का प्रयास भी किया।

2.3.4. प्रगतिवाद

प्रगतिवाद का संबंध 1936 के प्रगतिशील लेख संघ की स्थापना से मानी जाती है। साथ ही साथ 1917 की रूसी क्रांति की सफलता के कारण सारी दुनिया में शुरू हुए प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन के एक हिस्से के रूप में भी इसे देखा जाता है। कुछ लोगों का मानना है कि प्रगतिवाद मार्क्सवाद का हिंदी रूपांतर है।

प्रगतिवादी कवियों की सहानुभूति सर्वहारा या शोषित वर्ग पर रहती है। प्रगतिवादी कवियों की यह भी कोशिश रही कि साहित्य को जनता के क़रीब लाए। अध्यात्मवाद और नियतिवाद पर विश्वास न करनेवाले प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्म, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन, रांगेय राघव त्रिलोचन आदि आते हैं। पंत की 'युगवाणी', 'ग्राम्या' निराला की 'कुकुरमुत्ता' केदारनाथ की 'युग की गंगा' नागार्जुन की 'युग धारा', त्रिलोचन की 'धरती', शिवमंगल सिंह सुमन की 'जीवन के गान' और 'प्रलय सृजन', रांगेय राघव की 'अजेय खंडहर', 'पिघलते पत्थर', 'मेधावी', भारत भूषण अग्रवाल की 'मुक्तिमार्ग', 'जागते रहो' आदि बहुत सारी रचनाएँ हैं, जो प्रगतिवादी काव्यांदोलन के दौर में प्रमुख हैं। इन कृतियों के अलावा नरेंद्र शर्मा अंचल आर सी प्रसाद सिंह और शंभूनाथ सिंह जैसे कवि भी इसके अंतर्गत आते हैं। असल में प्रगतिवाद ने साहित्यकारों को समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रगतिवादी साहित्य एक ऐसा साहित्य है, जिसने शोषित एवं पीड़ित जनता को राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों से जोड़ दिया है।

2.3.5. प्रयोगवाद

प्रयोगवाद नामक साहित्यिक प्रवृत्ति के जन्मदाता सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय हैं। 1943 में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद के प्रयोग पर इस प्रकार व्याख्या दी है –"प्रयोग सभी काल में कवियों ने किए है। यद्यपि किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए है उनके आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए, जिन्हें अभी नहीं छुआ गया है।"[8] प्रयोगवाद का उद्भव एक विशेष मानसिक पृष्ठभूमि में हुआ था। द्वितीय विश्व महायुद्ध के कारण उत्पन्न भीषण परिस्थितियों ने मध्यवर्गीय समूह के आदर्शों को नष्ट किया। समाज में घोर असंतोष गया। अपने संस्कार, शिक्षा मानसिक परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक कवि अपनी प्रतिक्रिया अपने अनुसार लिखने लगे। प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र है। प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी है। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। प्रयोगवादी कविता ने अस्मिता, निजी व्यक्तित्व और निजता को अधिक महत्व दिया। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं – अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण, शमशेर बहादुर सिंह, रुघुवीर सहाय, नरेश मेहता आदि।

प्रयोगवादी काव्यधारा की कविताएँ 1943 के आसपास उभरती हुई दिखती हैं। अज्ञेय की 'तार सप्तक', 'हरी घास पर क्षर भर', गिरिजाकुमार माथुर की 'नाश और निर्माण', धर्मवीर भारती की 'ठंडा लोहा' इस काव्यधारा की प्रमुख कृतियाँ हैं। प्रयोगवाद आगे चलकर नई कविता में तब्दील हो गई।

2.3.6. नई कविता

प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है, नई कविता। प्रयोगवादियों के 1950 के बाद की कविताओं को नई कविता के अंतर्गत रख सकते हैं। नई कविता पर डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा का

विचार है –"नई कविता का हमेशा आशय होता है उसकी नई परिप्रेषणीयता, अनुभूतियों के नए रूपांतरण और उनके नए अनुभव क्षेत्र, सौंदर्यबोध के नए धरातल, परंपरागत विकृत मूल्यों के परिष्करण, मतवादीभ्रांतियों से मुक्ति पाने की कामना और तादात्म सत्य की वे परिधियाँ जिनमें हमारा रागात्मक रसबोध नए आयामों का अन्वेषण करने की सामर्थ्य पाता है।"[9] नई कविता की अपनी विशेष पहचान है। एक ओर नई कविता ने मानवीय चेतना को महत्ता दी है, तो दूसरी ओर मनुष्य के आकांक्षाओं को भी प्रधानता दी है। इस काव्यधारा में यथार्थ की स्वीकृति के साथ कवि अपने अस्तित्व को भी प्रधानता देते है।

अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नेमीचंद्र जैन, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही आदि नई कविता के प्रमुख कवि हैं। डॉ.जगदीशगुप्त ने 'नई कविता किस्म किस्म कविता' शीर्षक निबंध में नई कविता के विकास के 44 नाम का उल्लेख किया है –"सनातन सूर्योदयी कविता, अपरंपरावादी कविता, सीमांतक कविता, युयुत्सावादी कविता, अन्वयकारी कविता, विद्रोही कविता, बुक्रातर कविता, कबीर पंथी कविता, समाहारात्मक कविता, उत्कविता, विकविता, अभिनव कविता, आधुनातन कविता, नूतन कविता, नाटकीय कविता, एण्डी कविता, गीत कविता, नवप्रगतिवादी कविता, सांप्रतिक कविता, बीट कविता, ठोस कविता, कॉलेज कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, द्वीपांतर कविता, प्रतिबद्ध कविता, अतिकविता, टुकी कविता, ताजे कविता, असली कविता, शुप्त कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, आँख कविता।"[10] लेकिन यह सब काव्यधाराएँ 1960 तक आते आते परिवर्तित होने लगी। 1960 के बाद की साहित्यिक परिस्थितियाँ पूर्ण रूप से बदल गए। 1960 के बाद कविता के स्वर पर असंतोष, अतृप्ति आदि छाने लगे। आगे चलकर

विभिन्न काव्यधाराओं का आगमन हुआ और उनकी खासियत यह रही कि कविता की सही ज़मीन को तलाशने का उद्देश्य जारी रही।

2.3.7. अन्य काव्यांदोलन

कविता की विकास यात्रा में 1960 के बाद के विभिन्न काव्यांदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें प्रमुख काव्यधाराओं का विवेचन विश्लेषण करना उचित रहेगा। मुख्य रूप से अकविता, विचार कविता, वाम कविता, नवगीत परंपरा, महाकाव्य परंपरा आदि इसके अंतर्गत आते है।

'अकविता' की ऐहमियत को स्पष्ट करते हुए अशोक सिंह का कथन है –"समकालीन कविता के दूसरे दौर में अनेक काव्यांदोलन उभरकर सामने आए जिनमें भूखी-पीढी, सनातन सूर्योदयी कविता, अकविता, सहज कविता, आदि का नाम लिया जा सकता है। किंतु इनमें से अकविता का आंदोलन सबसे अधिक जीवंत सिद्ध हुआ।"[11] जगदीश चतुर्वेदी द्वारा 'प्रारंभ' नामक संकलन से इस आंदोलन की शुरुआत मानी जाती है। अकवितावादी कवियों में प्रमुख हैं - श्याम परमार, सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे आदि है। अकविता नई कविता में व्याप्त रूढिबद्धता को तोड़ती हुई आगे बढ़ी। इसमें सामाजिक विसंगतियों एवं विडंबनाओं को बाहर निकालने का प्रयास भी हुआ है। लेकिन बाद में चलकर अकविता के व्यक्तिकेन्द्रित चिंतन ने उसे संकीर्ण बना दिया। उसमें सामाजिक अंर्तविरोध बना रहा।

विचार कविता एक आंदोलन के रूप में नहीं एक पहचान के रूप में आगे आए। इसका उद्देश्य यह जानना रहा कि आज की कविता की केंद्रीय शक्ति क्या है और इसकी पहचान क्या है। इस आंदोलन ने अनुभववाद के स्थान पर विचार तत्व को अधिक महत्व दिया। डॉ.नरेंद्र मोहन ने अपने साहित्यिक मित्रों के सहयोग से 'संचेतना' का विचार कविता अंक निकाला। विचार

कविता की कविताओं में प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। राजीव सक्सेना, कुमार विमल, जयसिंह नीरज, चंद्रकांत देवताले, बलदेव वंशी, नीलम सिंह, गोविंद उपाध्याय आदि इस काव्यधारा से जुडे कवि हैं। अनुभव के स्थान पर विचार को साहित्य में महत्व ने इसे आगे नहीं बढ़ने दिया। इसलिए विचार कविता का कोई ठोस रूप खड़ा नहीं किया जा सका।

नई काव्यधारा के रूप में वाम कविता या जनवादी कविता का आगमन हुआ। इस काव्यधारा की खासियत यह रही कि वह अन्याय, शोषण और दमन के खिलाफ़ आवाज़ बनकर खड़ी रही। आम आदमी की ज़िंदगी की आवाज़ बनकर उन्हें दो वक्त की रोटी दिलाने में वाम कविता ने अहम भूमिका निभाई है। डॉ. ललिताअरोड़ा के अनुसार –"इसका कवि समकालीन व्यवस्था में किसी भी प्रकार के परिवर्तन और प्रगति की संभावना नहीं देखता। वह समस्त परिवेश, धसाव का शिकार और व्यवस्था का रथचक्र लगता है जो किसी की नियति नहीं बन सकता। इसलिए वह इसे उखाड़कर फेंकना चाहता है।"[12] इन जनवादी कवियों में प्रमुख हैं - नागार्जुन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धूमिल आदि।

नवगीत आंदोलन की शुरुआत सातवें दशक से माना जाता है। नवगीतकारों के अपने अपने संग्रह आते रहे। प्रमुख रूप से शंभूनाथ सिंह के 'नवगीत दशक' नाम से तीन संकलन नकले, जिसमें उनके अनुसार नए और पुराने 30 गितकारों के गीतों का संकलन हुआ है। इसके अलावा 'धर्मयुग' और अन्य कई पत्र पत्रिकाओं में भी नवगीत छपकर आए हैं।

नवगीत की मुख्य प्रवृत्तियों में समकालीन विकृतियों पर व्यंग्य, सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना की अभिव्यक्ति, प्रेम के प्रति नया दृष्टिकोण, महानगरीय संत्रास का चित्रण, प्रकृति सापेक्षता की अनिवार्यता अनुभूतियों की सहजता आदि आते हैं। नवगीतकार स्वभाव से विद्रोही रहे हैं। नवगीत का समय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का रहा है। जनता पर शोषण करनेवाले वर्ग, उनके द्वारा बनाए गए सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हैं। इस परंपरा के प्रमुख

रचनाकार हैं - शंभूनाथ सिंह, वीरेंद्र मिश्र, गोपालदास नीरज, बालस्वरूप राही, हरीश भादानी, रवींद्र भ्रमर, मधुर शास्त्री, चंद्रसेन विराट, दिनकर, सोनवलकर, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, महेंद्र भटनागर, मणि मधुकर, शेर जंग गर्ग, देवेंद्र शर्मा इंद्र, अनूप अशेष, रामावतार त्यागी, विकल साकेती, श्रीपाल सिंह क्षेम आदि है।

समकालीन कविता शब्द अंग्रेज़ी का हिंदी रूपांतर है। इसका अर्थ है अपने समय का या समसामयिक। इसे एक जीवन दृष्टि भी कहा जा सकता है, जिसका मूल स्वर प्रतिरोध है। समकालीन रचनाकार वर्तमान समाज की भयावहता के सामने अडिग रहकर उनका सामना करते हैं। यह मानसिकता युगीन परिवेश की उपज होती है। लेखकीय अनुभवों से पाठकीय अनुभवों का सीधा साक्षात्कार कराना समकालीनता की विश्लेषता है। काव्य जगत में समकालीन कविता वह है जो समय विशेष में समान संदर्भों का द्योतन करती है। अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से हटकर उसकी आधार भूमि सामाजिक यथार्थ है। समकलीन कवि नए यथार्थ के दृष्टा और स्रष्टा हैं। तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों एवं समस्याओं को भी दर्शाया गया है।

समकालीन कवियों ने अपने मन के प्रवाह को पाठकों तक पहुँचाने के लिए अभिव्यक्ति के विभिन्न तलों का प्रयोग किया। समकालीन कविता वैयक्तिकता, कल्पनोन्मुखता और आत्माभिव्यक्ति तक सीमित न होकर समकालीनता के सोपानों को पार करती हुई कुंठा, घुटन, संत्रास को भोगनेवाले मानवीय जीवन को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। समकालीन कविता में समसामायिक समस्याएँ, राजनैतिकक परिप्रेक्ष्य आदि विभिन्न मुद्दों पर लेखनी हो रही है। संक्षेप में कह सकते हैं कि समकालीन कविता का कौशल्य धूमिल से प्रारंभ कर अनुज लुगुन तक नए-नए रूपों एवं आकारों में देखा जा सकता है। वैचारिक दृष्टि से समकालीन कविता काफ़ी आगे है साथ ही उन्नत विचारधारा का प्रभाव भी दिखाई पड़ रहे हैं। भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी समकालीन कविता विविधता दर्शाती है।

2.4. इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ

इक्कीसवीं सदी का समय दुनिया को नए ढंग से परिवर्तित करनेवाला समय रहा। क्योंकि समय के साथ साथ कालोचित बदलाव आना स्वाभाविक है। इस परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में सर्जनात्मकता की नई चुनौतियाँ आ गयी हैं। अशोक वाजपेयी के अनुसार "कविता मनुष्य की संवेदना उसकी कल्पनाशीलता और विकल्पों की खोज़ का विस्तार कर उसे मानवीय सच्चाई के नज़दीक ले जाती है और स्पष्ट ही मूल्यवान सामाजिक कर्म है।"[13]

कविता मनुष्य के वस्तुजगत, अनुभव जगत और अभिव्यक्ति जगत के नए रूपाकारों को खोजने की तड़प है। कविता की दुनिया में नए किस्म के तनाव दिखाई दे रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता आम-जनता की पीड़ा, घुटना, निराशा, संघर्ष आदि से जुडी है। राजतंत्र लोकतंत्र पर हावी हो गया है। इसीलिए आम जनता की आशा-आकांक्षा का कोई मूल्य नहीं रहा। महंगाई, भ्रष्टाचार, शोषण आदि ने मिलकर आदमी का जीना खराब कर दिया है। नए काल के साथ नई मूल्य दृष्टि उभरकर आने लगी है। परंपरागत सार्थक मूल्य मानव से दूर हो गए हैं। उसके स्थान पर नए मूल्य स्थापित हो रहे हैं। फिर भी परिवर्तन की दिशा को निश्चित तारीखों से नापा नहीं जा सकता। उनमें आनेवाले परिवर्तन बदलते हुए समय की अंतर्धाराओं से सीधे प्रभावित हैं।

आज के कवि अत्यधिक संवेदनशील हैं तथा वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर तथा मानव के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवाज़ उठानेवाले हैं। कविता की चिंता मानव संस्कृति को बचाए रखना हो गई है। आज के दौर की कविता बदलते रिश्तों, मानदंडों, मनोभावों आदि को प्रकट करनेवाली कविता है। इक्कीसवीं सदी की कविता का वस्तुजगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर इतना जटिल है कि उसकी कोई विषयसूची बनाना कठिन है। इस समय की कविताएँ परिवर्तनगामी भी हैं। कथ्य की दृष्टि से बहुआयामी कविताएँ

जनभाषा में जन जीवन की समस्याओं से जुड़ी हैं। इस कालखंड के कवि मात्र समस्याओं का उद्घाटन न करके उसके उपचारों को हल्का सा संकेत भी देते हैं। शिल्प की दृष्टि से नए-नए प्रतीकों एवं बिंबों का प्रयोग, सीधी-सरल भाषा, व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग आदि इस समय की कविताओं में द्रष्टव्य हैं।

2.4.1. सांस्कृतिक परिवर्तन

किसी समाज की संस्कृति का ज्ञान उस समाज में प्रचलित मूल्यों के आधार पर ही संभव है। इक्कीसवीं सदी के कवि इतिहास, संस्कृति और सभ्यता के गंभीर अध्येता रहे हैं। विश्व बाज़ार की नई वैश्विक संस्कृति देश की सारी पुरानी सभ्यताओं को रौंदकर आगे आ चुकी है। वह चुपचाप नहीं आयी पूरी ताकत के साथ आयी है। नई सभ्यता में कम गोपनीयता होती है। कुमार अंबुज ने अपनी कविता 'नई सभ्यता की मुसीबत' में लिखा है –

> "नई सभ्यता ज़्यादा गोपनीयता नहीं बरत रही
>
> वह आसानी से दिखा देती है अपनी जंघाएँ और जबड़े
>
> वह रौंदकर आई है कई सभ्यताओं को
>
> लेकिन उसका मुकाबला पुरानी चीज़ों से हैं
>
> जिनपर लोग अभी तक विश्वास करते चले आए हैं
>
> उसकी थकान उसकी अक्रामकता समझती जा सकती है।"[14]

नई सभ्यता गोपनीयता को प्रोत्साहन नहीं देती।अपनी खनियों और खूबियों को दर्शाता है। पुरानी कई सभ्यताओं को रौंदकर ही यह नई सभ्यता रूपायित हुई है। पुरानी सभ्यता को विश्वास करने वाले लोगों से तथा पुरानी चीज़ों से ही नई सभ्यता का मुकाबला है। बद्रीनारायण की कविता 'नगाड़े' में बदलती संस्कृति एवं सभ्यता की ओर कवि ने इशारा किया है। अब

आधुनिकता के लिए बजनेवाला नगाड़े को कवि ने इसका उदाहरण माना है। मुनादी, गोलबंदी, शक्तिवाद आदि के लिए बजने वाला नगाड़ा पहले तो सबके लिए बजता था। लेकिन अब ऐसा नहीं रहा।

2.4.2. घटती संवेदनशीलता

समकालीन समाज में संवेदना का छीजना अत्यंत तकलीफ़ देनेवाला यथार्थ है। सभी चीज़ों पर बाज़ार और स्वार्थ हावी हो गए हैं। इसीलिए संवेदना किनारे पर चली गई। घटती संवेदनशीलता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। संवेदना, त्याग, ईमांदारी जैसे आदर्शों का अवमूल्यन होता जा रहा है। बाज़ारीकरण ने मानवीय संवेदना पर सवाल खड़ा कर दिया है। संबंधों में बिखराव भी इसका कारण बढ़ता जा रहा है। आजकल के भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने मानवीय संवेदना पर अधिक प्रहार किया है। विनोद कुमार शुक्ल की 'हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था' कविता में कवि कहते हैं कि वे उस हताशा को जानते हैं, व्यक्ति को नहीं जानते। जिस अनुपात में संवेदनशीलता कम हुई है, उसी अनुपात में हत्या और अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। संवेदना को खतम करने की साजिश के खिलाफ़ अपने प्रतिरोध का स्वर व्यक्त करते हुए 'देखते रहो' में कवि मनमोहन कहते हैं –

> "तुम्हें कुछ करने की ज़रूरत नहीं
> तुम तो बस देखते रहो।"[15]

यहाँ कवि मानव की निष्क्रियत्व की ओर संकेत करते हैं। कुछ करे या कहे बिना ही मनुष्य रह रहे हैं। सबकुछ मानव देख रहे है, लेकिन जिस प्रकार से वह उसपर अपना मत व्यक्त किए बिना रह रहे हैं, वह संवेदनाहीन समाज का लक्षण है। कवयित्री वर्षा श्रीवास्तव ने 'संवेदनशीलता' शीर्षक कविता में विविध प्रकार के अन्याय को देखने के बावजूद चुप्पी की संस्कृति को अपनानेवाले नव मानव को दर्शाने का प्रयास करती हैं। कविता के अंत में कवयित्री

संवेदशील होने तथा आजकल की संवेदनहीन स्थिति को बदलने की सलाह देती हैं। इसके अलावा आर.चेतनक्रांति की कविताएँ 'मोक्ष: इक्कीसवीं सदी', 'वे', 'दुनिया मर रही है' आदि कविताएँ घटनी संवेदनशीलता की सामाजिक स्थिति को दर्शाती हैं।

2.4.3. भूमंडलीकरण

भूमंडलीकरण से यह सामान्य अर्थ स्वीकृत है कि आज पूरी दुनिया 'विश्वग्राम' बनती जा रही है। इस उपभोक्तावादी एवं उपयोगितावादी संस्कृति से जुड़कर होनेवाले जीवन के संकटों का पर्दाफाश कवियों ने किया है।भूमंडलीकरण ने समाज को बहुत ज़ोर से जकड़ा है कि आदमी को पता ही नहीं चलता अपने साथ क्या-क्या हो रहा है। बिन बुलाए मेहमान की तरह भूमंडलीकरण हमारे ऊपर हावी हो गया है। कवि पंकज राग की 'यह भूमंडल की रात है' में वे कहते हैं –

"दिन बड़ा गरीब सा गुज़रे
शाम बड़ी थकी थकी सी हो
भूख हो पर लगे नहीं
हरास हो पर दिखे नहीं
बात सतरंगी करो
यह भूमंडल की रात हैं।"[16]

कवि कहते हैं कि यह भूमंडलीकृत समय है। यह ऐसा समय है जहाँ मनुष्य भूखे होने पर भी भूखे नहीं लगते। थके और हताश हो पर वह दिखाई नहीं देता। बातें तो सतरंगी ही हो कुछ और नहीं। सबकुछ ठीक-ठाक लगे पर कुछ भी ठीक नहीं। इसी तरह निलय उपाध्याय की कविता 'मुझे पछाड़ दिया' में कवि बाज़ार संस्कृति में फँसे व्यक्ति चीज़ों की ज़रूरत न होने पर भी 'मुफ़्त' मिलने की लालच में अपने पुरानी चीज़ों को छोड़ देते हैं। अपनी निजी चीज़ों से व्यक्ति को अलग करनेवाले वैश्वीकरण के भयावह प्रभाव को कुमार अंबुज ने अपनी कविता 'खूबसूरत

घर' में रेखांकित किया है । जिन वस्तुओं के प्रति हमें लगाव था, जिन चीज़ों के साथ हमारे रागात्मक संबंध रहा, वे सब हमारे नज़रों से दूर होते जा रहे हैं । इसके अलावा कुमार अंबुज की 'क्रूरता',अंजता देव की 'घर लौटना' आदि में भी भूमंडलीकरण के प्रभाव पर कविताएँ लिखी गई हैं ।

2.4.4. मूल्य दृष्टि

इक्कीसवीं सदी के समाज में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा नैतिक विषमताएँ व्याप्त हैं । जब-जब युगीन परिस्थितियाँ आती हैं, तब-तब नवमूल्यों को आत्मसात किया जाता है । मूल्यों पर बाज़ार और स्वार्थ का बोलबाला है । इक्कीसवीं सदी के व्यक्ति व्याकुल हैं । वर्तमान समाज में व्याप्त कुंठा, संत्रास, घुटन, अजनबीपन, यौन शोषण आदि समाज को विद्रूप बना रहे हैं । स्वार्थजन्य प्रवृत्तियों ने नैतिकता को लुप्त कर दिया है । असीम ऐश्वर्य के जीने के आगमन के बाद भी आम आदमी खुश नहीं हैं । समकालीन कविता इन मूल्य परिवर्तनों एवं इसके परिणामों की प्रतिक्रिया के रूप में सामने आई । कुमार अंबुज की 'झंडा वंदन' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं । कवि कहते हैं –

"मैं यह सब देखता हूँ और कहता हूँ
-मैं कुछ नहीं देखा

अब आप कौन होते हैं पूछनेवाले
कि कायर होने और अपराधी होने में क्या फर्क है ।"[17]

कवि यहाँ दूसरों के लिए समय न निकालनेवाले मानव की स्थिति को दर्शा रहे हैं । किसी भी काम को देखकर अनदेखा करना, अगर कोई उसके बारे में पूछे तो क्रुध होना आदि मनुष्य की विशेषताएँ बन गई हैं । इस संदर्भ में कवि कहते हैं कि ऐसे मानव के अपराधी या कायर होने में

कोई फ़र्क नहीं है, जो दूसरों के लिए समय निकालना अपनी ज़रूरत ही नहीं समझता। चाहत अन्वी की 'कहानी', 'तुम्हें कौन रोपंगा', निखिल आनंद गिरी की 'अनुभूति', 'घर लौटते हुए', अनूप श्रीवास्तव की 'वर्णमाला का वर्णभेद' जैसी कविताओं में बदलती मूल्यदृष्टि का स्पष्ट अंकन हुआ है।

2.4.5. पारिस्थितिक शोषण

मनुष्य प्रकृति का हिस्सा है। प्रकृति हमेशा से ही मानव सहित सभी प्राणियों के अस्तित्व के सर्वानुकूल रही। हमेशा सह-अस्तित्व प्राकृतिक संतुलन में महत्वपूर्ण है। लेकिन आजकल परिवर्तन हो रहा है। परिवर्तन और विकास दोनों आवश्यक क्रियाएँ हैं, फिर भी इसके परिणामस्वरूप बाद, भूकंप, सुनाति जैसी आपदाएँ हमारे सामने आ रही हैं। विकास के नाम पर मनुष्य जब आगे बढ़ते हैं, तो प्रकृति का ध्यान नहीं रखते हैं। पर्यावरण आंदोलन का केन्द्र प्रकृति है। प्रकृति अपने अंदर एक जैविकता को समेटती है। पर्यावरण विमर्श प्रकृति की खोई हुई जैविकता की प्रतिष्ठा फिर से करना चाहता है। पर्यावरणीय चिंतन या विचारधारा के प्रसार में रेचल कर्सन (साइलेंड स्प्रिंग), रेमंड़ विलियम्मस (कंट्री एंड द सिटी) जैसे अनेक विद्वानों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

पर्यावरण विमर्श साहित्यिक अध्ययन के क्षेत्र में एक नया विमर्श है, जो मनुष्य का मनुष्येतर जगत के साथ संबंध दर्शाता है। मनुष्य किस प्रकार प्रकृति पर अपना हक जताकर उसका शोषण कर रहे हैं उसका खुलासा साहित्य के माध्यम से हो रहा है। मिटता प्रकृति सौंदर्य, प्रकृति पर बढ़ता शोषण आदि के खिलाफ़ इक्कीसवीं सदी के काव्य संसार की आवाज़ बुलंद है। आधुनिकीकरण ने किस प्रकार प्रकृति और मनुष्य के संबंध को नष्ट किया है इसका उल्लेख कवि केशव ने' गज़ब हाल है' शीर्षक कविता में किया है। कविता की पंक्तियाँ है –

“इस ज़मीन के अंदर/ जड़ों का महाजाल है

लेकिन इसके ऊपर /पीपल है न नीम

महुआ न रसाल है

नदी को निहारती /इस निचाट ज़मीन के ऊपर

अब कंक्रीट के वन का

रोपण होगा /गज़ाब हाल है”[18]

यहाँ कवि प्रकृति से होती पेड़ जैसे कि पीपल, महुआ, रसाल आदि की स्थिति को दर्शा रहे हैं। ज़मीन के अंदर केवल जड़ता है। नदी को निहारनेवाली इस ज़मीन के ऊपर सिर्फ़ कांक्रीट की इमारतों का वन ही दिखाई दे रही है। यानी यहाँ कवि व्यंग्यात्मक शैली में कहते हैं कि प्रकृति का हाल गज़ब है। अर्थात प्रकृति की स्थिति दयनीय है। प्रकृति अपना अस्तित्व खो रही है। उसके स्थान पर मनुष्य निर्मिति स्थान ले रही है। हरिश्चंद्र पाठक की ‘बचाना होगा’, नरेश सक्सेना की ‘एक वृक्ष भी बचा रहे’, निशांत जैन की ‘पर्यावरण चेतना से अब जागे हिंदुस्तान’ संजना पोरवाल की ‘पहले हम चूल्हे पर खाना बनाते थे’, कविता वाचकनवी की ‘भूकंप’ आदि कविताएँ भी प्रकृति संरक्षण पर आधारित हैं।

2.4.6. आदिवासी जीवन की स्थिति

आदिवासी शब्द में आदि नाम अपने आप में सार्थक है। हमारी संस्कृति में वन का प्रमुख स्थान है। आदिवासी शब्द का शाब्दिक अर्थ है – प्रारंभ में या आदि में रहनेवाला या जंगली निवासी या आदिम मानव। पर्यावरण से निकटतम दोस्ती रखनेवाले ये लोग धरती की गोद में ही जीना पसंद करते हैं। आदिवासी कवि खुद अपना परिचय देते हुए नया साहित्य रचने लगे। ये कवि अपनी संस्कृति, अपना भूगोल, अपनी जीवन स्थिति, अस्मिता, भाषा आदि को पहचान दिलाते हुए आगे बढ़ रहे हैं। इनमें प्रमुख हैं – निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, हरिराम मीणा,

ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पी, रामदयाल मुंडा आदि। अपनी जीवन स्थिति एवं संस्कृति को पहचान दिलाते हुए तथा अपने समाज को नकारनेवाले समाज पर आक्रोश व्यक्त करते हुए निर्मला पुतुल ने अपनी कविता 'मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़र में' में लिखा है –

"जंगली, असभ्य, पिछड़ा कह/ हिकारत से देखते हमें
और अपने को सभ्य श्रेष्ठ समझ /नकारते है हमारी चीज़ों को
मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़र में
प्रिय है तो बस/ मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने।"[19]

कवयित्री यहाँ आदिवासी समाज को नकारने वाले समाज पर तीखा प्रहार करती हैं। वह समाज आदिवासी समूह को जंगली, या असभ्य कहता है और स्वयं को श्रेष्ठ मानता है। आदिवासी समाज के साथ उनकी चीज़ें भी आधुनिक समाज के लिए अप्रिय हैं। कवयित्री व्यंग्य करती हैं कि आधुनिक समाज हमें पसंद नहीं करता लेकिन हमारे पसीने से पुष्ट हुए अनाज से कोई अप्रियता नहीं। अनुज लुगुन की कविता 'यह पलाश के फूलने का समय है', निर्मला पुतुल की 'आदिवासी स्त्रियाँ बिटिया मूर्म के लिए' आदि कविताएँ भी आदिवासी जीवन की स्थिति को दर्शाती हैं। आदिवासी कविताएँ नए-नए प्रतीकों, रूपकों एवं उपमाओं से भरपूर हैं।

2.4.7. दिव्यांग जन की व्यथा

शारीरिक या मानसिक अक्षमता को विकलांगता कहा जाता है। सामान्यतः एक विकलांग व्यक्ति के मन में निराशा होती है। अपने जीवन को कोसते फिरते रहनेवाले ऐसे व्यक्ति को अगर कोई प्रोत्साहन दे तो वह विकास के शिखर पर पहुँचने की संभावना ज़्यादा है। इस समाज को नई राह दिखाने तथा समाज की मुख्यधारा में विकलांग को लाने का प्रयास विकलांग विमर्श या दिव्यांग विमर्श द्वारा हो रहा है। विकलांग की दशा की ओर संकेत करते हुए भारतेंदु मिश्र की पंक्तियाँ हैं-

"तितलियों को रंगों से

रंगों को खुशबू से

भोजन को स्वाद से

व्यक्ति को शब्द और स्पर्श से

अद्भुत है इनकी स्मरण शक्ति

जिसके सहारे यह तय करते है

अंधेरी ज़िंदगी के ऊँचे नीचे रास्ते"[20]

यहाँ कवि भारतेंदु मिश्र एक अंधे व्यक्ति की जीवन शैली को बहुत बारीकी से दर्शाते हैं। कवि कहते हैं कि एक अंधेरी ज़िंदगी जीने वाला व्यक्ति रंगों की खुशबू से रंग पहचानता है। वह भोजन को बिना देखे स्वाद से पहचानता है। किसी व्यक्ति को समझना हो तो वह शब्द और स्पर्श से स्मरण कर लेता है और उसकी अद्भुत स्मरण शक्ति को कवि बहुत आश्चर्य से देखते हैं। कविता की अंतिम पंक्तियाँ उस अंधे व्यक्ति की अंधेर भरी ज़िंदगी के ऊँचे-नीचे रास्तों के बारे में सोचने के लिए पाठक को मजबूर कर देती हैं। डी.कुमार अजस्र अपनी कविता 'अयोग्य नहीं है हम' के माध्यम से दिव्यांग जन को अपनी शारीरिक या मानसिक स्थिति से आगे बढ़कर दूसरों के लिए हौसला देने के लिए सलाह देते हैं। करने की जज़्बा तथा ताकत को प्रोत्साहित करने तथा उजागर करने का प्रयास कवि ने किया है।

2.4.8. सांप्रदायिकता

सांप्रदायिकता को ऊपर से देखने पर धर्म का पवित्र रूप नज़र आता है, लेकिन उसके भीतरी चरित्र की ओर दृष्टि डाले तो पता चलता है कि उसमें सामाजिकता को समाप्त करनेवाली नकारात्मक शक्ति है। धर्म के अपने सांस्कृतिक मूल्य होते हैं। जब धर्म का मानवीय संस्कृति से अलगाव पैदा होता है, तभी अस्तित्व रक्षा के प्रश्नों को लेकर नया संप्रदाय जन्म लेता है। धीरे – धीरे सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर कुछ वर्ग, जाति अथवा कुछ समर्पित लोगों की संस्कृति में

तब्दील हो जाते हैं । इनका स्वरूप धार्मिक न होकर सांप्रदायिक हो जाते हैं । इस तरह के पागलपन में अगर आम आदमी शामिल नहीं होंगे तो उसका जीना मुश्किल हो जाता है । राजेश जोशी 'मारे जाएँगे' शीर्षक कविता में लिखते हैं –

"जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे
कटघरे में खड़े कर दिए जाएँगे, जो
विरोध में बोलेंगे

धर्म की ध्वजा उठाए जो नहीं
जाएँगे जूलूस में

सबसे बड़ा अपराध है इस समय
निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे
मारे जाएँगे ।"[21]

अर्थात सांप्रदायिक ढाँचा रूपी पागलपन में अगर कोई व्यक्ति शामिल होना ही नहीं चाहता तो हमारे सांप्रदायिक समाज में वह मारे जाएँगे, कटघरे में खड़े कर दिए जाएँगे । तथाकथित धर्म का झंडा फहराकर जुलूस में नहीं जाएँगे तो वह भी मारे जाएँगे । अगर वह निहत्था और निरपराध है तो सबसे बड़ा अपराध यहीं होता है । हर व्यक्ति को इसी ढाँचे में आना है तथा धर्म के नाम पर झगड़ना है ।'कोरोना' नामक कविता में कवि अमिताभ ने चौदह दिन जीवित रहनेवाली एक जानलेवा वायरस को सांप्रदायिकता के वक्ता 'ज़ांलिम' और 'ज़ुल्मी' लोगों के साथ तुलना की है । कवि के अनुसार कोरोना खुद यह नहीं जानता कि वह जानलेवा है

और उसकी आयु सिर्फ़ चौदह दिन है और उसे तो हिंदू मुस्लिम में फ़र्क करना भी नहीं आता। लेकिन सांप्रदायिकता रूपी वायरस किसी को नहीं बख्शता।

2.4.9. वृद्धावस्था का चित्रण

वृद्धावस्था को जीवन का आखिरी पडाव समझा जाता है। सामान्य व्यक्ति अपने सारे कर्तव्यों की पूर्णता प्राप्त कर चुके होते हैं। उम्र की ढलान से एक व्यक्ति की शक्ति क्षमता, सामर्थ्य आदि कम होने लगते हैं। इसीलिए बूढ़ेपन को दूसरा बचपन माना जाता है। वे ज़्यादा बीमार होने लगते हैं। दूसरों द्वारा उनकी आवश्यकताएँ पसंद-नापसंद आदि को नज़रंदाज़ किया जाने लगते हैं। वे अपनी मनोकामना या मनस्थिति को किसी के सामने व्यक्त करना नहीं चाहते। कवयित्री अजंता देव ने अपनी कविता 'बूढे' में बुढ़ापे में वृद्धों की स्थिति को दर्शाया है। कवयित्री कहती हैं–

"शोर करते लोगों के बीच से
उठ जाते हैं तंग आकर
न लपक पाते हैं गेंद
न ठीक से खुलती हैं उँगलियाँ"[22]

यहाँ कवयित्री ने वृद्धों की मनोदशा को बहुत ही बारीकी से दर्शाया है।ज़्यादातर बूढे लोग शोरगुल के बीच बैठना पसंद नहीं करते। शोर के बीच में से बयान ही पसंद करते हैं। एकसाथ बैठनेवाले लोग उनकी परवाह नहीं करते। वे तंग आकर वहाँ से जाते हैं। वे अपने हाथों से चीज़ों को पकड़ नहीं पाते। उँगलियाँ कभी कांपती रहती हैं। उँगलियों को ठीक से खोल भी नहीं पाते। इस दौर में और भी बहुत सारी कविताएँ वुद्धों के जीवन पर लिखी गई हैं। रामकुमार तिवारी की 'मैं प्राचीन हो गया धरती पर', अशोक शाह का 'कहानी एक कही हुई', निरंजन

श्रोत्रीय का 'पार्क में बूढे' नेहा नेरुका की कविता 'चच्चा चल बसे' आदि कविताएँ वृद्धों की समस्याओं को संबोधित करती हैं।

2.4.10. लोकतंत्र की दशा

"लोकतंत्र शासन का एक ढंग नहीं है बल्कि यह स्वतंत्रता और समानता आधारित समाज की आत्मा भी है।"[23] विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र भारत को माना जाता है। जहाँ करीबन 68 करोड़ मतदाता आम चुनावों में अपने मतों को प्रकट करते हैं। बढ़ती जाति की भूमिका ने लोकतंत्र का अपहरण कर दिया है। भ्रष्टाचार ने लोकतंत्र को खोखला कर दिया है। नौकरशाही लोकतंत्रात्मक विकास में बड़ी बाधा बन जाती है। यह गरीबी को अनदेखा कर देता है। विकास के नाम पर भ्रष्टाचार पनप रहा है। लोकतंत्र की न्याय व्यवस्था विकृत हो रही है। जर्जरित होती लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए मात्र नेता, सरकार मात्र ज़िम्मेदार नहीं हैं 'अपार खुशी का मायावी लोकतान्त्रिक गणराज्य और सनातन हँसी मुक्त व्यापार' शीर्षक कविता में कात्यायनी कहती हैं –

"तिवारी जी मिले पाँडेजी से और वे हँसे।

पंतजी-संतजीवगैरा भी आ गये

जैन साहब, शाहजी, वाहजीवगैरा-वगैरा भी जुट गए

और सभी मिलकर खूब हँसे।

वे हँसे कि वे अपने होने पर

खुश थे

राष्ट्रीय प्रगति सांस्कृतिक गौरव और

उद्योग – व्यापार ने मुनाफ़े की

तेज़ बढ़त की तरह हँसे ।"[24]

अफ़सरों की नौकरशाही, भ्रष्टाचार आदि किस प्रकार लोकतंत्र को बदल रहे हैं, उसको व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । जैन साहब पंतजी तिवारी जी सभी नौकरशाही के वक्ता हैं । वे मुनाफ़ेखोर लोग दूसरों को लूट रहे हैं । सभी मिलकर अपने अधिकार का गलत इस्तेमाल कर रहे हैं । अपने जैसे स्वार्थ लोगों से मुलाकात होने पर वे लोग खुश हैं । हमारे राष्ट्र की प्रगति, सांस्कृतिक गौरव और लोकतंत्र से भी ज़्यादा वे उद्योग-व्यापार में मुनाफ़ा लेने में तेज़ी दिखा रहे हैं । लोकतंत्र के पतन की दयनीय स्थिति को पर्दाफाश करने का प्रयास कवयित्री ने किया है । समकालीन कविता ने लोकतंत्र के पतन की दुस्थिति को अपनी कविताओं में व्यक्त की है । निशांत की 'झंडा ऊँचा रहे हमारा', त्रिपुरारि की 'वॉल ऑफ डेमोक्रेसी', पंकज चतुर्वेदी की 'राष्ट्रपति जी' आदि कविताएँ भी लोकतंत्र की दशा को इंगित करती हैं ।

2.4.11. किसानों की स्थिति

भारत एक कृषि प्रधान देश है । लेकिन इसके बावजूद यहाँ के किसान बेहाल हैं । इसी कारण से ही आजकल किसान आंदोलनों ने ज़ोर पकड़ा है । अक्सर उन्हें कृषि करनेवाली भूमि पर अधिकार नहीं मिलता । ज़मीनों का हक हमेशा बड़े साहूकारों, किसानों और महाजनों के पास ही रहते हैं । अगर वह किसी जगह पर अच्छे से खेती करके देता है, तो भी उन्हें फसल का सही मूल्य नहीं मिलता । अच्छे बीज की अनुपलब्धि, ठीक तरह की सिंचाई व्यवस्था का अभाव, मिट्टी का क्षरण, परिवहन में बाधा, पूँजी की कमी आदि बहुत सारे सवाल कृषकों के सामने होते हैं, जो गरीब किसान को और गरीब बना देते हैं । उनकी गरीबी तो पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है । दो

वक्त का खाना, अच्छे कपड़े आदि तो उन्हें नसीब ही नहीं होते। कृषक तो हमारे देश की रीढ़ की हड्डी है। “भारत में किसान आत्महत्या 1990 के बाद पैदा हुई स्थिति है जिसमें प्रतिवर्ष दस हज़ार से अधिक किसानों के द्वारा आत्महत्या की रपटें दर्ज की गई है। 1997 से 2006 के बीच 1,66,304 किसानों ने आत्महत्या की।”[25]

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में कृषकों की समस्या रेखांकित हुआ है। कवयित्री सविता सिंह ‘नींद थी और रात थी’ की पंक्तियाँ हैं –

“जीवन का खेल समाप्त करने की तैयारी
कर रह है एक किसान परिवार

कटोरे में जहर घोला जा रहा है

एक शांति छा जाती है फिर हर तरफ़
सिर्फ़ देह तड़पती है कुछ देर तक”[26]

अर्थात् किसान अपने जीवन रूपी खेल को ज़हर पीकर खतम करनेवाले हैं। कटोरे में ज़हर को घोलकर अपने परिवार को भी पिलाते हैं। उनके मरने के बाद चारों तरफ़ शांति छा जाती है। इस शांति को कवयित्री ने कृषक क्रंदन के रूप में दर्शाया है। और ‘सिर्फ देह तड़पती है’ शब्द का प्रयोग करके कवयित्री यह सूचित करती हैं कि किसान का मन तो पहले से मर चुका है। सिर्फ़ देह का इस दुनिया से जाना बाकी था। जेसिंता केरकेट्टा की ‘सड़क पर किसान’, निलय उपाध्याय की ‘जा रहा हूँ’, रामाज्ञा शशिधर की ‘खेत’ आदि कविताएँ भी कृषक समस्या पर आधारित हैं।

2.4.12. अवसाद और आशावाद

अवसाद या डिप्रेशन एक प्रचलित मानसिक स्वास्थ्य विकार है। इससे व्यक्ति में उदासी, गतिविधियों में रुचि की कमी आदि होती है। यह परिवर्तनशील है और विभिन्न हस्तक्षेपों के माध्यम से इसका इलाज किया जा सकता है। आशावाद तो वैयक्तिक कल्याण के उच्च स्तर, बेहतर मुकाबला, रणनीतियों, अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य के साथ जुड़ा हुआ है। अवसाद आज की सभ्यता के जटिल विन्यास से ही विकसित नई किस्म की सामाजिकता का उप-उत्पाद है। आजकल अवसाद समाज में पनप रहा है। सभ्यता की विराट भौतिक उपस्थिति, ज्वलंत वर्तमानता आदि को इसका प्रमुख कारण मान सकते हैं। मनुष्य की चेतना पर इसका मारक दबाव पड़ता है। पूँजी, तकनीकी, और बाज़ार ने नए यथार्थ को बढ़ावा किया है। इस नए यथार्थ ने मनुष्य के मनोलोक को चकनाचूर कर दिया है। आज के समय की छवियाँ चाहे वह आशावाद हो या 'अवसाद' कविता में निखर उठती है। 'अवसाद' शीर्षक कविता में कवि मुकेश कुमार कहते हैं –

"उम्र से पहले
हो गया है बूढ़ा
वक्त की थपेड़ों की
मार सहकर
उभरी है पेशानी पर
चिंता की लकीरें

परेशानियों के कफ़न में
लिपटा सिमता आदमी

ज़िम्मेदारियों की चक्की में

घुन की तरह पिसता

खुद में खुद जलता आदमी"[27]

यहाँ कवि अपने जीवन में ज़िम्मेदारियों का बोझ लेकर अपनी ज़िंदगी को नष्ट करनेवाले व्यक्ति की व्यथा को दर्शा रहे हैं। वक्त के साथ वह बूढ़ा होता गया। उसके चहरे पर परेशानी एवं चिंता की लेकीरें आ गईं। उसका अवसाद इतना भयंकर है कि वह अपने आप को कफ़न में लिपटा देखता है। वह जिम्मेदारियों की चक्की में घुन की तरह पिसता गया। वह अपने अंदर ज़िंदगी भर जल रहा था। बीते हुए ज़िंदगी की सोच ने उसे अवसाद के कुएँ में धकेल दिया है। जब एक व्यक्ति परेशान या उदास होता है तो वह हमेशा एक सहारा चाहता है। इस प्रसंग में 'थका हारा' नामक कविता की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। कवि मुकेश कुमार कहते हैं –

"इंसान चाहता है /तब एक काँधा

जिस पर टिकाया जा सके

अपने मन का 'सौ मन' बोझ"[28]

अर्थात् एक व्यक्ति हमेशा अपनी उदासी को हल्का करने के लिए एक काँधा चाहता है। उसके मन में सौ परेशानियाँ होती हैं। परेशानियाँरूपी बोझ तभी अवसाद रूपी कुएँ से बाहर तब निकल पाएगा जब उसे समस्या का समाधान रूपी कंधा मिल जाए। यह मनुष्य के जीवन का यथार्थ है। जिस प्रकार के भय और असुरक्षा मनुष्य अपने अंदर महसूस करते हैं, उसका समाधान भी मनुष्य के अंदर ही होता है। कुमार अंबुज के कविता संग्रह 'क्रूरता' (1996), 'अनंतिम' (1998) और 'अतिक्रमण' (2002) में हमारे समय की आहट सुन सकते हैं। जिस प्रकार अवसाद को समकालीन कविता में रेखांकित किया है, उसी प्रकार आशावाद को भी आज

की कविता ने दर्ज किया है । भविष्य को उज्वल बनाने के लिए वर्तमान के सुखों का त्याग कर आगे बढ़ना है । बीच-बीच में रुकावट तो अवश्य होगी ही, लेकिन बिना रुके आस्था और प्रतीक्षा के साथ आगे बढ़ने की ज़रूरत है । कात्यायनी 'निराशा जैसी आशा' शीर्षक कविता में कहती हैं –

"सरल किस्म के आशावाद की
उम्र लंबी नहीं होती ।
गंभीर किस्म का आशावाद
जटिल होता है

निराशावाद जैसा लगता है ।"[29]

यहाँ कवयित्री ज़िन्दगी के असीम रास्ते में गंभीर किस्म की आशा रखने के लिए प्रोत्साहन देती हैं । सरल किस्म की आशाओं का अंत तुरंत हो जाता है । लेकिन आशा का सफ़र लंबा होनी चाहिए । गंभीर किस्म की आशाएँ कई बार निराशा का चेहरा अवश्य दिखाएँगी । कवयित्री यहाँ उतावले लोगों को यह सलाह देती हैं कि अपने आप पर पूर्ण आस्था के साथ आगे बढ़ेता कि अपनी आशाओं को पूर्ण कर पाए । सफ़र की कठिनाई पर रुके बिना आगे बढ़ना है ।

2.5. निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता भोगे हुए यथार्थ का जीवंत दस्तावेज़ है, जो सामाजिक यथार्थ को सशक्त ढंग से प्रस्तुत कर रही है । आज की कविता वर्तमान राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर कटु प्रहार करती है । सभ्यता, मूल्यदृष्टि आदि में आए परिवर्तन का सशक्त चित्रण समकालीन कविता में द्रष्टव्य है । भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकता ने किस प्रकार समाज को ज़ोर से जकड़ा है, उसका पर्दाफाश करने का प्रयास समकालीन कवियों ने किया है । कुछ कविताएँ मनोविश्लेषणात्मक ढंग से अकेलापन, कुंठा, घुटन आदि के बारे में सोचने के लिए

मजबूर् करती हैं । दलित, स्त्री, आदिवासी, वृद्ध, दिव्यांग, कृषक जैसे हाशिएकृत समाज की आवाज़ बनी है । जनभाषा में जनजीवन की समस्याओं को प्रस्तुत करने में समकालीन कविता सक्षम रही । इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता रचनाधर्मिता के नए राह की तलाश में हैं । युगानुरूप होकर इस सदी के मूल्य एवं संभावनाएँ बदल रही है । इस समय की हिंदी कविता नए परिवेश और नए दौर की कविता है । नए-नए प्रतीकों एवं बिंबों का प्रयोग एवं व्यंग्यात्मक शैली आदि समकालीन कविता की खासियत हैं ।

संदर्भ ग्रंथ

1. Society & Trends/Dating apps, India Today, November 4, 2024, p.44.
2. Https://www.thehindu.com/news/national/supreme-court-recognises-transgenders-as-third genders/article 5914577-ece.
3. India Today, August 12, 2024, p.42.
4. एस.एल.दोषी, भारतीय समाज, संरचना और परिवर्तन, पृ.सं. 289-290.
5. सर्वेश कुमार मौर्य, मानवाधिकार की राजनीति, पृ.सं.68.
6. डॉ.नगेन्द्र, डॉ.हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.606.
7. डॉ.वी. सत्यवती, समकालीन हिंदी कविता में व्यक्त सामाजिक राजनैतिक व्यंग्य का अध्ययन, पृ.33.
8. नरेंद्र सिंह, साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना, पृ.सं.88.
9. डॉ.वी. सत्यवती, समकालीन हिंदी कविता में व्यक्त सामाजिक राजनैतिक व्यंग्य का अध्ययन, पृ.35.
10. वही, पृ.सं.37.
11. वही, पृ.सं.38.
12. वही, पृ.सं.42.
13. अशोक वाजपेयी,कविता क्या, कहाँ क्यों, पृ.सं.210.
14. कुमार अंबुज,अमीरी रेखा, पृ.सं.55.
15. मनमोहन, जिल्लत की रोटी, पृ.सं.79
16. पंकज राग, यह भूमंडल की रात है, पृ.सं.9.
17. कुमार अंबुज,अमीरी रेखा, पृ.सं.28.

18. प्रकृति मेल, हिंदी मासिक पत्रिका, नवंबर 2022, पृ.सं.59.

19. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ.सं.55

20. भारतेंदु मिश्र, उडले साथी- कविताकोश

21. राजेश जोशी,प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.सं.79.

22. अंजता देव, राख का किला, पृ.सं.17.

23. डॉ. उम्मेदसिंह इंदा (सं), भारतीय लोकतंत्र दशा और दिशा, पृ.21.

24. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.107,108.

25. www.indianfarmer.org.

26. सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ.सं.28.

27. आलोचना, अंक 56, पृ.सं.92.

28. आलोचना, अंक 56, पृ.सं.91.

29. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.323.

तीसरा अध्याय

हिंदी कविता में स्त्री स्वर : एक सर्वेक्षण

3.1. विषय प्रवेश

सुमन राजे ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में यह उल्लेख किया है कि महिला लेखन को सबसे पहले दर्ज कराने वाले विद्वान राजशेखर हैं। राजशेखर का कथन इस प्रकार है – "पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ भी कवि हैं। सुनते और देखते ही अनेक राजकुमारियाँ, मंत्रियों की पुत्रियाँ, वेश्याएँ एवं नाट्यप्रयोगाओं की स्त्रियाँ शास्त्रों की प्रकांड विदुषियाँ और कवयित्रियाँ हैं।"[1] साहित्येतिहास की ओर दृष्टि डालें तो हमें यह ज्ञात होता है कि पुरुष कवियों की भांति कवयित्रियों ने भी अपनी ओर से भाषा के भंडार की पूर्ति के लिए सफल प्रयास किया है। जहाँ हम तुलसी, बिहारी, देव आदि की चर्चा करते हैं, वहाँ मीरा बाई, सहजोबाई, दयाबाई आदि कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। पुरुष लेखकों को प्रभुत्व के कारण ख्याति अधिक प्राप्त हुई। उस समय प्रचलित कुप्रथाओं, दुराचारों एवं प्रभुत्व से स्त्रियों को उस समय कई प्रकार की हानियाँ झेलनी पड़ीं।

प्राचीन कवयित्रियों की रचनाओं की ओर अगर हम दृष्टि डालें तो पता चलता है कि उनके भाव-विचार बहुत गहन हैं। हिंदी कवयित्रियों की परंपरा की शुरुआत अगर राजशेखर की बात को आगे रखकर हम कहें यानी 'देखने' और 'सुनने' पर आधारित होकर कहें तो सबसे पहले कवयित्रियाँ थेरीगाथाओं के माध्यम से पाठकों के सम्मुख आयीं।

3.2. स्त्री कविता की पहचान

रेखा सेठी के अनुसार "स्त्री – कविता पीड़ित मन के उद्वेलन को चेतना की लौ जगाकर अभिव्यक्ति करती है। वर्चस्व के समक्ष न हारनेवाली संकल्प-शक्ति भी उसमें शामिल है।"[2] स्त्री के 'पर्सनल को पॉलिटिकल' कहने वाली स्थिति को उसने खूब समझा और अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर कविता ने साथ दिया। स्त्री कविता ने यह सोच ही लिया कि जीवन-संघर्षों को आगे राज़दार नहीं रहने देंगे। स्त्री की सृजन प्रक्रिया तथा इतिहास को दर्ज करना ही चाहिए।

स्त्री लेखक होने के साथ – साथ अपने अंदर के सजग इंसान को वे नहीं भूलीं । उन्होंने निजी समस्याओं के साथ ही साथ हमारे समय को बनाने तथा बिगाड़ने वाले मुद्दों पर भी अपनी लेखनी चलाई । अनुपम सिंह के अनुसार "मेरी समझ से स्त्री कविता को मुद्दों में बाँटना सही नहीं है । स्त्री – कविता या स्त्री – साहित्य पूरी दुनिया को स्त्री की दृष्टि से देखने का एक विचार है । वह मुद्दा है।"[3] स्त्री कविता पृथ्वी की बात करती है, मनुष्य और मनुष्यता की बात करती है । इसको मात्र स्त्री की पीड़ा, उनका घुटन, उनके सपने, उनकी कल्पनाएँ आदि के खेमे में न डालकर उससे बढ़कर मानने की सोच रखनी चाहिए । यह थेरीगाथाओं की भूमि रही है । भक्तिकाल में मीराबाई, दक्षिण से आंडाल और अक्कामहादेवी जैसी अनेक स्त्रियों की रचनाशीलता में अदम्य उभार रहा है । श्रेष्ठ स्त्री रचनाकार जैसे महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, अनामिका, कात्यायनी, नीलेश रघुवंशी, सविता सिंह, निर्मला गर्ग, गगन गिल, जेसिंता केरकेट्टा, ज्योति चावला, सुशील टाकभौरे, रजनी तिलक, अर्चना वर्मा आदि को विशेष महत्व मिला है ।

3.2.1. थेरीगाथाएँ

महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश दिया और यह प्रवज्या प्राप्त स्त्रियों को थेरी कहा जाता था । वे अपनी कविताओं में अपनी गाथाएँ लिखती रहीं और यह तत्कालीन समाज की स्थिति को भी दर्शाता है । वैदिक काल के उपरांत रचनाओं का सूत्र इन थेरीगाथाओं में मिलता है । 'खुद्दक निकाय' बौद्ध धर्मग्रंथ सुत्तपिटक के पाँच निकायों में से एक है । इसके नवें भाग में थेरीगाथाओं का संकलन है । इसका रचनाकाल ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी माना जाता है । थेरीगाथाओं के अंतर्गत 100 भिक्षुणियों की गाथाएँ हैं । थेरियों में पुण्णा थेरी, अञ्ञतरा थेरी, मुक्ता थेरी, सुमंगल माता थेरी, पटाचारा थेरी आदि आती हैं । इनमें पुण्णा थेरी ने समाज के धार्मिक अंधविश्वासों के उन्मूलन करने का प्रयास किया । घर गृहस्थी के दृष्टांतों को लेकर अपनी

बातों को कहने का अंदाज़ अञ्ञतरा थेरी का था। घरेलू कामकाज पर सुमंगल माता थेरी ने अपनी बात रखी। राजशेखर के अनुसार "थेरीगाथाओं में संकलित थेरियाँ समाज की विभिन्न सरणियों से आई थीं। इनमें सुमना, जयंती, शैला, क्षैमा, गौतमी आदि राजकुमारियाँ थी। अनुपमा उत्पलवणी आदि श्रेष्ठ कन्याएँ तथा सिंहा सेनापति की पुत्री थीं। वेश्याओं के सवर्ग में विमला, अंबपाली आदि आती हैं। निम्नवर्ग से आई थेरियों में चापा बहेलिए की पुत्री थी, सुमंगला माता छाता बनानेवाले की पत्नी थी और पूर्णिका दासी।"[4]

3.3.आदिकाल की कवयित्रियाँ

आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत कवयित्रियाँ नगण्य हैं। लेकिन रामप्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिंदी की कवयित्रियाँ' में कहा है कि "हिंदी के राष्ट्रभाषा के अनुरूप उमांबा (1272 ई के आसपास) एवं मुक्ताबाई (निधन 1297 ई) जैसी महाराष्ट्र की संत कवयित्रियों ने खड़ीबोली में काव्य रचना की।"[5] इसके बाद हिंदी की बहुसंख्यक कवयित्रियाँ राजस्थान में हुई। गुजरात, उत्तरप्रदेश, पंजाब आदि का भी योगदान रहा।

3.3.1. मुक्ताबाई

मुक्ताबाई मराठी की आदि कवयित्री थीं। वे निवृत्तिनाथ ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव की अनुजा थी। वे एक उत्कृष्ट हठयोगिनी थी। मुक्ताबाई ने खड़ीबोली में भी कविता लिखी है। अपने भाई ज्ञानेश्वर के समान ही मुक्ताबाई की कविता भी उपदेशात्मक है। प्रभाव की दृष्टि से उनको महाराष्ट्र की लल्लेश्वरी मानी जा सकती है।

3.4. डिंगल की कवयित्रियाँ

राजस्थान के चारण भाट प्रमुख रूप से दो प्रकार की रचना करते थे - एक तो गढ़ी हुई राजस्थानी है जिसे डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा में देशी शब्दों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है।

प्रारंभिक साहित्य में प्रमुख रूप से वीर भावना को ही प्रधानता दी गई। उस समय की अधिकतर रचनाएँ डिंगल में ही मिलती हैं। वीरत्व को प्रधानता देनेवाली उस समय की रचनाओं में ओज से अधिक श्रृंगार की भावना देखने को मिलती है। डिंगल काव्य का रचनाकाल इतना विस्तृत है कि उसका काल विभाजन पूर्ण रूप से नहीं कर सकते। उसी समय के वीर और श्रृंगार रस से भरी रचनाओं में कवयित्रियों की रचनाएँ वीर रस कम और श्रृंगार रस को प्रधानता देनेवाली रहीं।

डिंगल काव्य में रचनाएँ करनेवाली स्त्रियों का समय बारहवीं शती के पश्चात माना जाता है। प्रमुख रूप से उनके काव्य के लिए सांस्कृतिक प्रेरणा राजस्थान ही बना है। काव्य जगत में कुछ कवयित्रियों का आगमन मुगल कालीन वैभव के साथ हुआ। राजस्थान के प्रमुख राज्यों के पतन के साथ ही चारण युग समाप्त हो रहा था। फिर भी उसके बाद आनेवाले छोटे- छोटे राजाओं के दरबारों में ये कवि विद्यमान थे। सामंतीय वातावरण में छोटे - छोटे राजाओं एवं जागीरों की छत्रछाया में कई दरबारी कवि होते थे, जो अपने राजा की इच्छानुसार कविताएँ लिखते थे। उनकी स्त्रियाँ इन सबसे अनभिज्ञ रहीं। ज़्यादातर स्त्रियों का क्षेत्र गृह ही था। लेकिन कुछ ऐसे चारणियों का उल्लेख मिलता है, जो अपने पति के आश्रयदाताओं के महल में राणियों के मनोविनोद के लिए रहा करती थीं। युद्ध की प्रेरणा से हटकर उनकी रचनाओं में श्रृंगार की पंक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई मिलती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इसका महत्व कम है। फिर भी नारी द्वारा हुए प्रयास को उल्लखित करना अनिवार्य है। उस समय की महिला लेखकों में भीमा चारणी, चंपा दे रानी, पद्मा चारणी, काकरेची जी, नाथी, बिरजू बाई, राव योधा की साखाली रानी, हरि जी रानी आदि प्रमुख हैं।

3.4.1. भीमा चारणी

भीमा चारणी बिकानेर के बीठू चारण की बहन थी और उनका समय विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी से 1560 के बीच लगभग माना जाता है। उस समय राजा अचलदास का शासन था, जो

कि खीचीवंश का राजा था। अपनी आजीविका के लिए वहाँ पहुँचनेवाली भीमा ने अपनी प्रकृति और मुखर स्वभाव से अपने आश्रयदाता को प्रसन्न किया। इसके पुरस्कार स्वरूप अपनी सहेली उमादे की शादी राजा से करवा दी।

भीमा की वीरता की गाथाएँ मारवाड़ में बहुत प्रसिद्ध हैं। उस समय तक के अंधकारमय नारी के इतिहास में भीमा की गाथा जुगनू की चमक की तरह दिखाई देती है। कई युद्धों के अवसर पर उसने चारणी का काम किया। राजनीति और युद्ध की कटुता को कला और सौंदर्य की कोमलता में मिलाकर भीमा ने एक नई भावना को जन्म दिया। भीमा के संगीत और वीणा इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने कई विपक्षी राजाओं को षड्यंत्र में फँसाकर अपने आश्रयदाता का कर्ज़ चुकाया। मुंशी देवीप्रसाद ने इस चारणी की प्रशंसा भी की है, लेकिन चारण काव्यों के प्राप्त सामग्री में भीमा चारणी की रचनाओं का बहुत कम उल्लेख मिलता है। भीमा चारणी की भाषा में न तो परिष्कार है और न ही पांड़ित्य। स्थानीय प्रचलित शब्दों के प्रयोग का बाहुल्य भी देख सकते हैं। कई अभावों और त्रुटियों के बावजूद उनकी रचनाओं में जीवन है, व्यंग्य है और विदग्धता है।

3.4.2. पद्मा चारणी

पद्मा चारणी का समय सन् 1567 के आस पास माना जाता है। वे चारण माला जी साहू की पुत्री एवं बारहट शंकर की पत्नी थीं। पद्मा बिकानेर राज्य के अंतपुर में अपनी जीविका के लिए रहती थी। भीमा चारणी के समान इनका भी काम अंतपुर के रानियों का मनोरंजन करना था साथ ही किसी चलते हुए विषय के ऊपर पद और कविता लिखती थीं। डिंगल में गीत और कविताएँ लिखा करती थीं। इनकी कविताओं की पंक्तियों में व्यक्त ओज और करुणा काव्य की कसौटी पर उत्कृष्ठ नहीं ठहरते। पर भाव की दृष्टि से इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकते। शब्दावली की विकृतता से भावों को बाहर निकालना पड़ता है। मुगल सेना की शौर्यपूर्ण गति के वर्णन में भी

उनकी भावनाओं की झलक देखने को मिलती है। भावों के व्यक्तिकरण में जो सीधापन है, उससे थोड़ी बहुत मार्मिकता आ सकी है और यह उनकी अविकसित प्रतिभा का द्योतक है।

3.4.3. बिरजूबाई

बिरजूबाई का रचनाकाल सन् 1743 के आसपास माना जाता है। जोधपुर के महाराज श्री अभय सिंह की राजसभा में रहनेवाले चारण कवि करदीन की बहन थीं। कविराज के समान ही बिरजूबाई भी भड़कीले कवित्तों और गीतों की रचना करती थीं। लेकिन स्त्री होने के कारण किसी राजा के अंतपुर में जाकर कविता नहीं सुना सकती थीं। उनमें गीत या कविता लिखने की प्रतिभा न के बराबर थीं। चारण परिवार की होने के कारण अपनी अक्षमता को दर्शाने में लज्जा का अनुभव महसूस करती थीं। बिरजूबाई की बुआ ने उसे किसी से न कहने का वचन देकर उससे पद लिखवाया। चारण का काव्य युद्धकाल में उत्तेजना पैदा करने वाला रहा। उनकी कविताओं में राजाओं एवं शासकों की प्रशंसा जीवन के अन्य अंगों का चित्रण, जैसे कि राजा की वेश भूषा, उनका अंतपुर एवं स्त्रियाँ, आदि प्रेरणा प्रदान करते थे। कविताओं की सीधी साधी तुकबंदी ही उस युग की नारियों की कविताओं की देन है।

3.4.4. चम्पादे रानी

चम्पादे रानी जैसलमेर के राव रहरराज की पुत्री तथा बिकानेर राजा के अनुज पृथ्वीराज की रानी थी। मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार इनका रचनाकाल वि.सं.1650 माना जाता है। पृथ्वीराज स्वयं ही डिंगल और पिंगल के श्रेष्ठ कवि रहे हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट के मुताबिक उनकी रचनाओं की हस्तलिखित प्रति 'प्रेम दीपिका' नाम से प्राप्त है। पृथ्वीराज के उजड़े हुए जीवन में सौरभ लेकर आनेवाली चंपा दे रानी ही थीं। अपनी पूर्व पत्नी की मृत्यु के बाद पृथ्वीराज के जीवन में सूनापन छाया हुआ था। चंपा दे रानी ने अपने मृदु स्वभाव से पृथ्वीराज के सूनेपन को मिटा दिया। अपने वैवाहिक जीवन से प्राप्त सुख और प्रेरणा से चंपा ने

अनेक दोहे लिखे। उनके जीवन के रोचक प्रसंगों का उल्लेख दोहों में यत्र-तत्र द्रष्टव्य है। एक बार ऐसा हुआ कि रसिक और भावुक पृथ्वीराज को दर्पण में एक श्वेत केश दिखाई दिया और राजा ने उसे उखाड़कर फेंक भी दिया। उस प्रसंग को लेकर चंपा दे रानी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"पीथतल धोता आबियाँ, बहली लगी खोड़।
पूरे जीवन मदमरणी, ऊँ भी मूह मरोड़॥
पीथल पल्ली टुमुक्कियाँ बहुल्ली लग गई खोड़।
सामीनता हासा करे, ताली दे मुख मोड़॥"[6]

पृथ्वीराज द्वारा श्वेत केश को देखने पर होनेवाली चिंताओं को दर्शाने का प्रयास चंपादे रानी ने अपने सुंदर शब्दों से किया।

3.4.5. हरिजी रानी चावड़ी जी

रानी चावड़ी जी का विवरण भी मुंशी देवीप्रसाद की 'महिला मृदुवाणी' में मिलता है। गुजरात प्रांत के प्रसिद्ध ठाकुर परिवार में जन्मे चावड़ी जी का समय अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। महाराजा मानसिंह की दूसरी रानी चावड़ी जी की प्रतिभा राजा के संपर्क में प्रबल हो रही थी। अनेक रानियों से घिरे हुए मानसिंह पर चावड़ी जी गुण-ग्राहिता, सौंदर्य तथा कला-प्रियता का प्रभाव सबसे अधिक रहा।

एक बार राजा मानसिंह दरबार में आ गए तभी चावड़ी जी स्नानालय में थी। चावड़ी जी ने मानसिंह से कुलदेव नाथ जी के नाम शपथ करवाई कि वह न आए। राजा का यह शपथ छह महीने तक चलता रहा। इसी के बाद तब वर्षा ऋतु आई, उस सावन की तीज पर चावड़ी जी ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखकर राजा को वापस बुलाने का प्रयत्न किया। इससे राजा मानसिंह का मन रानी चावड़ी जी के लिए पिघल गई।

"बेगानी पधारो म्हारा आलीजा जी हो।

छोटी-सी नाजक धीण रा पीव ॥

ओ सावणियो उमंग योंदे

हरि जी ने ओडने दिखाती चीर ॥

हण ओसर मिलयो कह होसी।"[7]

अर्थात् हे राजा मैं आपके अभाव में अपने सुध-बुध खो रही हूँ। सावन का महीना चारों ओर छा गया है।

राजा मानसिंह के व्यक्तित्व में जो रसिकता थी इसके कारण रानी चावड़ी जी के व्यक्तित्व के लिए विकास का साधन बना। मानसिंह के और भी विवाह करने पर रानी चावड़ी जी ने उस पर मंगल गीतों की रचना की। मानसिंह के व्यक्तित्व की छत्रछाया में चावड़ी जी ने आनंद की प्राप्ति की। चावड़ी जी के गीतों में प्रमुख रूप से रसिक, विलासिता भरी सुहागिन की भावनाएँ तथा उपेक्षिता की भावनाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

3.4.6. रानी रारधरी जी

रानी रारधरी जी का उल्लेख मुंशी देवीप्रसाद द्वारा हस्तलिखित ग्रंथों की खोज-रिपोर्टों में है। इनकी रचनाओं के उदाहरण तथा उनके जीवन का संक्षिप्त परिचय 'महिला मृदुवाणी' में मिलता है। उनके वास्तविक नाम का पता अनिश्चित है। लेकिन मारवाड़ के रारधरा प्रांत के राणा की पुत्री होने के कारण उनके पति काव्य रचना करते थे। रानी राव साहब की पंक्तियों पर रानी रारधरी जी को जो असहमति होती थी, वह कविता के माध्यम से ही प्रकट करती थीं। एक बार नारी-सुलभ चपलता से निकले हुए राव साहब को उत्तर देते हुए रानी रारधरी जी ने जो पंक्तियाँ लिखीं वे इस प्रकार हैं –

"घर ढाँगी, आलम धनी, परगण लूना पास।
लिखियो जिण ने लाभ सी, राड़धड़ा से वास॥"[8]

अर्थात मेरे गृह पर ढाँगी (राज़धरे में बालू के एक विशेष टीले का नाम) है,जहाँ आलम ईश की पूजा होती है और उसके पास ही लूण नदी का प्रवाह है। इसप्रकार के राड़धड़े का वास बड़े भाग्यवान को प्राप्त होते हैं। उनकी लिखी हुई यह चार-पाँच साधारण पंक्तियाँ हिंदी साहित्य में उतना महत्व नहीं रखतीं। फिर भी विशालता में क्षुद्रता की पूर्ण रूप से उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

3.5. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ

मध्यकालीन महिला लेखन हिंदी साहित्य के इतिहास के मध्ययुग से जुड़ा हुआ है। आचार्य शुक्लजी ने हिंदी साहित्येतिहास के पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल तथा उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा। उन्होंने पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल की समय सीमा संवत् 1375-संवत् 1700 माना। और उत्तर मध्यकाल अथवा रीतिकाल की समय सीमा संवत् 1700-संवत् 1900 माना।

3.5.1. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

मध्यकाल की भक्त कवयित्रियों ने भक्ति की दिशा में अपनी रचनाधर्मिता का नया चेहरा प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इसे कम महत्व दिया गया है। उस समय की स्त्री रचनाकारों ने स्त्री चेतना और स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति के लिए भक्ति को सहारा माना। उन्होंने पितृसत्ता का विरोध कविताओं के माध्यम से किया। पूर्व मध्यकाल (संवत् 1375-संवत् 1700) में भारत के वातावरण में धर्म की लहरें आने लगी थीं। उस समय की संघर्ष भरी अवस्था को धर्म की सांत्वना मिलने लगी और सगुण और निर्गुण धाराओं का आगमन हुआ। इस समय

के रचना संसार को समझने के लिए पहले सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों को जानना अनिवार्य है। उस समय के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कारणों से अध्यात्मिकता खिल उठी।

राजनीति की अव्यवस्था के कारण आध्यात्मिक आंदोलन का विकास हुआ। मुसलमानी विजयों के कारण दो अलग-अलग संस्कृतियों एवं दो असम शक्तियों का परस्पर संपर्क हुआ। परिणामस्वरूप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अलग - अलग प्रतिक्रियाएँ आने लगीं। बलात् धर्म परिवर्तन कुरान के सिद्धांतों के खिलाफ़ होने के बावजूद इस्लाम के प्रचार केलिए हिंसा काम कर रहा था। उस समय के हिंदुओं ने अपने सामर्थ्य के अनुसार उनकी हिंसात्मक प्रवृत्तियों का सामना किया। मुसलमान शासकों से हिंदू प्रजा को छुटकारा नहीं मिल रहा था। हिंदुओं की दशा इतनी गिर गई थी कि स्त्रियों को मुसलमानों के घर पर किराए के लिए काम करना पड़ता था। इस राजनैतिक विषमताओं ने किस प्रकार स्त्रियों के जीवन में प्रभाव डाला उस पर भी ध्यान देना अनिवार्य है।

युद्ध में पराजित जाति की स्त्रियों की दशा बहुत दयनीय होती थी। विदेशियों से होनेवाले युद्ध में नहीं, बल्कि राज्यों के बीच में होने वाले युद्ध की यह हालत थी। उस समय सैनिकों द्वारा अपनी कामनाओं को अभिव्यक्त करनेवाले साधन के रूप में देखा जाता था। अराजकत्व भरे शासन में स्त्रियों का सैनिकों द्वारा अपहरण भी एक आम बात बन गई थी। इस प्रकार से राजनैतिक वातावरण ने नारी के जीवन को संकुचित बनाने में अहम भूमिका निभाई है।

भारत की सामाजिक विषमताओं में स्त्री के खिलाफ़ अत्याचार दिखाई देता है। बाल विवाह का प्रतिपादन, सती प्रथा का प्रचार, बहुविवाह आदि के प्रचलन ने स्त्री की ज़िंदगी को चकनाचूर कर दिया। उस समय के कुछ भाग्य-नियामकों ने धर्म के नाम पर बारह वर्ष से अधिक उम्र में होने वाले कन्या का विवाह शास्त्र विरुद्ध कर दिया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार इस

दुप्रथा का मूल यवनों का आक्रमण है। धर्मयुद्ध में विश्वास न करनेवाले यवन स्त्रियों के अपहरण एवं लूटमार बेहिचक करते रहे।

सती प्रथा ने कन्या को समाज के लिए भार बना दिया। अपने पति की मृत्यु के बाद पत्नी को जला दिया जाना यह सूचित करता है कि संसार में स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि एक उपभोग की वस्तु के रूप में देखा गया। स्त्रियों के त्याग और बलिदान के प्रतीक के रूप में इस प्रथा को दिखाया गया। चिता में प्रवेश करने पर होनेवाले चीत्कार को तुमुल नाद में छिपा दिया जाता था। और उस दृश्य की भयावहता को छिपाने के लिए राल जैसे धुआँ देनेवाली वस्तुएँ डाल दी जाती थीं। उस युग की नारी की दुर्दशा इससे स्पष्ट है।

बहुविवाह उस समय प्रचलित तीसरी ऐसी प्रथा थी, जिसने नारी को अनुरंजन या मन बहलाव की सामग्री मात्र बना दिया। उस समय आचारों का बंधन पुरुष के लिए नहीं के समान था। इस प्रथा ने स्त्रियों के पक्ष को हल्का बना डाला। इस प्रकार मध्यकाल की सामाजिक स्थिति स्त्रियों के लिए कठिन रही।

भौतिक क्षेत्रों में जनता के झुकाव को आध्यात्मिकता की ओर लाने का प्रयास चल रहा था। तत्कालीन समय में नारी का मूल्य जड़ पदार्थों से भी कम रहा। जनता निराशा की ओर उन्मुख हो रही थी। जीवन को सार्थक बनाने के लिए आध्यात्मिकता का आश्वासन दिया जाने लगा। मुसलमानों के प्रभुत्व के भय से हिंदू जन अपने आपको अरक्षित महसूस कर रहे थे। विषमता की चरम सीमा पर पहुँचने पर दोनों मत के कुछ विशिष्ट जन को मिलनसूत्र की आवश्यकता महसूस हुई। बाद में चलकर भौतिकता को आध्यात्मिक सफलता में परिवर्तित करने में सूफी फ़कीरों का सराहनीय प्रयास रहा। दोनों मतों की सामान्य चेष्टाओं को स्पर्श करके एक मत आगे रखा। इसमें नारी के कामिनी रूप को ही दर्शाया गया। संत कवियों ने काम का

विरोध आवश्यक बतलाया और नारी के प्रति उपेक्षा और भर्त्सना का विकार प्रकट किया। नारी मात्र रतिभाव को देखते हुए आध्यात्मिक भाव को अनदेखा किया गया। कबीर ने कहा-

"एक कनक और कामिनी दुर्गम घाटी दोय
नारी की झांई परे, अंधा होत भुजंग"[9]

ऐसे परिप्रेक्ष्य के बावजूद उस समय दीक्षा प्राप्त निर्गुण मत की नारियों की वाणी उन संतों के लिए चुनौती बनकर रही।

3.5.1.1. निर्गुण धारा की कवयित्रियाँ

पंद्रहवीं शती के आरंभ से हिंदी काव्य में निर्गुण काव्यधारा का आगमन हुआ। निर्गुण भक्तिधारा की रचनाओं में जाति, वर्ग, वर्णगत भेदभावों तथा उसके फलस्वरूप साधारण जन पर होनेवाले अत्याचारों आदि पर तीखा विद्रोह नज़र आता है। निर्गुण धारा की प्रमुख कवयित्रियों उमा पार्वती, सहजोबाई, दयाबाई, इंद्रामती आदि हैं।

3.5.1.1.1. उमा

निर्गुण पंती कवियों के लिए चुनौती बनकर सामने आयी कवयित्रियों में सबसे पहले उमा का नाम लिया जाता है। उनकी लेखनी का सबूत नागरी प्रचारणी सभा के संग्रहालय में एक हस्तलिखित प्रति के रूप में संकलित है। उनके रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी उनकी रचनागत प्रवृत्तियों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि उस समय की माँग योग और ज्ञान रही। उनके पदों में व्याप्त निराकार ब्रह्म की विवेचना तथा सूफीमत का आभास इस तथ्य को पुष्ट करता है कि वह समय योग और ज्ञान का रहा। उनके पदों से भी यह स्पष्ट झलकता है। पंचतत्व से बने शरीर रूपी वृंदावन को प्रेम और ज्ञान से संपुष्ट करनेवाली उमा की पंक्तियाँ उनकी

तीव्र अनुभूति एवं कल्पना का बोध कराती हैं। राम शब्द का प्रयोग दशरथ पुत्र के रूप में नहीं, बल्कि निर्गुण ब्रह्म के रूप में किया गया है।

> "ऐसे फाग खेल राम राय।
> सुरत सुहागण सम्मुख आय ॥
> सतगुरु जी फगवा बगसाव उमा की अरदास सुनो।"[10]

उमा अपनी दीनता और तुच्छता को भी अपने पदों के माध्यम से प्रकट करती हैं। उनके अनुसार उनकी उपासना न ही अरूप ब्रह्म में है, न ही साकार अवतार में। उनकी लेखनी की भाषा में राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भाषा के प्रयोग में तत्सम एवं तद्भव शब्दों का बाहुल्य देखने को मिलता है। काव्यसौंदर्य के उपकरण उनकी रचनाओं में कम दिखाई देते हैं।

3.5.1.1.2. पार्वती

पार्वती का जीवनकाल तथा रचनाकाल अज्ञात है। उनके पद 'सेवादास की वाणी' नामक संतों की वाणियों के संग्रह में मिलते हैं। उनके पदों से यह ज्ञात होता है कि वे निस्पृह और काम को भस्मीकृत करनेवाले गुरु की शिष्या थीं। उनका पद इस प्रकार है-

> "निसप्रेही निहस्वादी कामदग्धी दिने दिने
> तासु शिष्याँ देवी पार्वती।"[11]

उनके पदों में भौतिक सुखलोलुपा के प्रति उपेक्षा, गुरु के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति आदि देखने को मिलती हैं। गुरु के महत्व की प्रधानता उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र देखने को मिलती है। कहीं भी योग के साथ प्रेम का पुट नहीं दिखाई देता। उन्होंने अवधूत शब्द का प्रयोग करते हुए अवधूत वैरागियों की अनास्था दर्शाने का प्रयास किया है। तत्कालीन समय में अपनी प्रतिभा के विकास करनेवाली लेखिकाओं में पार्वती ने अपना छाप छोड़ा है।

3.5.1.1.3. सहजोबाई

सहजोबाई का जन्म सन् 1743 को दिल्ली के एक प्रसिद्ध दूसर कुल में हुआ था। उनके पिता एक प्रतिष्ठित व्यवसायी रहे हैं। इनके हस्तलिखित ग्रंथों का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में मिलता है। इनकी रचनाओं का संग्रह 'सहज प्रकाश' नाम से इलाहाबाद के वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित है। सहजो बाई के गुरु निर्गुण मत के चरणदासी संप्रदाय के प्रवर्तक चरणदास थे। गुरु और शिष्या का एक संयुक्त हस्तलिखित ग्रंथ पंजाब विश्वविद्यालय के संग्रहालय में है और इसकी लिपी फारसी है। इसमें संकलित सहजोबाई के पद में नारी की भावनाओं का सामान्य रूप देखने को मिलता है। सहजोबाई द्वारा लिखित दूसरा ग्रंथ है 'सहज प्रकाश'। 'सहज प्रकाश' तीन अलग-अलग ग्रंथों में विभिन्न शीर्षकों से मिलता है। 'सहज प्रकाश' में सहजो ने सतगुरु महिमा, गुरु महिमा, साधु महिमा आदि विषयों पर लिखी है।

सहजोबाई की रचनाओं में उनकी साधना ही प्रधान है। सहजो की वाणी में गंभीरता, साधना की दृढ़ता, ज्ञान, प्रेम और भक्ति का समन्वय आदि द्रष्टव्य है। प्रकृति और जीवन के अनेक घटकों से उपमानों को ग्रहण करने के साथ ही गुरु से सीखे हुए सिद्धांतों का प्रतिपादन अपनी रचनाओं में करना ही सहजो बाई को विशिष्ट बनाता है।

3.5.1.1.4. दयाबाई

दयाबाई का जन्मकाल सं 1775 के बीच माना जाता है। दयाबाई सहजोबाई के समान चरपदास की शिष्या रही। सहजोबाई और दयाबाई दोनों शिष्याएँ उनके साथ दिल्ली में चरणदास जी के मंदिर में सेवा करती थीं। उन्होंने 'दयाबोध' नामक ग्रंथ की रचना की। इनकी रचनाओं में इनके तीन नाम उपलब्ध हैं - दया, दयादासी और दया कुंवरी। 'दयाबोध' के अलावा इनकी और एक रचना है 'विनयमालिका'। भाषा पर दयाबाई का अधिकार ज़्यादा रही। 'दयाबोध' नामक ग्रंथ में गुरु महिमा, सुमिरन, सूर, प्रेम, वैराग्य, साध, अजपा जैसे शीर्षकों से वर्ण्य वस्तु के आधार

पर अंगों का विभाजन हुआ है। दयाबाई की रचना 'विनयमालिका' में विष्णु के अनेक अवतारों का वर्णन है। 'विनयमालिका' के दोहों में सगुणोपासना यत्र-तत्र देखने को मिलती है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"किस विधि रीझत हो प्रभु, का कहि टेरूँ नाथ?
लहर मेहर जब ही करो, तब ही होऊ सनाथ ॥"[12]

इसमें सगुणोपासना का छाप देखने को मिलता है। इसमें कवि ईश्वर को उसके विरह का स्मरण दिलाकर अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। 'विनयमालिका' के लेखक के संबंध में मतभेद भी प्रचलित है कि किसी दयादास या दया ने इसकी रचना की है। कुल मिलाकर सहजोबाई की रचनाओं की संख्या की अपेक्षा दयाबाई की रचनाओं की संख्या कम है। परंतु विषय-प्रतिपादन, भावाभिव्यंजना एवं आत्माभिव्यक्ति से दयाबाई ने अधिक सफलता प्राप्त की है।

3.5.1.1.5. इंद्रामती

इंद्रामती धामी संप्रदाय के संस्थापक प्राणनाथ की परिणीता थीं। धामी संप्रदाय के अनुसार हिंदू, मुसलमान और ईसाई एक हैं। इस संप्रदाय के द्वारा विभिन्न संप्रदाय के अनुयाइयों में प्रेम और सद्भावना का प्रचार हुआ। धामी प्रथा के बृहताकार ग्रंथ में इंद्रामती द्वारा लिखित बहुत से अंश मिलते हैं।

धामी पंथ के बृहताकार ग्रंथ में छोटे-छोटे ग्रंथ सम्मिलित हैं। इसमें विभिन्न धर्मों, विशेषकर हिंदू और मुसलमान धर्मविलासियों को एक करने या एकत्व दिखलाने का प्रयास हुआ है। लगभग हर एक ग्रंथ की पंक्तियों में इंद्रामती की लिखी हुई कविताएँ सम्मिलित हैं। प्राणनाथ और इंद्रामती की बारह से भी अधिक संयुक्त रचनाएँ हैं। इस प्रकार हिंदी के उन साधकों में

इंद्रामती का नाम भी आता है, जिन्होंने बंधुत्व की भावना की स्थापना एवं प्रचार करने में अहम भूमिका निभाई है।

3.5.1.2. सगुण भक्तिधारा की कवयित्रियाँ

निर्गुण साधना के कारण जनता को अपने जीवन की संकीर्णताओं के लिए समाधान नहीं मिल रहा था। भौतिक जीवन में व्याप्त निराशा का समाधान जनता ने इंद्रियों के दमन और कामनाओं के हनन में ढूँढा। इस कालखंड में वल्लभाचार्य की कृष्णोपासना उनकी वेदना के लिए उल्लास बनी।

राम और कृष्ण के मूर्त रूपों की प्रतिष्ठा ने भटकती जनता को एक सुरम्य भूमि प्रदान की। उस समय के भक्ति का सिद्धांत दो प्रमुख रूप धारण करने लगे। एक ओर तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनेक आदर्शों की स्थापना तो दूसरी ओर कृष्ण लीला के अंकन द्वारा जनता को आनंद प्रदान किया गया। कृष्ण काव्य परंपरा के कवियों ने व्यक्ति की व्याख्या तो कम की लेकिन भक्ति की महिमा का वर्णन सफल ढंग से किया। वात्सल्य की भावना कृष्ण भक्ति परंपरा का वह प्रधान अंक है, जिससे नारी सबसे अधिक रूप में इस भक्तिमार्ग की ओर आकृष्ट हुई। मातृ रूप के लिए प्रतीक यशोदा रही। यशोदा का निस्पृह दुलार, कृष्ण के प्रति अटूट प्यार आदि भक्तों का आदर्श रहा है। वात्सल्य भाव के अलावा भगवान के प्रति दास्य भाव, सख्य भाव आदि भी इस काव्यधारा में दृष्टव्य हैं। गोपियों की अवस्था को प्रकट करते हुए अप्राप्य प्रेम की व्यथा को सहन करने वाले स्त्री हृदय को दर्शाया गया। प्रेम की अभिव्यक्ति सिर्फ़ एक दुराशा मात्र रह गई। इस प्रकार अपने जीवन की कुंठाएँ एवं अप्राप्य कामनाएँ बाद में चलकर कृष्ण के प्रति तीव्र अनुभूति बनकर काव्य और संगीत में रूपांतरित हो गईं।

3.5.1.2.1. कृष्ण काव्य की लेखिकाएँ

कृष्ण भक्ति धारा की कवयित्रियों की कविता में भावात्मकता को ही प्रधानता दी गई। राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन, प्रेममयी भक्ति, जीवन के प्रति आवश्यक राग रंग आदि प्रवृत्तियाँ इस काव्यधारा की कविताओं में द्रष्टव्य हैं। कृष्ण भक्ति धारा की प्रमुख कवयित्रियाँ हैं – मीरा बाई, गंगाबाई, ब्रजदासी रानी बाँकावती, रानी बख़्त कुंवरि, महारानी सोन कुंवरि, वृषबान कुंवरि, ताज आदि।

3.5.1.2.1.1. मीराबाई

मीरा का जन्म पुराने जोधपुर राज्यान्तर्गत मेडते में हुआ बताया जाता है।

"मेडतिया घर जन्म लिया है,
मीरा नाम कहायो।"[13]

मीरा के जीवन की रूपरेखा इतिहास के पन्नों, उनके पदों तथा जनश्रुतियों के आधार पर निश्चित की गई है। कर्नल टाड तथा शिवसिंह सेंगर के मुताबिक मीराबाई राजा कुंभ की पत्नी रही तो मीरा का आविर्भाव राजा कुंभ की मृत्यु के पहले हुआ होगा। मीरा का वैवाहिक जीवन अल्पायु में ही समाप्त हुआ।

वैवाहिक जीवन में मीरा के पति भोजराज की मृत्यु हुई। उनके जीवनकाल में स्त्री होने के कारण समाज और तत्कालीन वातावरण से अनेक समस्याएँ झेलनी पड़ीं। इस संघर्ष भरे जीवन ने उन्हें निराशा नहीं, साहस प्रदान किया। मायामोह वाले इस चार दिन के संसार को लोक के निषेध की बात करते हुए मीरा टालती हैं। लेकिन यह बौद्ध धर्म का वैराग्य भी नहीं न कि कबीर के निर्गुण भक्तिधारा का स्वर। उनकी भक्ति भावना में कृष्ण ही महत्वपूर्ण है।

भक्तिकालीन भक्ति साहित्य में मीरा की अहमियत को दर्शाते हुए डॉ.मृत्युंजल उपाध्याय कहते हैं – "भक्तिकालीन साहित्य में आराधना, उपासना, त्याग और समर्पण का कोई अन्यतम प्रतिमा तो वह मीरा। वह नारी है और नारी जीवन में अनेक वर्जनाएँ हैं । बाधाएँ हैं । वह सारी अर्गला, विषमता - विपरीतता से विद्रोह कर नाच उठती है । माया मोह की धूल उड़ जाती है । राजसीपन तिनके के समान विलीन हो जाता है । कुल मर्यादा ओस के समान छूमतर हो जाती है ।"[14] मीरा के काव्य की प्रमुख विशेषता उनके प्रेम की पीर है जो विश्व साहित्य के लिए अमूल्य निधि है । उनकी पीर शोभाशाली प्रियतम के प्रति है । उनके अनुसार सौंदर्य स्वर्ग का परिचायक है । उनका विरह मात्र रहस्यवादी विरह नहीं है, बल्कि कृष्ण की लौकिकता और अलौकिकता का संगम दृश्यमान है । मीरा के प्रेम में निराशावाद का कोई स्थान नहीं ।

मीरा के गीतिकाव्य में एकरसता, भाव प्रवणता, सरलता एवं संक्षिप्तता जैसे गीतकाव्य पंचतत्व विद्यमान हैं । उनका गीतिकाव्य में अनुभूति की तीव्रता तथा अभिव्यक्ति की सफलता में एकदम बेहतरीन है । मीरा की प्रमुख रचनाएँ हैं – 'गीत गोविंद की टीका', 'नरसी जी का माहरा', 'राग गोविंद', 'मीरा के पद' आदि ।

मीरा की भाषा न कि पूर्ण रूप से राजस्थानी है न कि ब्रज । उनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है । उनकी शैली गेय पदरचना की शैली है । मीरा के पदों की स्वच्छंद गति से यह अवश्य पता चलता है कि उनके भावों की अभिव्यक्ति में छंदों को नहीं बाँधा । उनके भावों के अनुसार ही छंदों की गति की निर्मिति हुई है । लेकिन परशुराम चतुर्वेदी ने उनकी रचनाओं में पंद्रह प्रकार के छंद बताए हैं । उनमें प्रमुख हैं - सार छंद, सरसी छंद, विष्णु पद, दोहा समान सवैया, शोभन छंद,ताटंक छंद, कुंडल छंद आदि । उनकी तीक्ष्ण अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ने उनको अमरता का वरदान दिया है । उनके व्यक्तित्व की भाँति ही उनका काव्य अनुपम रहेगा ।

3.5.1.2.1.2. गंगाबाई

गंगाबाई कृष्ण काव्यधारा का ऐसा स्वर है जो एक एकांत प्रवाह बनकर बृहत्तर प्रवाहों की गरिमा की तुलना में उपेक्षित रह गईं। वे विट्ठलदास की शिष्या थीं। मिश्र बंधुओं के 'मिश्र बंधु विनोद' में इनका उल्लेख मिलता है। गंगाबाई के रचनाकाल के संबंध में कोई निश्चित समय उपलब्ध नहीं है। परंतु विट्ठलनाथ की शिष्या होने के कारण इनका समय संवत् 1607 से सन् 1505 है, ऐसा अनुमान लगा सकते हैं। वे क्षत्रिय कुल में जन्मी थीं तथा महावन नामक स्थान में निवास करती थीं। उनकी जीवनी के संबंध में और कुछ उल्लेख प्राप्त नहीं है। वे विट्ठल गिरिधरन के नाम से भी जाने-जाते हैं। उनके पदों को विट्ठलनाथ के शिष्यों के पदों के अंतर्गत विट्ठल गिरिधन के पदों के नाम से संग्रहित किया गया है और उनका स्वतंत्र ग्रंथ 'गंगाबाई के पद' नाम से प्राप्त है।

कृष्ण काव्यधारा की लेखिकाओं के पदों में अधिकांशतः कृष्ण के माधुर्य तथा श्रृंगार भावों को ही दर्शाया गया है। इससे भिन्न होकर गंगाबाई ने कृष्ण के वात्सल्य भाव को अधिक रूप से ग्रहण किया है। कृष्ण के जन्म पर यशोदा के उल्लास पर गंगाबाई की पंक्तियाँ हैं-

"रानी जू सुख पायो सुत जाय/बड़े गोप वधून की रानी हँसि हँसि लागता पाय ॥
बैठी महरि गोद लिये ढोटा आछी सेज बिछाय।
बोलि लिए ब्रजराज सबनि मिलि यह सुख देखी आय ॥
जेई जेई बदन बदी तुम हमसों ते सब देह चुकाइ।
ताते लेहु चौगुनी हम पै कहत जाइ मुसकाइ ॥
हम तो मुदित भये सुख पाय। चिरजीवों दोउ भाइ।
श्री विट्ठल गिरिधन कहत ये बाबा तुम माइ ॥"[15]

पुत्र वरदान से संतुष्ट यशोदा की उत्सुकता एवं अपने सुत की मंगल कामना के लिए आग्रह करती हुई दिखाई दे रही है। गंगाबाई के अनुसार परंपराओं तथा रीतियों का पालन करने में स्त्रियाँ ही जागरूक हैं, पुरुष नहीं। यह रूढिवादी चिंतन भी इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

गंगाबाई के स्वतंत्र ग्रंथों के अलावा पद संग्रहों में भी इनके पद सुलभ हैं, जैसे कि बधाई गीत सागर, बधाइ सागर, गुसाई जी का कीर्तन, उत्सव के पद आदि संग्रहों में भी इनके पद उपलब्ध हैं। इसके अलावा वल्लभ संप्रदाय के अनेक पदसंग्रहों में भी इनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं।

गंगाबाई की काव्यगत विशेषताओं की ओर अगर ध्यान दे तो पता चलता है कि उनके पदों में गद्यात्मक नीरसता नहीं है। उनकी भावनाओं में सरसता एवं सजीवता है लेकिन उनकी रचनाएँ सरल एवं स्वाभाविक हैं। उनकी रचनाओं में एक ओर तो मानव मन की प्रवृत्तियों का आभास मिलता है तो दूसरी ओर संपूर्ण वातावरण के उल्लास की अभिव्यक्ति भी मिलती है। कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि कृष्ण काव्य परंपरा के महिला लेखकों में गंगाबाई का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

3.5.1.2.1.3. ब्रजदासी रानी बाँकावती

राजा आनंददास की पुत्री बाँकावती का जन्म जयपुर राज्य के लिवाण प्रदेश के कछवाहा नामक राजवंश में हुआ। इनके नाम के साथ बाँकावती का प्रयोग इनके वंशज भगवानदास जी को मिले बाँका पदवी के कारण होता है। भगवानदास को अकबर ने उनकी वीरता के कारण बाँका पदवी दिया था। अपने पूर्वजों के गौरव के प्रतीकस्वरूप स्त्रियों द्वारा बाँकवती तथा पुरुषों द्वारा बाँका का प्रयोग अपने नाम के आगे किया जाता है। इनका जन्म सन् 1703 के आस पास माना जाता है।

ब्रजदासी रानी बाँकावती कृष्ण की घनिष्ठ प्रेमिका थीं। उन्होंने श्रीमद्भागवत् का छंदोबद्ध अनुवाद किया और यह छंदोबद्ध अनुवाद ब्रजदासी भागवत नाम से प्रसिद्ध है। अनुवादक के रूप में उन्हें बहुत अधिक सफलता मिली है। उनका ब्रजदासी भागवत दोहा-चौपाई छंद में हुआ है। अनूदित ग्रंथ इतनी सजग ढंग से बना है कि भागवत के संपूर्ण कथा का यथातथ्य वर्णन देखने को मिलता है। इनको प्रथम स्त्री कवि मानना पडेगा जिनके पदों में मुक्त गेय प्रणाली को छोड़कर द्विपदों तथा दोहों की प्रबंधात्मक शैली का उपयोग किया है। उनमें ग्राहक शक्ति तथा अभिव्यक्ति की क्षमता है। उनकी पंक्तियाँ इस कथन को पुष्ट करती हैं। उनके काव्य का उद्धरण है –

"जैसे रेत चमक मृग देखी। जल के भ्रम मन माहिं सपेखी॥
जल भ्रम झूठ रेत ही सत्य। भ्रम सों देखिपरत जल छत्य॥
जल भ्रम काँच माहिं ज्यों होत। सो झूठों सति काँच उदाते
यों झूठो सबही संसारा। साँची हौ स्वामी करतारा॥"[16]

इसमें कवयित्री ने संसार की नश्वरता की चिरतृष्णा को मृग मरीचिका के समान कहा। उनके अनुसार संसार में जो कुछ व्याप्त हैं वे प्रभु की छाया हैं, माया हैं, प्रवंचना हैं। काव्यगत दृष्टि से श्रीमदभागवत् का मूल्य साधारण है, लेकिन कृष्ण काव्य परंपरा में गंभीरता जोड़ने का श्रेय इन्हीं को जाता है। काव्य जगत में इसकी अहमियत से अधिक हम भक्त जगत में इनकी यह कृति अमर रहेगी।

3.5.1.2.1.4. रानी बख्त कुँवरि

रानीबख्त कुँवरि का उपनाम प्रियासखी था। खोजों के अनुसार इनका रचनाकाल संवत् 1734 है। प्रियासखी का केवल एक ग्रंथ उपलब्ध है – 'प्रियासखी की बानी'। इसमें प्रमुख रूप से राधाकृष्ण की युगल लीलाओं का वर्णन है। होली की मादकता में मस्त राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन उनकी रचना में इस प्रकार हुआ है-

"सखी! यो देई होरी खेलें।

रंगमहल से राधावल्लभ रूप परस्पर झेलें।

रूप परस्पर झेलत होरी खेलत खेलनेवाले ॥

प्रेम पिचक पिय नैन भरे तिय, रूप गुलाल सुमैसे।

कुंदन तन पर केसरि फीकी, स्याम गौर भये मैस्ते ॥"[17]

इसमें होली खेलते वक्त राधाकृष्ण की उन्मुक्त क्रीड़ाओं का वर्णन है। लेकिन उनके काव्य की प्रेरणा रतिभाव नहीं है, बल्कि प्रेम के द्वारा प्राप्त उल्लास तथा सुख की भावना है। किशोर लीलाओं का चित्रण उनकी रचना में प्रखर रूप से दिखाई देता है। सखियों के साथ होली खेलते हुए कृष्ण को अपने वश में करनेवाली राधा की समर्थता को भी कवयित्री ने दर्शाया है। राधा वल्लभीय साहित्य के इतिहास में प्रमुख पृष्ठ के रूप में प्रियासखी की रचनाएँ रहेंगी।

3.5.1.2.1.5. महारानी सोनकुँवरि

महारानी सोनकुँवरि का उपनाम सुवर्ण बाले था। राधावल्लभी संप्रदाय को माननेवाली सोनकुँवरि जयपुर राजवंश की रानी थीं। विशेष अवसरों पर गाए जानेवाले कृष्ण पूजा से संबंधित इसके गीतों का संकलन सुवर्ण बलि की कविता नाम से संग्रहीत है। इस पुस्तिका का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलता है। इसमें 201 पद संग्रहित हैं।

3.5.1.2.1.6. वृषभानकुँवरि महारानी

ओरछा राज्य की महारानी वृषभानकुँवरि का रचनाकाल 1885 से लेकर माना जाता है। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं – 'भक्ति विरुदावली', 'औरंग चंद्रिका' और 'दानलीला' इनकी रचनाओं का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टों के परिशिष्ट में प्राप्त होता है।

3.5.1.2.1.7. ताज

ताज का जन्म, रचनाकाल, मुत्यु आदि संदिग्ध हैं। लेकिन विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न तिथियों का उल्लेख किया है। शिवसिंग सेंगर के अनुसार ताज का जन्म संवत् 1652 है, तो मुंशी देवीप्रसाद ने इनका जन्मकाल संवत् 1700 के लगभग माना है। ताज कवि नाम से उनके स्त्री का कोई प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन मुंशी देवीप्रसाद तथा अन्य लेखकों ने अपने ग्रंथों में ताज का नाम स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया है। इनमें प्रगाढ कृष्ण भक्ति रही है। प्रसिद्ध मुसलमान कृष्ण भक्त रसखान के समान ही ताज भी कृष्ण भक्ति की शक्ति और रूप पर आकृष्ट थे। उन्होंने व्यंग्य और कोई लांछना के बिना हिंदू धर्म में प्रचलित आडंबरों पर आक्षेप किए हैं। उनकी पंक्तियाँ हैं –

"काहू को भरोसे बद्रीनाथ जाय पायँ परे
जो तुम चाहत एक बिसे,
हम एक के बीस बिसे तेहि मानो ॥
राह बड़ी है जो प्रेम के पथ की,
चातुर होय कोई चित आनो।
जीवन ताज कहे जग में,
तुक चाराहि आदि के अक्षर जानो ॥"[18]

इन पंक्तियों के माध्यम से उन्होंने उपहासप्रद वस्तुओं की महत्वहीनता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। ताज की काव्य शैली चिर परिचित कृष्ण काव्य के लेखकों की शैली नहीं है, अपितु कवित्व और सवैय्या शैली है। उन्होंने कई स्थानों पर अलंकार जैसे कि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग करके काव्य के सौंदर्य को दुगुणी की है। पंजाब निवासिनी होने के कारण उनकी कविताओं में उर्दू तथा पंजाबी शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है।

इन कवयित्रियों के अलावा कृष्ण भक्तिधारा के कवयित्रियों में बीशं, छाकुँवरि बाई, बीबी रत्न कुँवरि, चंद्रसखी, पजन कुँवरि, स्वर्ण लाली, कृष्णावती, माधवी रसिक बिहारी बनीठनी जी, अलबेली अली भी आती हैं।

3.5.1.2.2. राम काव्य की लेखिकाएँ

भक्तिधारा की वह शाखा है जिसमें रामकाव्य मध्यकालीन सगुण भारत के तमाम जन लगातार स्वयं आनंदानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। राम भक्त काव्य की कवयित्रियों की कविता में सख्य भाव, राम के प्रति प्रेम भावना, युगल लीलाओं का वर्णन आदि देखने को मिलते हैं। राम काव्य की लेखिकाएँ मधुर अलि, प्रेम सखी, प्रताप कुंवरि बाई, तुलछ राय आदि हैं।

3.5.1.2.2.1. मधुर अली

राम काव्यधारा की सर्वप्रथम कवयित्री रचनाकाल की दृष्टि से मधुर अली को मानी जाती है। इनका जन्म संवत् 1615 को माना जाता है। वे ओरछा नरेश मधुर शाह के आश्रय में रहती थीं। इनकी रचनाओं में श्रृंगार नहीं भक्ति की प्रेरणा मिलती है। इनके रचे हुए प्रमुख दो ग्रंथ हैं–'राम चरित्र' और 'गानस देव लीला'।

3.5.1.2.2.2. प्रेम सखी

प्रेम सखी का जन्म सन् 1800 तथा रचनाकाल संवत् 1840 को माना जाता है। प्रेम सखी रामकाव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं। उनके पदों के अनुसार रचनाओं को दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं - एक तो नखशिख के पद जिसमें राम का सौंदर्य वर्णन है और दूसरा है स्फुट विषयों पर लिखे हुए पद। उनके उपास्यदेव राम थे। अपने उपास्यदेव राम के चरणों की महान शक्ति को अपनी पंक्तियों में उन्होंने इस प्रकार लिखा है-

“कल्प लता के सिद्धदायक कल्पतरु
कामधेनु कामना के पूरन करन हैं।
तीन लोक चाहत कृपाकटाक्ष कमला की,
कमला सदाई जाकों सेवत सरन है ॥”[19]

कोमल एवं सरल शब्दों से कवयित्री ने अपनी रचनाओं में भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने कवित्व, सवैये, दोहे आदि लिखे हैं।

3.5.1.2.2.3. प्रताप कुँवरि बाई

रावलोत वंश में जन्मे प्रताप कुँवरि बाई मारवाड़ के महाराजा मानसिंह की पत्नी थी। मानसिंह के देहांत के बाद उसका जीवन वैधव्य की निराशा में बदल गया। वह बाद में भगवद भजन, दान-पुण्य आदि सत्कर्मों में लीन हो गईं। उन्होंने अनेक मंदिरों की स्थापना कराई। इनके द्वारा रचे हुए ग्रंथ ज़्यादातर राम चरित्र पर लिखे गए हैं।

प्रताप कुँवरि बाई के ग्रंथों की संख्या 15 हैं। ये ग्रंथ हैं - रामचंद्र महिमा, रामगुण सागर, रघुवर स्नेह लीला, राम सृजस पचीसी, राम प्रेम सुखसागर पत्रिका, रघुनाथ जी के कवित्व, भजन पद हरजस, प्रताप विनय, श्री रामचंद विनय, हरिजस गायन। राम भक्ति के अतिरिक्त उन्होंने अपनी रचनाओं में ज्ञान की विवेचना भी की है, जिसमें मुख्य हैं - ज्ञानसागर तथा ज्ञान प्रकाश। दोनों रचनाओं की तुलना करें तो कह सकते हैं कि राम के चित्रांकन से हटके ज्ञानयोग संबंधी पदों का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

3.5.1.2.2.4. तुलछराय

प्रताप कुँवरि बाई के साथ काव्य रचना का अभ्यास करनेवाली तुलछराय की रचनाओं में राम के रसिक व्यक्तित्व, सखियों के साथ होली आदि का चित्रण मिलता है। राम के मोहक रूप

में अपना तन-मन-धन अर्पित करने में जीवन की सार्थकता तलाशनेवाली तुलछराय के गीतों में प्राप्त राम प्रताप कुँवरि बाई के गीतों के राम से मिलता-जुलता है। तुलछराय के काव्य की भाषा राजस्थानी तथा सरल संस्कृत मिश्रित ब्रजभाषा है।

3.5.2. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस काल की समय सीमा आचार्य रामचंद शुक्लजी के अनुसार संवत् 1700- संवत् 1900 है। नामकरण की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इस काल को रीतिकाल कह सकते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार काल कहा। उस समय की साहित्यिक स्थिति को जानने के लिए राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवस्था को परखना अधिक समीचीन होगा।

राजनैतिक दृष्टि से देखा जाए तो यह काल मुगल शासकों का काल रहा। मुगलकालीन वैभव में विलास की परकाष्ठा चरम सीमा पर पहुँच गई थी। विलास के विविध उपकरण उनके दरबारों में पर्याप्त मात्रा में सुलभ रहे। वैभव के इस युग में नारी मात्र उपभोग की सामग्री रह गई। बूढी स्त्रियों से तो जासूसियों का काम करवाता रहा। विभिन्न स्थानों से सुंदर स्त्रियों के धोखे से लेकर महलों में श्रृंगारिकता से भरे नग्न नृत्य करवाते थे। अवध शासकों का अंत भी मुगल शासकों के समान दयनीय रहा।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो इस युग को आदि से अंत तक घोर अधःपतन का युग कहना पड़ेगा। सामंतवाद के सभी दोषों का असर सामान्य जनता पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से पड़ रहा था। जनता की स्थिति अति दयनीय रही। उनकी शिक्षा, चिकित्सा, संपत्ति आदि का कोई प्रबंध नहीं हो रहा था। जनता की ऐसी शोचनीय अवस्था में मूल्यों का स्थान तो न के बराबर होगा। नारी को केवल अपनी संपत्ति मानकर उसका भोग करना उनका मूल मंत्र रहा।

कन्याओं का अपहरण करके उनको सताना तो साधारण सी बात बन गई थी । उनके अनुसार जीवन में रस की सृष्टि करने का एक मात्र उपाय नारी रही । ऐसी सामाजिक स्थिति में रीतिकाल के कवियों के अंदर प्रेम कम रसिकता अधिक रही और काव्य रचना जनता के लिए नहीं, राजाओं और सामंतों के लिए रही ।

सामाजिक अवस्था के समान ही सांस्कृतिक स्थिति भी शोचनीय रही । विभिन्न राजाओं जैसे कि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदारतावादी नीति एवं सूफियों और संतों के उपदेशों के फलस्वरूप हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों की एकता का उपक्रम चल रहा था, उसे औरंगज़ेब की कट्टरपंथी ने चकनाचूर कर दिया । हिंदू धर्म के लोग अपने आराध्य देव राम-कृष्ण की लीलाओं को अपने जीवन में खोजने लगे तो दूसरी ओर रूढ़िवादिता के अत्यंत बढ़ जाने के फलस्वरूप मुस्लिम धर्म वाले निजी ज़िंदगी से हट गए । जनता के अंधविश्वासों का बुरी तरह से लाभ मुल्ला और पुजारी उठाने लगे । संत और सूफी पंडित तब भी विद्यमान थे, लेकिन वे जनता को अधिक प्रभावित नहीं कर सके ।

3.5.2.1. रीतिकाल की कवयित्रियाँ

रीतिकाल की कवयित्रियों की कविताओं में श्रृंगार रस की भावना, जीवन संबंधी घटनाओं पर प्रतिक्रिया, पराश्रय की भावना आदि देखने को मिलती हैं । रीति काल की प्रमुख कवयित्रियाँ प्रवीणराय पातुर, रूपवती बेगम,तीन तरंग, सुंदर कली आदि हैं ।

3.5.2.1.1. प्रवीणराय पातुर

वारांगना कुल में जन्में प्रवीणराय पातुर कवि केशवदास की काव्यप्रेरणा थी । वह वेश्या थी और ओरछा नरेश इंद्रजीतसिंह की काव्यप्रेरणा भी रही। वे पंड़िता भी थीं । उनमें काव्य रचना क्षमता भी थी साथ ही संगीत विद्या में भी वे बहुत माहिर थीं । उनके द्वारा रचित स्वतंत्र रचनाएँ

प्राप्त नहीं हैं । उनके द्वारा रचित स्फुट रचनाओं से ही उनकी काव्यप्रतिभा का पता चलता है । उनकी रचनाओं में श्रृंगार रस की अभिव्यंजनाएँ मिलती हैं । उन्होंने अपनी प्रेमाभिव्यक्तियों का चित्रण बहुत निर्भीकता से किया ।

प्रवीणराय की भाषा संस्कृत मिश्रित साहित्यिक ब्रज भाषा है । उनकी भाषा के इस संस्कृतमय परिष्कृत रूप का श्रेय केशवदास को जाता है । प्रवीणराय की भावनाओं की मौलिकता और कलात्मक अभिव्यंजना की दृष्टि से उन्हें श्रृंगार के उत्कृष्ट कवियों के साथ रख सकते हैं ।

3.5.2.1.2. रूपवती बेगम

रूपवती उज्जैन के पास सारंगपुर गाँव के वेश्या की कन्या थी । उनकी काव्यप्रतिभा तथा संगीत प्रेम से संबंधित अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं । कहा जाता है कि रूपवती ने अपने रूपराशी तथा संगीत के माध्यम से राजा बाज़बहादुर को अपने ऊपर मुग्ध कर लिया था साथ ही स्वयं उनपर मुग्ध भी हो गई थीं । बाद में बाज़बहादुर को अकबर के युद्ध में पराजय मिली और राजा को रणभूमि छोड़कर भागना पड़ा । इसके परिणामस्वरूप अकबर के सेनानायक के पास पड़ गई। अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर हाथ भर कपूर खाकर आत्महत्या कर ली । उन्होंने अपने प्रियतम बाजबहादुर के वियोग काल में एक दोहा भी लिखे हैं ।

रूपवती की कविताओं में जीवन संबंधी घटनाओं पर उनकी भावनाओं की प्रतिक्रिया देखने को मिलती है । उनके भावों की सरलता ही उनकी सुंदरता है । भाषा की दृष्टि से उर्दू प्रधान वातावरण में रहकर भी उनकी रचनाओं की भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग मिलता है ।

3.5.2.1.3. तीन तरंग

तीन तरंग नामक कवयित्री का जन्म संवत् 1612 तथा रचनाकाल संवत् 1640 माना जाता है । वे ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह की आश्रित वेश्या थीं । इनका लिखा हुआ ग्रंथ 'कोकशास्त्र' कहा जाता है ।

3.5.2.1.4. सुंदर कली

सुंदर कली एक मुसलमान स्त्री थीं । नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोर्टों के मुताबिक 'हिंदी के मुसलमान कवि' में इनका उल्लेख मिलता है । इनकी रचना का नाम 'सुंदर कली की कहानी' या 'सुंदर कली का बाहमासा' है और यह अधूरी है ।

3.5.3. आधुनिक कालीन कवयित्रियाँ

आधुनिक काल में नव चेतना का उदय-जागृति और नवदीक्षा प्रारंभ हुई । साहित्य की विषयवस्तु में समाज के साथ ही आमूलचूल परिवर्तन आने लगा । स्त्रीवादी चिंतन एवं लेखिकाओं का आगमन भी होने लगी । आधुनिक कालीन लेखिकाओं ने खासकर के कवयित्रियों ने स्त्री की मनोदशा को सौहार्द एवं आत्मीयता से समझा । संवेदना के हर एक पक्ष को लेखिकाओं ने अपनाया । कवयित्रियों ने वर्तमान परिदृश्यों के संदर्भ में व्यंग्य, तीक्ष्णता, आक्रोश को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्ति दिया । आधुनिक कालीन स्त्री कवयित्रियों में प्रमुख हैं – महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, शकुंतला माथुर, कीर्ति चौधरी, सुमन राजे, अनामिका, कात्यायनी, सुशीला टाकभौरे, नीलेश रघुवंशी, निर्मला पुतुल, सविता सिंह, गगन गिल,ज्योति चावला, जोसिंता केरकेट्टा आदि ।

3.5.3.1. महादेवी वर्मा

आधुनिक मीरा महादेवी वर्मा की कविताओं में दुख की तीव्र अनुभूति रही। उनपर बौद्ध धर्म का प्रभाव है। उनका रहस्यवाद मनुष्य की सीमाबद्धता से संकुचित नहीं बल्कि उसकी लघुता को उसका गौरव समझती है। वे कण में भी असीमता का दर्शन कर लेने वाली रहीं। उनके अनुसार दुख मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। मनुष्य की चिर वेदना का आरंभ जन्म से होता है। वे कहती हैं -

“अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों के द्वीप जलाकर
करती रहती दीवाली।”[20]

कवयित्री सूनेपन में मस्त और मग्न रानी की तरह बनना चाहती हैं। उनके अनुसार स्वयं जलना ही जीवन का लक्ष्य है। प्रमुख रूप से उनके कविता संग्रह हैं - नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1934), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), प्रथम आयाम (1974), अग्निरेखा (1990)। साहित्य और संगीत का सुंदर समन्वय उनकी रचनाओं में हम देख सकते हैं। एक विश्वस्तरीय कवयित्री के रूप में वे सदा अमर रहेंगी।

3.5.3.2. सुभद्रा कुमारी चौहान

महादेवी वर्मा के बाद सर्वाधिक ख्याति एवं लोकप्रियता प्राप्त कवयित्री हैं सुभद्रा कुमारी चौहान। उनके बारे में महादेवी वर्मा ने ‘पथ के साथी’ में वर्णित किया है। वे दोनों बाल सहेलियाँ थीं।

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएँ एक ओर स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी हैं तो दूसरी ओर पारिवारिक स्नेह से। उनकी अमर कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' को स्वतंत्रता का आल्हा कह सकते हैं। इस कविता की पंक्तिएँ हैं -

"होए चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय उड़ा दे गोलों से चाहे झाँसी
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी!"[21]

इस कविता की पंक्तियाँ विश्व इतिहास की प्रमुख वीरांगना झाँसी रानी पर हैं। लक्ष्मीबाई समरभूमि से लड़कर स्वयं मरी। सुभद्रा कुमारी ने छायावादी रुझान से पूर्ण रूप से हटकर स्त्री के उस शौर्य रूप को दर्शाने का प्रयास किया। उनके प्रमुख कविता संग्रह हैं 'मुकुल', 'त्रिधारा' आदि। उनकी कविताएँ अनुभूति की सरलता के कारण स्मरणीय हैं। उनकी कविताओं में उर्दू के शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं। अपने अलग अंदाज़ से सुभद्रा कुमारी चौहान और उनकी कविताएँ हमारे बीच हमेशा रहेंगी।

3.5.3.3. शकुंतला माथुर

सप्तक परंपरा की कवयित्रियों में शकुंतला माथुर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी देन मात्रा में कम है, लेकिन इनकी कविताएँ दिशाबोध से मंड़ित हैं। उन्होंने आकर्षक गीत लिखे हैं। उन्होंने कविताएँ प्रभावी ढंग से लिखी हैं। 'खंडों की सार्थकता' नामक कविता की पंक्तियाँ उनकी दृष्टि की ओर संकेत करती हैं। कविता की पंक्तियाँ हैं -

"रस-भरा
शीशे का गिलास

टूट गया

हाथ से छूट गया

टूट जाने दो

छूट जाने दो

ज़िन्दगी को अब टुकड़ों में देखो।"[22]

यहाँ कवयित्री ने जीवन को एक रस भरे शीशे के गिलास से तुलना की है। जाने अनजाने जीवन रूपी शीशे का गिलास टूट गया या छूट गया तो उसे टूट जाने दो यानी जीवन को टुकड़े होने दो। जीवन को टुकड़ों में देखने की ज़रूरत है। नित्य उपयोगी चीज़ों को उपमेय एवं उपमान बनाकर शकुंतला माथुर ने अपने विचारों को कविताओं के ज़रिए अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उनकी कविताओं में आधुनिक सजगता एवं तर्कशील चिंतन देखने को मिलते हैं।

3.5.3.4. कीर्ति चौधरी

'तीसरा सप्तक' की कवयित्री कीर्ति चौधरी की कविता में ग्राम्य जीवन, प्रकृति, दिवस के क्रिया-कलाप जैसे विषय होते हैं। उनकी कविताओं में मोहक प्रगीतात्मकता देखने को मिलती है। उनकी कविताओं में मनुष्य और उसके समग्र अनुभवों को पकड़ने का यज्ञ हुआ है।

उनकी कविता में नारी मन की सहज अभिव्यक्ति हुई है। कीर्ति चौधरी ने कवि व्यक्तित्व के अभौतिक आडंबर का खुलासा करते हुए 'वक्त' नामक कविता में व्यक्त की है। कविता की पंक्तियाँ हैं -

"यह कैसी लाचारी है

कि हमने अपनी सहजता की

एकदम बिसारी है।

इसके बिना जीवन कुछ इतना कठिन है

कि फर्क जल्दी समझ में नहीं आता

यह दुर्दिन है या सुदिन है।"[23]

इस पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री कहना चाहती हैं कि यह कैसी लाचार स्थिति है कि मनुष्य अपनी सहजता को भूल रहे हैं। इस सहजता के बिना मानव जीवन इतना कठिन हो जाता है कि यह उसको समझ में ही नहीं आता कि यह अच्छा दिन है या बुरा। उनकी रचनाओं में एक विशेष प्रकार का रोमानी भाव है। उन्होंने मनुष्य मन की कठिन संवेदनाओं को सरलता एवं सादगी से दर्शाने का प्रयास अपनी रचना में की है।

3.5.3.5. सुमन राजे

'चौथा सप्तक' की कवयित्री सुमन राजे भावुकता को अधिक महत्व देनेवाली कवयित्री है। इसी कारण से उनकी रचनाओं में तार्किकता खंड़ित होती है। समय के अमानवीय रूप के प्रति कवयित्री संवेदनशील हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति और प्रेम देखने को मिलते हैं। उनकी कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"महाकाल का पहिया सरकता है

मैं - तुम - हम

सब

कुचले तो गए हैं पर मरे नहीं है

रथ के पहिए की धुरी में"[24]

इन पंक्तियों में यह व्यक्त होता है कि उनकी कविता में काल, क्षण और महाकाल का सापेक्ष रूप उभरता है। महाकाल में हम कुचले जाएँगे, मरेंगे नहीं जैसे तीक्ष्ण प्रयोग तो पाठकों को अपने कर्मों के न्याय को चिंतित करानेवाली पंक्तियाँ हैं। उनकी कविताओं की भाषा संवेदनशील है साथ ही टटके बिंबों का प्रयोग उनकी अलग पहचान है। 'कविता' पर उनका एक कथन

विशेष उल्लेखनीय है –“मेरे लिए कविता एक ऐसी प्रक्रिया है, जो मन को भरती है, ज़िंदगी को निचोड़ती है। ज़िंदगी को भरती है मन को निचोड़ती है ।”[25]

3.5.3.6. अनामिका

अनामिका एक ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने स्त्रीपक्ष के विराट कैनवास को खोलकर पाठकों के सामने रखा। इनकी कविताओं ने दुनिया में स्त्री कविताओं को विशेष पहचान दी है। पितृसत्ता के विरोध के साथ मानव मुक्ति भी इनकी कविताओं की खासियत है। स्त्री कविता पर उनका कथन है –“स्त्री कविता अपने भाषा जल से यही अतिरेक धो डालने को रलमल बही जाती एक नदी है ।”[26] उनकी कविताएँ स्त्री जीवन की मृदुता, बहनापे तथा अंदरूनी साहस पर आधारित होकर एक नया पाठ रचती हैं। उन्होंने कविकर्म की पुनर्व्याख्या करते हुए लिखा है-

“दांत हिलाना और कविता पढ़ना
एक ही बात है।
कुछ है जो टूटेगा,
टूँटेगा और फिर जमेगा
लेकिन जो टूटेगा
जम जाएगा बिलकुल वैसा ही?”[27]

दांत हिलाने से कवि कर्म की तुलना करके कवयित्री अंतिम पंक्तियों में पाठकों के सम्मुख छोड़ जाती हैं और बताने की कोशिश की है कि कविता हो या कोई भी चीज़ हो एक बार अगर टूट जाए तो उसको फिर से उसी प्रकार बनाना मुश्किल है। उनकी कविताओं में वर्तमान और अतीत को पिरोने का प्रयास एवं लोकसंस्कृति का चित्रण देखने को मिलते हैं। उनकी ख्याति का आधार ‘स्त्रियाँ’, ‘दरवाज़ा’, ‘बेजगह’ जैसी कविताएँ बनीं जो स्त्री विमर्श की युगीन साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल थीं।

3.5.3.7. कात्यायनी

कात्यायनी एक ऐसी सशक्त कवयित्री है, जिनकी चिंता के केंद्र में व्यक्ति एवं व्यवस्था का द्वद्वपूर्ण संबंध देखने को मिलता है । उनकी कविताएँ स्त्री जीवन से आगे बढ़कर गहरे अर्थों में राजनैतिक कविताएँ हैं जो भारतीय लोकतंत्र में नागरिक अधिकारों की चेतना को प्राथमिक मानती हैं । वे स्वार्थ लिप्सा से चरमराती व्यवस्था में छले गए जनसाधारण की पक्षधरता में आवाज़ उठाती हैं । मानव के अधिकारों के लिए आवाज़ उठानेवाली कवयित्री स्त्रियों पर होनेवाले प्रतिबंधों पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं-

> "मत जाओ गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
> तुम्हारा सिर कटकर लुढकेगा ज़मीन पर
> मत करो याज्ञवल्क्यों की अवमानना,
> मत उठाओ प्रश्न ब्रह्म सत्ता पर,
> वह पुरुष है!"[28]

यहाँ गार्गी एक ऐसी लड़की का प्रतीक है , जिससे पितृसत्तात्मक समाज डरपोक होकर रहने के लिए सलाह देता है। अगर वह किसी स्थिति के खिलाफ़ प्रश्न पूछेगी, तो अवश्य ही उनकी अवमानना होगी। इस तरह के तीखे स्वर एवं व्यंग्यात्मक शैली उनकी खासियत है।

कात्यायनी ने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री सवालों को उनकी व्यापक सामाजिक उपस्थिति के संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वे हिंदी कविता में अपने दौर के प्रमुख नारी आवाज़ हैं । उनमें चीज़ों को सही नाम से पुकारने का साहस है । उनका मानना है कि पर्दापोशा और लीपापोती नैतिक जुर्म है। उनकी स्त्री मानव मुक्ति के हर संघर्ष के केंद्र में है।

3.5.3.8. सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे एक ऐसी रचनाकार हैं, जिन्होंने दलित एवं स्त्री अस्मिता के लिए ज़मीन तैयार की। सुशीला टाकभौरे हिंदी कविता के क्षेत्र में सामाजिक न्याय के लिए उठानेवाली आवाज़ हैं। उनकी कविताओं में स्त्री मुक्ति की आकांक्षा, शक्ति का एहसास, प्रतिकार के लिए जागृति आदि विषय मिलते हैं जो प्रतिबद्धता की ओर इंगित करते हैं। उनकी कविताओं में जनमानस के हृदय को उकेरनेवाली पंक्तियाँ हैं। कवयित्री ने अपनी कविताओं में व्यंग्यात्मक शैली के ज़रिए आज समाज में व्याप्त निष्क्रियता की ओर इशारा किया है। किसी भी अत्याचार को अपनी आँखों से देखनी तथा कानों से चित्कार सुनने पर भी अपना प्रतिरोध व्यक्त किए बिना 'मैं' चुप हूँ यानी समाज में मेरे जैसे व्यक्ति चुप हैं। आज की सामाजिक व्यवस्था ने हाशिएकृत दलित समाज पर जो अत्याचार किए हैं, उसका पर्दाफाश कवयित्री ने अपने कविताओं में प्रस्तुत किया है।

कवयित्री अपनी कविताओं में उपेक्षित दलित वर्ग की जड़ मानसिकता पर प्रहार करती हैं साथ ही स्वयं को पहचानने का संदेश देती हैं। उनके अनुसार कविता की सार्थकता इसी में है कि वे सोए हुए हृदय को आंदोलित कर सके।

3.5.3.9. नीलेश रघुवंशी

कवयित्री नीलेश लघुवंशी ने स्त्री कविता की एक दुनिया को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास किया। अपने सकारात्मक टोन के माध्यम से उन्होंने स्त्री जीवन का एक नया सौंदर्यशास्त्र रचने का प्रयास किया। 'घर निकासी' (9197), 'पानी का स्वाद' (2004), 'अंतिम पंक्ति में' (2008) तथा 'खिड़की खुलने के बाद' (2017) आदि संकलनों में कवयित्री ने पिछड़े, हाशिएकृत जनसमुदाय के प्रति एक संवेदनशील मानसिकता को प्रमाणित करने का प्रयास किया

है। उनके‘सत्रह साल की लड़की’ नामक कविता की पंक्तियाँ इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। कविता की पंक्तियाँ हैं-

“सत्रह साल की लड़की के स्वप्न में
आसमान नही है
पेड़ पहाड़ और तपती दोपहर नहीं
सुबह की एक आँच भी नहीं
घर में फुदकती चिड़िया सी लड़की
सपना देखती है बस
अठारह की होने और घर बसाने का।”[29]

कवयित्री ने इन पंक्तियों के माध्यम से एक सत्रह साल की लड़की की मानसिकता को चित्रित करने का प्रयास किया है। खेलने के समय भी लड़की के अंदर विवाह, घर बसाना जैसी चिंताएँ हैं, जो उसके बचपन को ही उससे छीन लेती हैं। समाज ने जिस प्रकार छोटी लड़कियों को सोचने के लिए मजबूर किया है; उसको पर्दाफाश करने का सशक्त प्रयास कवयित्री ने इस कविता में है। नीलेश रघुवंशी ने समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए सशक्त ढंग से अपनी कलम चलाई है।

3.5.3.10. निर्मला पुतुल

व्यापक सामाजिक संघर्षों को कविता में प्रस्तुत करनेवाली निर्मला पुतुल की कविताओं में वास्तविकता और वैचारिकता के अंतर को स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी समाज के अंतर्विरोध एवं उस समाज की समस्याएँ प्रखर रूप में अभिव्यक्त हैं। ‘अपने घर की तलाश में’, ‘बेघर सपने’ (2014) जैसी रचनाएँ इसके लिए उत्तम

उदाहरण हैं। सशक्त शब्दों से उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्त की है। 'आदिवासी स्त्रियाँ' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"वे करती प्रेम जंगलों से, नदियों से, पहाड़ों से
मिट्टी से, गीतों से, फसलों से
उनके रिश्ते नाते की परिधि में आते
गाय, बकरी, सुअर भी
घर की परिधि से बाहर भी
दूर क्षितिज तक फैली होती
उनकी दुनिया
जहाँ होता पहाड़-सा दुख
पहाड़ सा धीरज
जंगल की सी वीरानियाँ !!"[30]

यहाँ कवयित्री आदिवासी स्त्रियों की प्रेम के बारे में कहती हैं। आदिवासी स्त्रियाँ जंगलों, नदियों, पहाड़ों, गीतों, फसलों, गाय, बकरी, सुअर यदि अपने घर की परिधि के अंदर और बाहर के सभी चीज़ों से प्रेम करती हैं। अंतिम पंक्तियों तक आते-आते जंगल की वीरानियों के पहाड़ सा दुख और धीरज की ओर भी संकेत देती हैं। कवयित्री ने आदिवासी स्त्रियों की वीरता एवं उनकी प्रकृति से संबंध, उनके सीमाहीन दुनिया जैसे मुद्दों को इस कविता के ज़रिए पाठकों के सामने रखा। आदिवासी स्त्रियाँ सीमाहीन दुनिया के विशाल प्रकृति में जीनेवाली वीरांगनाएँ हैं। निर्मला पुतुल ने सशक्त तरीके से स्त्री-पुरुष की भागीदारी, जैसे मुद्दों पर व्यापक ढंग से सोचने के लिए मजबूर किया है।

3.5.3.11. सविता सिंह

'अपने जैसा जीवन' (2001) सविता सिंह का प्रथम काव्य संग्रह है । उन्होंने अपनी कविताओं में लिंगाधारित शोषण एवं असमानताओं पर बहुत विस्तार से विचार किया है । उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से कहीं न कहीं स्थापित सामाजिक ढाँचों को चुनौती देते हुए लिखने का प्रयास किया है । उनकी कविता 'मैं किसकी औरत हूँ' की पंक्तियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय है -

"मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औरत हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं"[31]

कवयित्री ने यहाँ एक दृढ़ प्रतिज्ञा लेनेवाली एक स्त्री को दर्शाया है । वह स्त्री यह आह्वान करती है कि वह किसी की औरत नहीं है । वह अपने आप जीनेवाली है । वह किसी को परमेश्वर मानकर उनके मार सहनेवालों से नहीं है । इन पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री ने अपनी अस्मिता के लिए चुनौती देनेवाली हर चीज़ को नकारा है और अपने आप के लिए खड़े रहनेवाली, किसी की मार न सहनेवाली स्त्री को सशक्त माना है । इस प्रकार कह सकते हैं कि सविता सिंह की कविताएँ केवल स्त्री या पुरुष का नहीं, मानवीय मुक्ति का पाठ देती हैं ।

3.5.3.12. गगन गिल

स्त्री कविता में कवयित्री गगन गिल का महत्वपूर्ण स्थान है । उनके प्रमुख कविता संग्रह हैं – 'एक दिन लौटेगी लड़की' (1989) 'अंधेरे में बुद्ध' (1996), 'यह आकांक्षा सच नहीं' (1998), 'थपक थपक दिल थपक' (2003) आदि । उनकी कविताओं की लड़की वास्तविक दुनिया में दिखाई देनेवाली वहीं लड़की का प्रतिबिंब है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लड़कियों के अनुभवों को

दर्शाने का प्रयास किया है। इनकी कविताओं में मृत्युबोध दिखाई देता है। उनकी कविता की पंक्तियाँ हैं-

"बीत गए दिन, माँ
बीत गए बरस सब
न खत्म होने को ये तुरपाई माँ
न धागा
न कहीं छोर इस चादर का।"[32]

जीवन की व्यस्तता एवं क्षणिकता को एक साथ व्यक्त करते हुए कवयित्री ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं। सामाजिक आशयों के विपरीत स्त्री मन की चिंताओं को दर्शाने का प्रयास कवयित्री ने अपनी कविताओं में किया है। उनकी कविताओं के केंद्र में घुटन, अंधेरा, दुख, तीखा संताप, प्रेम,मृत्यु बोध आदि देखने को मिलते हैं।

3.5.3.13. ज्योति चावला

कवयित्री ज्योति चावला की कविताओं में प्रबुद्ध स्त्री का चेहरा द्रष्टव्य है। बदलती दुनिया के साथ ही अपनी चाल को भी चलाने तथा अपने स्थान को अर्जित करना आदि मुद्दे उनकी कविताओं में उभरते हैं। उनका कविता संसार छोटे-बड़े अनुभवों से भरा है। उनकी काव्यचेतना समाज के साथ पूर्ण रूप से जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए ईरोम शर्मिला के संघर्ष को उन्होंने अपनी पंक्तियों में अभिव्यक्ति दी है। 'तुम्हारी आँखें हमें सुकून देती है इरोम' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"हमारे समय में जब मनुष्य के बचे रहने की
संभावना हशिए पर है, तब
तुम लड़ रही हो मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने की लड़ाई
तुम लड़ रही हो उन अधिकारों के लिए"[33]

कवयित्री इरोम शर्मिला के प्रतिरोध को बधाई देते हुए यह कहती हैं कि जब मनुष्य के बचे रहना नामुमकिन सा है तभी ईरोम मानवीय जनता के अधिकारों के लिए लड़ रही है। इस प्रकार इनकी रचनाओं में राजनैतिक परिवेश, सामाजिक व्यवस्थाएँ आदि के प्रति प्रतिरोध की भावना सशक्त ढंग से प्रतिबिंबित हुई है।

3.5.3.14. जसिंता केरकेट्टा

अपने तरीके से राष्ट्रीय विकास के मॉडलों को प्रश्नांकित करनेवाली जेसिंता केरकेट्टा एक ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने आदिवासियों के खिलाफ़ होने वाले अत्याचारों एवं भेदभाव को अपनी रचनाओं में अंकित की है। उनकी कविता का स्वर अत्यंत संयत होता है। कवयित्री कार्यों को भावावेश से देखने से ज़्यादा लोकतांत्रिक दृष्टि से देखकर, उस ढंग से आदिवासियों एवं स्त्रियों की स्थिति को विचारने एवं परखने का प्रयास करती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में हाशिएकृत समाज के अनवरत संघर्ष को रेखांकित करने का प्रयास किया है। विकास के नाम पर होनेवाले करतूतों एवं हाशिएकृत समाज की दयनीय स्थिति पर कवयित्री अपना प्रतिशोध एवं प्रतिरोध व्यक्त करते हुए कवयित्री कहती हैं-

> "कुछ नहीं बिरजु के पास आज खाने को
> अब खोतों के बदले है बड़े-बड़े बाँध
> दिख रही है मँग डिग्री की देह की हड्डी
> और सिकुड़कर सिमटती पेड की आँत
> अब बँध रहा है एक बाँध आँसुओं का
> अह बँध रहा है एक बाँध आक्रोश का"[34]

शहरीकरण के चंगुल में फँसनेवाली हाशिएकृत समाज की दयनीय स्थिति को कवयित्री ने इन पंक्तियों में व्यक्त की है। इस प्रकार कवयित्री जेसिंता करकेट्टा ने अपनी कविताओं के माध्यम से हाशिएकृत समाज के अनवरत संघर्ष को रेखांकित की है।

3.6. निष्कर्ष

स्त्री लेखन का संसार खासकर कवयित्रियों का संसार बहुत विस्तृत है। स्त्री लेखनी में स्त्रीत्व की वास्तविक चेतना मौजूद होती है। कवयित्रियों की रचनाओं के माध्यम से उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि सोच में बदलाव, स्वावलंबन आदि समाज की माँग है। इसे नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने मात्र स्वानुभूतिपरक रचनाएँ ही नहीं लिखीं, बल्कि आसमान के नीचे उपस्थित सभी विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। उपर्युक्त कवयित्रियों के अलावा और भी बहुत सारी कवयित्रियाँ हैं भार्गव जिन्होंने स्त्री काव्य जगत में अपनी छाप छोड़ी है। जैसे स्नेहमयी चौधरी, पद्मा सचदेव, ऋचा शर्मा, ममताकालिया, तेजी ग्रोवर, ममता किरण, सुधाअरोड़ा, रमणिका गुप्ता, रश्मि रमानी, कुंती, सुनीता जैन, रजत रानी मीनू, मंजू ज्योत्सना, नीला परमार, लीला कुमारी, प्रेमलता चुटैल, कला गरम्मट रजनी तिलक, हैमलता महेश्वरी, सुशीला टाकभौर, पूनम तुषामड, राशी छावड़ा, मधु धवन, नलिनी पुरोहित, रंजना जायसवाल, आकांक्षा यादव, कुसुम अंसल, सुधा उपाध्याय, प्रज्ञा केसर, रजनी तिलक, सुनिता जैन, सविता भार्गव आदि।

संदर्भ-सूची

1. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृ.सं.19.
2. रेखा सेठी, स्त्री कविता पक्ष और परिप्रेक्ष्य, पृ.सं.122.
3. वहीं, पृ.सं.184.
4. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृ.सं.20.
5. रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृ.सं.7
6. सावित्री सिंहा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृ.सं.36.
7. वहीं, पृ.सं.39.
8. वहीं, पृ.सं.38.
9. वहीं, पृ.सं.46.
10. वहीं, पृ.सं.47.
11. वहीं, पृ.सं.46.
12. वहीं, पृ.सं.76.
13. डॉ. फणीश सिंह, हिंदी साहित्य: एक परिचय,पृ.सं.89.
14. डॉ.सुरेश चंद्र, भक्ति आंदोलन और मध्यकालीन हिंदी भक्तिकाव्य, पृ.सं.102.
15. सावित्री सिंहा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृ.सं.159.
16. वहीं, पृ.सं.170.
17. वहीं, पृ.सं.188.
18. वहीं, पृ.सं.186.
19. वहीं, पृ.सं.224.

20. रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृ.सं.48.

21. वहीं, पृ.सं.46.

22. वहीं, पृ.सं.80.

23. डॉ. प्रमीला के.पी, औरत की अभव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार, पृ.सं.44,45.

24. रामप्रसाद मिश्र, हिंदी का कवियित्रियाँ, पृ.सं.89.

25. विष्णु नागर, कविता के साथ-साथ, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृ.सं.84.

26. रेखा सेठी, स्त्री कविता पहचान और द्वंद्व, पृ.सं.65.

27. बीजाश्वर, अनामिका, पृ.सं.13.

28. कात्यायनी, सात भाइयों के बीत चंपा, पृ.सं.34.

29. नीलेश रघुवंशी, घर निकासी, पृ.सं.20.

30. निर्माला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ.सं.6.

31. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ.सं. 40,44.

32. रेखा सेठी, स्त्री कविता : पहचान और द्वंद्व, पृ.सं. 30,31.

33. वहीं, पृ.सं.164.

34. वहीं, पृ.सं.188

चौथा अध्याय

मानवाधिकार का स्त्री पक्ष : पितृतंत्र एवं महिलाएँ

4.1. विषय प्रवेश

मानव का जीवन समस्याओं से भरा पड़ा होता है। कोई भी समस्या हो उसमें तकलीफ़ होता है। व्यक्ति को अनेक कठिनाइयाँ एवं असुविधाएँ उसके साथ महसूस होता है। कुछ समस्याएँ मानव जीवन को चकनाचूर कर देती हैं। समस्या एक ऐसी स्थिति का वरण भी करती है, जिससे कानूनी अधिकारों की सहायता भी नहीं ले सकते। कभी - कभार समस्या हमारे ज्ञान की कमी का आभास भी देता है। सामान्यतः कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जो स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से झेलनी पड़ती हैं जैसे गरीबी, कमज़ोर स्वास्थ्य आदि। लेकिन कुछ समस्याएँ अवश्य ऐसी हैं जो मात्र स्त्री को झेलनी पड़ती हैं। स्त्रियों की समस्याओं के संबंध में आजकल बहुत कुछ चर्चाएँ चल रही हैं। एस एल दोषी के अनुसार "ऐसा समझा जाता है कि स्त्रियों की जो भी समस्याएँ हैं, वे सामाजिक और सांस्कृतिक हैं और इसके लिए सामाजिक व्यवस्था उत्तरदाई हैं। स्त्रियों की समस्याओं का संपूर्ण मसला भेदभाव का है।"[1] दहेज प्रथा, अनमेल विवाह आदि के कारण माता-पिता, नातेदारों की अवमानना, यातना और उत्पीड़न जैसी समस्याएँ झेलनी पड़ती हैं। स्त्रियों के साथ होनेवाले अत्याचार, मारपीट आदि की संख्या तो दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं। पति को परमेश्वर मानना, स्त्री को परिवार में निम्न स्तर दिया जाना आदि उसकी पहचान को मिटा देती है। उसकी पहचान पिता, पति या पुत्र के नाम हो जाता है। उसकी अपनी अस्मिता या अस्तित्व के लिए कोई जगह नहीं। स्त्रियों की समस्याओं की जड़ पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही है। स्त्रियों की समस्याओं को जानने के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जानना अनिवार्य है।

4.2. पितृसत्तात्मक व्यवस्था

"एक सामाजिक कल्पना के तौर पर, पितृसत्ता जेंडर के रूढ़ीवादी विचारों को बार-बार स्थापित कर पुरुषों पर महिलाओं की लैंगिकता, उनका श्रम, उनकी उत्पादकता, उनकी प्रजनन क्षमता और उनकी आवाजाही पर नियंत्रण प्रदान करती है। यह नियंत्रण ऐहितासिक तौर पर

विकसित हुआ है । इसके कारण संस्थानीकरण और वैधता कई विचारधाराओं,सामाजिक प्रथाओं, ढाँचों और संस्थानों जैसे कि विवाह, धर्म, वर्ग, जाति, प्रजाति, नस्ल, शिक्षा, मीड़िया, कानून, राज्य और समाज से प्राप्त हुई है ।"[2] पितृसत्ता पुरुष प्रभुत्व को सुदृढ़ करनेवाली वह व्यवस्था है, जिसका पहला पाठ परिवार से शुरू किया जाता है । बेटा और बेटी के जन्म की तुलना होती है क्योंकि बेटी कभी उत्तराधिकारी नहीं बनती । बेटा अक्रामक, लड़ाकू और ऊँची आवाज़ में बात करनेवाला बन सकता है । बेटियाँ लोगों का ध्यान रखनेवाली, दूसरों को प्यार करनेवाली, गलतियाँ न करनेवाली होनी चाहिए । स्त्रियों से मात्र यह अपेक्षा की जाती थी कि वे घर में बैठकर अपने बच्चों तथा परिवार के अन्य सदस्यों का खयाल रखे । इसीलिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के हिसाब से बेटी को पढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं । परिवार में बेटों को सार्वजनिक जीवन के लिए तैयार किया जाता था, बेटियों को चाकरी का काम सिखाया जाता था । इसीलिए परिवार पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मानदंडों को आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

4.3. पितृस्थानीय निवास एवं वंशानुक्रमण

पितृस्थानीय निवास की व्यवस्था एक विचारणीय समस्या है । इस व्यवस्था में विवाह के बाद एक स्त्री को अपने घर (पिता के घर) से पति के घर जाने की व्यवस्था है । उसके बाद वहाँ से वापस लौटने की कोई गुंजाइश नहीं । विवाह के बाद पति के घर से एक या दो दिन रहने के लिए जाना भी पितृसत्तात्मक ढाँचे में अत्यंत कठिन है । विवाह के बाद पति का घर ही उसका घर है । पितृस्थानीय निवास के समान ही पितृस्थानीय वंशानुक्रमण भी एक जटिल समस्या है । भारतीय दंड संहिता के अनुसार परिवार में स्त्रियों को संपत्ति पर पुरुष के समान ही अधिकार है । स्त्रियाँ अपने भाइयों के साथ संबंधों के खातिर चुप रहती हैं । इसका परिणाम यह होता है कि स्त्रियों के

पास अपने वंश का कुछ नहीं ठहरता। अगर कुछ अपने पूर्वजों से उसे मिलता भी है तो पुरुष को जो मिलता है , उसकी तुलना में नगण्य प्रतीत होता है।

4.4. पितृतंत्र एवं महिला अधिकार

प्राचीन काल से लेकर भारतीय समाज में पुरुषसत्ता या पितृसत्ता की आवाज़ ही मान्य है। "मैं आदमी हूँ, यानी पुरुष मर्द, स्वामी, देवता, मंत्री,संतरी, सामंत, राजा, मठाधीश और न्यायाधीश – सब कुछ मैं हूँ और मेरे लिए ही सबकुछ है या सबकुछ मैं ने अपने सुख-सुविधा, भोग-विलास और ऐयाशी के लिए बनाया है। सारी दुनिया की धरती और देह यानी उत्पादन और पुनरुत्पादन के सभी साधनों पर मेरा सर्वाधिकार सुरक्षित रहेगा । धरती पर कब्जे के लिए उत्तराधिकार कानून और देह पर स्वामित्व के लिए विवाह संस्था की स्थापना मैं ने सोच समझकर की है ।"[3] पितृसत्तात्मक समाज ने हमेशा से महिलाओं की तुलना में पुरुषों को आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी दृष्टियों से आगे रखा। इसीलिए समाज में स्त्रियों के खिलाफ़ होने वाले किसी भी प्रकार के अत्याचार को स्त्री सहने के उत्तरदायी बन जाती है। जीवन जीने के अधिकार को आज़ादी कहते हैं। पितृसत्ता ने स्त्री की महिमा को दूसरों की खातिरदारी करना तथा दूसरों के लिए जीना माना। अपने ढंग से जीवन जीने के अधिकार को पितृसत्ता ने स्त्री से छीना है। कवयित्री वीना करमचंदाणी अपनी कविता 'आज़ादी' में इसका विद्रोह करते हुए कहती हैं –

"जिस दिन स्त्री
चूल्हा चौका
संभालने से कर देगी इंकार
उसकी महिमा में गाए जाने वाले
तमाम गीत
हो जाएँगे
किसी डब्बे में बंद"[4]

पितृसत्ता द्वारा बनाए गए नियमों का विद्रोह करने की ओर कवयित्री इशारा करती हैं। उनके अनुसार जिस दिन स्त्री तथाकथित काम करने से इंकार कर अपनी इच्छानुसार जीवन जीने लगेगी उसी दिन से उसकी महिमा का गान बंद हो जाएगा।

त्यागी होकर सबकुछ सहकर जीने का प्रशिक्षण तो स्त्रियों को बचपन से ही दिया जाता है। उसे बेटी, बहू, पत्नी जैसी भूमिकाएँ देकर उसी के अंदर जीने के लिए विवश कर देती है। मैत्रेयी चौधरी कहती हैं –"बेटी, पत्नी, बहू यह सब स्त्री की कमज़ोर भूमिकाएँ हैं। हमें समाज में सिर्फ़ मूल्यों, प्रतिमानों सांस्कृतिक कारकों को ही नहीं देखना चाहिए, बल्कि इनके पीछे जो ढाँचा छिपा है, उसे देखना है।"[5] स्त्रियों को तथाकथित भूमिकाओं की सांस्कृतिक कारकों के साथ ही साथ उसके पीछे छिपे ढाँचे को देखने की सशक्त आवश्यकता है। कवयित्री कमल कुमार कहती हैं –

"सती साध्वी होने की ज़रूरत नहीं
सती माध्वी होने के छल से भी दूर रहना।"[6]

अर्थात् पितृसत्ता ने जिस प्रकार का ढाँचा महिलाओं के लिए रचा है, उसके छल में कभी पड़ना नहीं है। स्त्री को पति-परमेश्वर की नहीं पार्टनर की ज़रूरत है, जिससे समानता कायम रह सकती है।

पितृसत्ता की जड़ें इतनी गहरी हो गई हैं कि प्यार में भी अधिकार अपना पंख फहराने लगा है। प्यार को हमेशा शर्तहीन रहना चाहिए। ज़िंदगी में हर एक व्यक्ति को अपने ढंग से जीवन जीने का अधिकार ज़रूर मिलना चाहिए। प्यार में आदर और सम्मान होना ज़रूरी है, न किसी का एकाधिपत्य। कमल कुमार की 'नई इबारत' कविता की पंक्तियाँ हैं –

"अधिकार प्यार का तो हो
पर प्यार पूर्ण अधिकार न हो जाए

यह रास्ता कठिन तो है, परंतु
तुम्हारे सम्मान और पहचान
के लिए ज़रूरी है
पति, घर और परिवार के साथ
औरतें के रिश्तों की
लिख सकेगी नई इबारत।"[7]

ज़िंदगी के हर एक पहल में सम्मान और आदर होना अनिवार्य है। समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं को निभाने का मतलब यह नहीं कि अपने अधिकारों के हनन को सहना। ज़रूरत है नई इबारत का निर्माण करने की तथा उसके हिसाब से जीने की, जहाँ हर एक व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष अपने सम्मान और पहचान को बनाए रखकर अपनी ज़िंदगी जी पाए।

4.5. स्त्री को बोनसाई बनाने की साजिश

'बोनसाई' नामक कविता की पंक्तियाँ है –

"तुमने आँगन से खोदकर
मुझे लगा दिया सुंदर गमले में
फिर सजा लिया घर के ड्राइंग रूम में

और धीरे-धीरे मैं बोनसई में तब्दील हो गई

ओओ देखकर जाओ यहाँ मेरी जड़े
और फैल गई है।"[8]

यहाँ कवयित्री सुधा उपाध्याय ने स्त्री को बोनसाई बनाकर रखनेवाले समाज का पर्दाफाश किया है। आँगन में स्वतंत्र रूप से पलनेवाले पौधे को घर के अंदर सुंदर गमले में लगाकर उसका पालन पोषण करती है। घर के अंदर लाकर बोनसाई बना डालती है। और बोनसाई की तरह वह अपनी जड़े वही फैल पाती है, कहीं और नहीं निकल पाती "घर के बाहर, अकेली स्त्री की असम्मानजनक स्थिति है। इसलिए 'सम्माननीय स्त्री' पुरुष के संरक्षण में पुरुष से सुरक्षा चाहती स्त्री है जिसके हाथ में न ही अपने रिश्ते।"[9] स्त्री कुछ किए बिना चुपचाप सबकुछ सहकर 'बोनसाई' बनकर जीने के लिए मजबूर किए जाते हैं। डॉ.सांत्वा श्रीकांत 'सुनो लड़की' में कहती हैं –

"यहाँ पौधों को भी
बौना रहने पर मजबूर
किया जाता है,
फिर बोनसाई बनाकर सजाते हैं।
लेकिन सुनो लड़की।
तुम समर्पण मत करना,
रौंदा जाएगा, कुचला जाएगा
फिर भी तुम प्रस्फुरित होती रहना,
अंकुरित होती रहना।"[10]

यहाँ कवयित्री लड़कियों को ज़िन्दगी में कभी भी बोनसाई जैसे न बनने की सलाह देती हैं। वे लड़की से कहती हैं कि अगर वह अपने आप को समर्पित करेगी तो ज़िन्दगी में दूसरों द्वारा रौंदा एवं कुचला जाएगी। लड़कियों से कहती हैं कि उन्हें हमेशा प्रस्फुरित एवं अंकुरित होते रहना चाहिए। लड़कियों एवं स्त्रियों को उस तरह जीने के लिए मजबूर करना मानवाधिकार उल्लंघन है।

4.6. सहनशीलता एवं चुप्पी

पितृसत्ता ने स्त्री को ‘सहनशील’ बनाया। पितृसत्ता के अनुसार स्त्री को हमेशा किसी भी चीज़ के खिलाफ़ आवाज़ उठाना नहीं, सहनशील बनना है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का कथन है - “ऐसे तो भारतीय समाज में पत्नी की इच्छा न होने पर भी पति उससे जब चाहे बलात्कार करता रहता है। विडंबना तो यह है कि इस दुष्कर्म को सहना स्त्री का गुण माना जाता है। सहनशीलता का गुण अर्थात अन्याय सहना, चुप रहना, स्त्री के संदर्भ में एक गुण बन जाता है।”[11] सहनशीलता को चुप्पी का पर्याय मानने वाले समाज के खिलाफ़ आवाज़ उठाते हुए कवयित्री आरती स्मित कहती हैं –

“चुप्पी का एक दौर चला है
सभी चुप है
वह स्त्री भी चीख सकती है
जो लुटी है
जीवन के हर मोड़ पर”[12]

यहाँ कवयित्री ने अन्याय के खिलाफ़ के चुप्पी का प्रतिरोध किया है। किसी को भी अन्याय सहने की ज़रूरत नहीं है। अन्याय के खिलाफ़ चीखना ज़रूरी है। वरन् आगे भी हर मोड में स्त्री लुटती जाएगी। चुप्पी से पितृतंत्र और शक्तिशाली बन जाता है। शक्तिशाली दबाव स्त्री पर आने लगती है। इसीलिए ज़रूरी है चुप्पी को तोड़कर आगे बढ़ने की।

4.7. कन्यादान

कन्यादान संस्कृत के शब्द ‘कन्या’ यानि कि युवति और ‘दान’ अर्थात् दे देना से बना है। बेटी की शादी करवाते वक्त पिता द्वारा बेटी के हाथ शादी करनेवाले के हाथ में सौंपना कन्यादान है। पिता द्वारा दामाद को पुत्री दान दिया जाता है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा का कहना है –“पिता

द्वारा कन्यादान करने की न कानूनी ज़रूरत है और न धार्मिक सामाजिक बंधन। वह नहीं चाहती की कोई उसका कन्यादान करें। वह कोई वस्तु नहीं, जिसको दान या उपहार में दिया जा सके।''[13] अर्थात कानून ने किसी भी व्यक्ति को किसी ओर को सौंपने की इजाज़त किसी को नहीं दी है। और लड़की खुद भी नहीं चाहती कि कोई उसका दान करे। पितृसत्ता द्वारा निर्मित इस व्यवस्था के कारण मानसिक रूप से तड़पनेवाली कन्या की दयनीय स्थिति का पर्दाफाश करते हुए कवयित्री पद्मजा शर्मा 'बिटिया' में कहती हैं–

''वह जाते समय रो रही थी
रो-रो कर कह रही थी मुझे नहीं जाना
मगर न जाने की बात पर
आँसू पोंछते हुए कह रही थी
अब जाना तो पड़ेगा ही माँ
और वह जा रही थी।''[14]

अर्थात् कन्यादान करते वक्त जिस प्रकार के मानसिक संघर्षों से बेटियों को गुज़रना पड़ता है उसको इन पंक्तियों में कवयित्री ने प्रस्तुति दी है। न चाहते हुए भी उसे अपना घर छोड़ना पड़ता है। 'मुझे नहीं जाना' कहते हुए रो-रोकर कन्यादान के बाद उसे अपना घर छोड़ना पड़ता है और परंपरा की उपज 'माँ' कहती है कि उसे जाना पडेगा। कन्यादान के बाद अपनी जगह से बेजगह होती स्त्री की व्यथा का खुलासा करते हुए कुसुमलता अविचल अपनी कविता 'बेटी' में कहती हैं-

''पर एक विडंबना ऐसी है
ससुराल मायका बेटी का
पर अपना न कोई उसका घर है
पिता से पिया घर बेटी का।''[15]

कवयित्री यहाँ कहना चाहती हैं कि कन्यादान एक लड़की को बेजगह बना देती है। ससुराल और मायका जैसी विडंबनाएँ उसकी ज़िंदगी में आती हैं। पिता के घर से पिया के घर यहाँ हम देख सकते हैं कि दोनों घर पिता और पति का है, उसका कोई अपना घर नहीं है। कन्यादान के बाद अपने घर के लिए एक अलग सा नाम मिलता है 'मायका'। 'अनन्य' कविता में मनीषा झा की पंक्तियाँ हैं–

''मायके में अन्य हूँ
कन्यादान के बाद
ससुराल में अन्य हूँ
अन्य कुल में आने के बाद
खुद में अनन्य हूँ
स्वत्व अर्जित कर लेने के बाद
फिर भी मैं मनुष्य हूँ
स्त्री कहना मुझे समझने के बाद।''[16]

कवयित्री मनीषा झा ने इन पंक्तियों के माध्यम से कन्यादान से एक कन्या की ज़िन्दगी में जो बदलाव आती है, उसकी ओर पाठकों का ध्यान खींचा है। कन्यादान के बाद अपना घर 'मायके' के लिए अन्य होनेवाली लड़की ससुराल में जाकर भी अन्य अवश्य रह जाती है। स्वत्व अर्जित करने के बाद भी अपने आप को पूर्ण नहीं मान पाती और औरों से अपने आप को मनुष्य स्त्री समझने के लिए अनुरोध करती है। आजकल की लड़कियाँ अपने मानवाधिकार उल्लंघन के खिलाफ़ आवाज़ उठाने लगी हैं। शिक्षित एवं सजग औरतें आवाज़ बुलंद करने लगी हैं। इस प्रकार कन्यादान जैसी प्रथाएँ जहाँ स्त्री को मात्र एक दान करनेवाले वस्तु के रूप में देखती हैं, उसपर अवश्य रोक लगा देनी चाहिए।

4.8. विवाह संस्था

मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार "विवाह का जश्न जग जीतने के जश्न से कम नहीं होता वरपक्ष के लिए। आखिर आज वर अपनी मर्दानगी के मालिक के रूप में सेक्स की छवी बनी स्त्री का स्वामी हुआ। यह स्वामी दुल्हन औरत को अपने घर ले जाएगा, जहाँ यह सेवा, श्रम, सेक्स और प्रजनन का समर्पण उसके और उसके परिवार के लिए करेगी। यह गृहलक्ष्मी बनकर धाय और सेविका का रोल अदा करती रहेगी।"[17] यहाँ मैत्रेयी पुष्पा ने विवाह संस्था का विस्तृत विवरण दिया है। उनके अनुसार विवाह में पुरुष पत्नी और पूरे घर का स्वामी बन जाते है। इसके अंदर सेवा, श्रम, सेक्स सबका समर्पण स्त्री को पुरुष के खातिर करना पड़ता है। स्त्री को सेविका की भूमिका अदा करनी पड़ती है। इस तरह की वैवाहिक संस्था का घोर विरोध करते हुए वैवाहिक रीति को नकारते हुए सुरभि नोगजा 'विदाई' नामक कविता में कहती हैं –

"जाने किसने बनाई
जग की ऐसी रीत
क्यूँ हो जाती है पराई
हम बेटियों की प्रीत।"[18]

यहाँ कवयित्री ने वैवाहिक संस्था में प्रचलित रीति-रिवाज़ जैसे कि बेटियों का अपना घर छोड़कर पति के घर जाना, दूसरे घर वालों की सेवा करना जैसी कुप्रथाओं का विरोध किया है। यह परंपरागत रूप से चलनेवाली एक ऐसी अवस्था है जिसे बिन पूछ-ताछ किए स्त्रियाँ करती आ रही हैं। इस संदर्भ की ओर इशारा करते हुए आभा भारती 'बेटी को सीख' नामक कविता में कहती हैं-

"कभी याद आए माँ
तो ढाढस देना मन को यह सोचकर
कि कभी तुम्हारी माँ भी तो आई थी
अपनी माँ का घर छोड़कर"[19]

यहाँ विवाह के बाद अपने घर को 'मायका' पुकारकर पराई कर दी गई स्त्री की व्यथा को दर्शाया गया है। परंपरागत रूप से चल रही यह वैवाहिक संस्था पर व्यंग्य करते हुए कवयित्री स्त्री से कहती हैं कि अगर उसे अपनी माँ याद आ रही है, तो उसकी माँ को अपनी माँ भी याद आ रही थी। जीवन भर के लिए रोटी कपड़ा, मकान तथा बाहरी पुरुषों से सुरक्षा का आश्वासन दिया जाता है। 'आत्म' को बचपन से ही बनने नहीं दिया जाता। विवाह के बाद स्त्री को 'अपना' बनानेवाले पति और परिवार किस प्रकार उसके आत्म को उससे अलग करते हैं, उसकी ओर इशारा करते हुए कविता की पंक्तियाँ हैं-

"तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा
तुम्हारा यह रूप, यह सौंदर्य सिर्फ मेरे लिए है
और यह कहकर जड़ देते हैं उसे आइने में
आईना, जिसमें नहीं दिखती तो केवल वह स्त्री।"[20]

विवाह के बाद एक व्यक्ति पूर्ण रूप से दूसरों के होने के लिए मजबूर हो जाता है। यहाँ एक व्यक्ति खासकर के स्त्री का विकास न के बराबर हो जाता है। उसका सौंदर्य सिर्फ़ पति के लिए कहकर उसे मात्र आइने की दुनिया में धकेल दिया जाता है। और वह आईना अपनी आत्मा खोई हुई स्त्री को दिखाता है जिसे देखकर स्त्री को अनजान व्यक्ति नज़र आता है उसे लगता है कि और अभी तक उसके खिलाफ़ कुछ हुआ ही नहीं। समाज का मानना है कि शादी के बाद लड़की और 'समझदार' होती है। अपने घर के लिए पराया बनती स्त्री दूसरों के घर जाकर और 'अधिक समझदार' होती है। यह बहुत हास्यास्पद बात है। इसकी ओर इशारा करते हुए 'बेटी समझदार हो गई है' नामक कविता में ओमलता कहती हैं –

"कभी –कभार जब मायके जाती है
बेटी को देखकर पिता माँ से कहती है
देखो जी बेटी समझदार हो गई है।"[21]

यहाँ कवयित्री ओमलता ने कभी-कभार मायके जानेवाली लड़की को समझदार घोषित करनेवाले अभिभावकों की ओर इशारा किया है। बेटी के चाल, बोलचाल, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि किसी ओर के लिए हो जाते हैं। अगर वह तथाकथित ढंग से पेश आती है तो वह 'समझदार' कहलाती है। शादी के बाद तो स्त्री दूसरों का हो जाती है और वह अपने आप को खो बैठती है। रेखा कतवार कहती हैं -"विवाह स्त्री को सकी देह और श्रम के बदले जीवन देती है। औरत को मात्र यौन संबंधों, संपत्ति के समीकरण के साथ ही पहचाना जाता है।"[22] उसका अलग अस्तित्व गायब हो जाता है। यह उसके स्वतंत्र रूप से जीवन जीने के अधिकार का उल्लंघन है।

4.9. पारिवारिक समस्या

राजेन्द्र यादव के अनुसार "परिवार नामक संस्था द्वारा पुरुष निरंकुशता की किलेबंदी न की गई होती तो शायद पुरुष न बालिका को बर्दाशत करता, न बुदिया को...परिवार स्त्री के पक्ष में समाज द्वारा पुरुष की नाकेबंदी है।"[23] जन्म से ही परिवार की बेटियों को शादी के लिए तैयार किया जाता है। परंपरागत ढंग से सब कुछ परिवार की अगली पीढ़ी को सौंपा जाता है। ज्योति चावला की कविता की पंक्तियाँ हैं –

> "क्यों लिख जाए सारे कष्ट, सारे दुख उनके ही खाते में
> कि कैसे वे सदियों से निभाती आ रही है अपनी जिम्मेदारियाँ
> और सदियों से ताक पर रही है उनके सपने और उनकी इच्छाएँ
> और किसी ने टोह तक न ली उनकी गठरी की"[24]

पारिवारिक रूप से सौंपे जानेवाले कष्ट एवं सारे दुख स्त्री के ही खाते में आते हैं। वह सदियों से चुपचाप इसे निभाती आ रही है। वह अपने सपनों एवं इच्छाओं को छोड़ने के लिए अपने परिवार के दायरे के कारण मजबूर है। कोई भी व्यक्ति उसके सपनों की गठरी को देखने के

लिए तक भी तैयार नहीं होता। उसे अपने हिस्से की रोशनी परिवार के दायरे में रहकर भी नहीं मिलती। कवयित्री भावना 'औरत बनने से पहले' में कहती हैं –

"हाँ इससे पहले
कि तितली से फिरते पाँव

घूँघट की मर्यादा में छिप जाए
सृजनशील सोच में समा जाए
रोटी ढाल का हिसाब
हाँ औरत बनने से पहले
एक बार महसूस कर लेने दो मुझे
अपने हिस्से की रोशनी।"[25]

अपने हिस्से की रोशनी पाने एवं जीने के अधिकारों से वंचित औरतों की व्यथा को दर्शाने का प्रयास कवयित्री ने किया है। समाज के दायरे में रहकर पारिवारिक ढाँचे में बँधे रहने से पहले लड़की खुद को तितली जैसी महसूस करती थी। जब वह तथाकथित घूँघट की मर्यादा में आ गई तो मात्र उसे रोटी के हिसाब में रखा गया। हमेशा औरतों को ही प्रमुख रूप से पारिवारिक झंझटों से जूझना पड़ता है। अपनी तयशुदा आदतों को बदलने के लिए परिवार के अन्य कोई सदस्य भी तैयार नहीं होता। दूसरों के द्वारा दी जानेवाली स्वतंत्रता एवं अस्वतंत्रता के बीच की दोहरी नीति में परिवार की औरतें फँस जाती हैं। आभा बोधिसत्व 'सीता नहीं मैं' कविता के माध्यम से अपने पति के विद्रोहों को सहनेवाली सीता जैसे पौराणिक पात्रों का उदाहरण देकर कवयित्री विद्रोह करती हैं। स्त्री पर ही परिवार का ढाँचा, जीवन के रिश्ते आदि को बचाए रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी जाती है। यहाँ कवयित्री इसका विरोध करती हैं। कविता की पंक्तियाँ हैं–

"हाँ सीता नहीं मैं
मैं धरती में नहीं समाऊँगी
तुम्हारे हर ना को ना नहीं कहूँगी
न तुम्हारी हर हाँ में हाँ मिलाऊँगी
मैं सीता नहीं हूँ
मैं धरती में नहीं समाऊँगी।
मैं जन्मी नहीं भूमि से
जन्मी हूँ मैं भी तुम्हारी ही तरह माँ
की कोख से।"[26]

स्त्री अपनी ज़िन्दगी खुद जीना चाहती है। औरत की ज़िंदगी किसी की बपौती नहीं है कि जो चाहे आकर उसकी ज़िन्दगी में आकर उसपर हक जताए। इन पंक्तियों के माध्यम से स्त्री अपनी ज़िन्दगी को खुद रचने की बात करती है। सीता न बनकर माँ की कोख से जन्मी एक औरत अपनी हाँ और न को बेहिचक बताएगी और किसी ओर से डरकर धरती में नहीं समाएगी। इस संदर्भ में नासिरा शर्मा का कथन उल्लेखनीय है –"समाज को बदलने से पहले ज़रूरत है इंसान को स्वयं अपने को बदलने की, खासकर दूसरों के लिए जगह बनाने की ताकि समाज में न सहीं, परिवार के दायरे में तो सुख-सुरक्षा के साथ प्यार कर सके।"[27] समाज की किसी भी समस्या का समाधान समाज में उस समस्या से जुड़े सदस्य के सोचने और बदलने से ही संभव है। यदि परिवार में सुख-सुरक्षा चाहिए तो परिवार के सदस्यों की मनस्थिति लाने की सशक्त आवश्यकता है।

4.10. अकेली स्त्री और समाज

अकेली स्त्री को समाज की बुरी नज़र से निकलना मुश्किल है। वह कितनी भी 'पवित्र' क्यों न हो, शक की निगाह से ही उसे देखा जाता है। अकेली स्त्री चाहे वह अविवाहिता हो, विधवा हो या तलाकशुदा सबकी स्थिति कहीं न कहीं समान है। 'मात्र देह नहीं है औरत' में मृदुला सिंहा कहती हैं–"विधवा होना स्वयं स्त्री के लिए अभिशाप और समाज के लिए भी अपशकुन मान लिया जाता है।"[28] यहाँ विधवा होना स्वयं स्त्री के लिए अभिशाप कहा गया है क्योंकि समाज उनकी निंदा करने लगता है। उनको पार्टियों या कोई विवाहों में अपशकुन मान लेना शुरू कर देते हैं। विधवा बनी स्त्री की व्यथा, समाज में उसको दिए जानेवाले दर्जा, उसपर थोपी जानेवाली भूमिकाएँ एवं अधिकारों का पर्दाफाश करते हुए कवयित्री कुसुम लता अंसल 'विधवा दर्द' में कवयित्री कहती हैं -

> "सधवा विधवा पर भारी है कैसी ये लीला न्यारी है
> विधवा ने क्या अपराध किया जो खुशयों से दुशकरी है।
>
> ---
>
> अभिशप्त नहीं जीवन विधवा का, ये भावहमें भरना होगा
> सम्मान सहित जीवन जीने का अधिकार उसे मिलना होगा।"[29]

यहाँ विधवा को समाज द्वारा थोपी जाने वाली दयनीय स्थिति का आवरण पहनकर जीने की मजबूरी को पर्दाफाश करने का प्रयास कवयित्री ने किया है। समाज बिना कोई अपराध करनेवाली स्त्री को खुशियों से दूर रहने के लिए कहता है। समाज के अनुसार विधवा होने के बाद उसका सम्मान, उसकी खुशियाँ सबकुछ उसके लिए पराया होना चाहिए। इसी संदर्भ को लेकर मृदुला सिंहा 'मात्रदेह नहीं है औरत में' में कहती हैं –"विधवा हुई स्त्री के अकेलेपन से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने, उसके एकाकीपन को भरने और विधवाओं के जीवन संघर्ष को

सम्मानित करने के बजाय उसे उसके हाल पर छोड़, समाज हर पल उसकी अग्नि परीक्षा लेता रहा।"[30] अग्नि परीक्षा लेनेवाली विधवा की स्थिति की ओर इशारा करते हुए कवयित्री कहती हैं–

"वह स्वयं ही खुद से हारी, फिर
जग को क्या बीमारी है
कि उस पर जो भी नज़र पड़े वो प्रश्न
नज़र पर भारी है।"[31]

यहाँ हमेशा से अग्नि परीक्षा रूपी जीवन जीनेवाली विधवा को स्वयं खुद से हारी बताया गया है। यानी वह स्वयं ही टूट चुकी है कि उसका सखा चला गया है। इसी दर्द से स्वयं हारी स्त्री को परेशान करनेवाले समाज की बीमारी भी बहुत अजीब है। उसका जीवन अभिशप्त बताकर ढाला जाता है। उसे आगे बढ़ने नहीं दिया जाता।

तलाकशुदा औरत की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। नासिरा शर्मा का कथन है –"तलाक शब्द कभी हथौड़े की तरह औरत की ज़िंदगी पर इस तरह टूटता था कि उसका आँखों के आगे अंधेरा छा जाता था...यह शब्द तब शाप था। लानत था। मगर अब मुक्ति का मंतर है। मरने से बचने का उपाय है। संघर्षरत गृहस्थी में बिना कारण होम हो जाने से निजात का रास्ता है।"[32] तलाक को यहाँ स्त्री जीवन का मुक्ति मंत्र माना गया है। अपने वैवाहिक जीवन में संघर्षरत स्त्री को उस रिश्ते से बाहर आने के लिए तलाक एक ज़रिया है।अपने अधिकारों से वंचित स्त्री समाज के नियमों से बंदी बनाई गई नज़र आती है। संघर्षरत औरत की दयनीय स्थिति को कवयित्री ओमलता ने संघर्षरत औरत में अभिव्यक्ति दी है। कविता की पंक्तियाँ हैं -

"मैं एक चूड़ी को कलाई से उतारती हूँ।
उसके व्यास में गौर से निहारती हूँ।
मुझे वह एक पूरी साजिश नज़र आती है

जिसमें औरत, सिसकती है

फिर भी मुस्कुराती है।"[33]

समाज की साजिश में बंदी गई स्त्री सिसकती है और साथ ही मुस्कुराने की कोशिश भी जारी रखती है। यहाँ 'चूड़ी' शब्द को वैवाहिक जीवन का प्रतीक बनाया गया है। इसकी दायरे को बाहर से देखे तो हर स्त्री अपने अंदर अकेली पड़ गई है और अधिकांश का हाल दयनीय है।

4.11. स्त्री देह की राजनीति

वसुधा का कथन हैं - "स्त्री एक मनुष्य नहीं मात्र एक देह, एक उत्पाद एक ब्रांड़ है।''[34] स्त्री देह सौंदर्य को आधुनिक समाज मात्र एक देह, अत्पाद और ब्रांड़ के रूप में देखता है। स्त्री देह का व्यवसायीकरण भूमंडलीकरण एवं निजीकरण की उपज है। पूँजीवाद का प्रचार तंत्र देह के सौंदर्य एवं स्वतंत्रता के ऐसे ही मिथकों और भ्रामक दुष्चक्रों को रचता रहा है। स्त्री देह को मात्र देह देखनेवाला समाज उसके अंदर के मनुष्य एवं उसकी भावनाओं को नज़रंदाज़ कर ही देता है। सबसे पहले उसे देह ही दिखता है। इस संदर्भ में रश्मि भारद्वाज की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

"यह मुझे याद हो या नहीं

मेरी देह अब भी सबसे पहले दिखाई दे जाती है

आज ही एक मित्र से कह रही थी

जल्दी से पचास की हो जाऊँ

फिर मेरी देह अदृश्य हो जाएगी।''[35]

अर्थात स्त्री का देह ही सबसे पहले दिखता है और उसके बूढे यानी उसके देह के बूढे हो जाने से वह समाज में होकर भी दिखाई नहीं देगी, वह अदृश्य बन जाएगी। समाज को स्त्री मात्र एक भोग्य वस्तु के रूप में ही दिखाई देती है। राजेंद्र यादव के अनुसार "पुरुष ने स्त्री के खून में यह भावना संस्कार की तरह कूट-कूटकर भर दी है कि वह सिर्फ शरीर है। वह शरीर के सिवा उसकी

किसी और पहचान से इंकार करता है।"[36] यानी पुरुष सत्ता ने स्त्री के अंदर इस तरह की सोच भर दी है कि वह खुद को शरीर के अलावा कोई और दर्जा देने से इनकारती है। समाज के हत्यारेगण भोग्य वस्तु रूपी स्त्री को स्वेच्छा के लिए इस्तेमाल करते हैं। इस तरह के चिंतायुक्त हत्यारों का खुलासा करते हुए कात्यायनी अपनी कविता 'हत्याओं के समय में प्रणय – विकल कविताएँ' में कहती हैं-

"उन्हें अपनी भूख मिटाने और फिर
चीरफाड़ देने के लिए
सबसे पहले स्त्रियाँ चाहिए
बहुत सारी हर उम्र की स्त्रियाँ"[37]

अर्थात स्त्री को मात्र देह समझकर उसको भोग करने के लिए समाज के हत्यारेगण तैयार हैं। वे अपने शारीरिक भूख को मिटाने के लिए हर उम्र के स्त्रियों को चीरफाड़ देने के लिए तैयार खड़े हैं। उन्हें सामने वाली स्त्री का देह ही दिखता है। उनकी भावनाओं की कोई कद्र नहीं।

स्त्रियों का जीवन विभिन्न जगहों से होकर गुजरता रहता है। उसका देह विभिन्न जगहों में विभिन्न भूमिकाएँ निभानेवाला है। स्त्री की स्वतंत्रता को प्रकृति के साथ तुलना करते हुए कवयित्री कहती हैं–

"कुछ औरतें नदी है, जो स्वतंत्र होकर बहती हैं
स्वतंत्रता असहनीय हैं
बाँट दी जाती है नदियाँ छितरे राज्यों में
विवाद छिड़ जाता है....नदी के शरी को लेकर
जो जीवन देता इन निरंकुश शासकों का"[38]

अर्थात् नदी रूपी स्त्री का स्वतंत्र बहाव अलग-अलग राज्यों से होकर है। स्त्री देह, प्रतिष्ठा, धर्म, नैतिकता आदि कई नामों से विवाद तो बनता है। इतनी असहनीय स्वतंत्रता से फायदा क्या है। वह स्वतंत्र बहने के लिए तैयार है। इसके बावजूद स्त्री देह को बाँटा गया है। स्त्री देह पर विवाद छिड़ गया है। स्त्री देह के शोषण से संबंधित अरविंद जैन का कथन है – "पहले नारी को घर में कैद करके शोषण किया जा रहा है। मुक्ति के सारे अधिकार अंततः पुरुष सत्ता के ही हितों को पोषित कर रहे हैं।"[39]

स्त्री देह को मात्र देह समझकर उसका अत्याचार करना एक शिक्षित समाज के लिए उपयुक्त नहीं है। यहाँ महिलाओं की इच्छा के अनुसार उनको अभिव्यक्ति देने का अवसर मिलना चाहिए। किसी के ऊपर अत्याचार करना उसके मानवाधिकार का उल्लंघन अवश्य है। अगर स्त्रियों को घर में बुर्का पहनने तथा बाज़ार में बिकनी डालने के लिए मजबूर कर रहे हैं तो अवश्य यह स्त्रियों पर होनेवाली नाइन्साफ़ी हैं। जब तक स्त्री पुरुष की इच्छा और वासना के नियंत्रण में है उसे सौंदर्य की मूर्ति के रूप में देखा जाता है। अगर पुरुष सत्ता के नियंत्रण के बाहर है तो उसे दंडनीय बना देता है। यहाँ स्त्री देह पर पितृसत्ता की साजिश है।

4.12. वस्त्र पर अधिकार

पितृसत्ता ने स्त्रियों के वस्त्र पर भी अलिखित नियम बनाया है। कुछ लोगों का मानना है कि स्त्रियों के खिलाफ़ होनेवाले ज़्यादातर अन्याय उनके वस्त्र या कपड़ों के कारण होता है। इसीलिए स्त्री को कपड़ों में अपने आपको बंद रखना चाहिए ताकि पुरुष उनके प्रति आकर्षित न हो। 'बुर्का' नामक कविता में कवयित्री कुसुम अंसल कहती हैं –

"अपने खुरदारी हाथों से बुर्का पहनाकर
हमें एहसास दिलवाया कि हम
सशरीर सौंदर्य नवयौवना क्षमता संपन्न

कपड़े के इस दमाघोट तंबू में बंद

संसार की उन स्त्रियों की कतार में खड़ी है...

जिन्हें आँख उठाकर आकाश की ओर देखने की

आज्ञा नहीं हैं।"[40]

अर्थात् पितृसत्ता ने स्त्रियों के मन में यह सोच भर दी है कि नवयौवना क्षमता संपन्न स्त्री को दमघोट तंबू में अपने आप को बंद करके रखना है और किसी और को देखने की आज्ञा भी नहीं है। वह खुद की मर्ज़ी से नहीं पितृसत्तात्मक सोच से भरे मन से अपने आप को सहेजती है। इसके प्रति, प्रश्न करती हुई कवयित्री ने अपना प्रतिरोध दर्ज किया है। दमघोट तंबू में बंद स्त्रियों की कतार में खड़ी स्त्रियों को आँख उठाकर देखने की इजाज़त नहीं अधिकार चाहिए।

कवयित्री सविता सिंह एक ऐसे दिन की प्रतीक्षा में है जब स्त्री अपने आप को पितृसत्ता के कूजे से उन्मुक्त घोषित कहेगी। वह उन्मुक्त होकर बाहर आकर अपने आप को स्वतंत्र कहलाएगी। सविता सिंह की 'मैं किसकी औरत हूँ' कविता की पंक्तियाँ हैं –

"उन्मुक्त हूँ देखो,

और यह आसमान

समुद्र यह और उसकी लहरें

हवा या

और इसमें बसी प्रकृति की गंध

सब मेरी है

और मैं हूँ अपने पूर्वजों के शाप और

अभिलाषाओं से दूर पूर्णतया अपनी।"[41]

कवयित्री अपने पूर्वजों द्वारा बनी बनाई दुनिया से उन्मुक्त होकर अपने लिए आज़ाद ज़िंदगी चुनने की सलाह स्त्रियों को देती हैं। आसमान, समुद्र, लहरें इन सबकी तरह यानि कि प्रकृति की तरह स्त्री को उन्मुक्त एवं निडर होकर जीना है। अपने पूर्वजों के शाप और अभिलाषाओं को ढोए बिना अपनी ज़िंदगी अपने ढंग से जीने का अधिकार हर किसी को है। इसलिए स्त्रियों से कवयित्री कहती हैं कि अपना जीवन अपने हिसाब से जियो।

4.13. मात्र भाषण बनती स्त्री सशक्तिकरण

> "महिला दिवस पे नारी का
> कोरा दिखावा करते हैं
> नवरात्रि में देवी बनाकर,
> वचुअलअब्यूज भी करते हैं।"[42]

यह कुसुमलता अंसल की 'आखिर कब तक' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं। इसमें कवयित्री ने मात्र भाषण में उल्लिखित स्त्री मुक्ति एवं स्त्री उन्नति की बातों का पर्दाफाश किया है। सशक्तिकरण से तो तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति को उसे स्वयं निर्णय लेने योग्य बनाना। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार लाना। 'अब हम आपको क्या बताए साहब!' नामक कविता में कवयित्री कात्यायनी इसी मुद्दे पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं –

> "आप जब महिला सुरक्षा और बेटियों को
> बचाने की बात करते हैं
> तो हमारी आँखों के सामने सामूहिक बलात्कार के बाद
> सड़कों, गलियों, मैदानों में बिखरे

चीथडे जनाना जिस्मों और त्रिशूलों पर लटकें
गर्भ फाड़कर निकाले गए बच्चों का मज़र नाचने लगता है।"[43]

अर्थात एक ओर जब स्त्री को बचाने, पढ़ाने, सुरक्षित रखने की बात भाषणों में चलती है, तो दूसरी ओर उसके जनाना त्रिशूलों पर लटके दिखाई देता है। उसके देह को फाड़ना, उसके गर्भ से बच्चों को निकालना यह सब करतूतें तो हद पार कर ही गई। उन्नति और अवनति की बातें सिर्फ़ कागज़ में सीमित बनती जा रही है। दीपाली गंगवार की कविता 'तब समझो कि हम उन्नति पर है' में वे कहती हैं –

"जब उन्नति और
आगे बढ़ने की बातें
सिर्फ़ कागज़ों एवं
शब्दों में सीमित रह
जाते है, तो समाज में
खुली आँखों से दिखनेवाली चीज़ें
मात्र दिखावा रह जाती है।"[44]

उन्नति और अवनति की बातें मात्र कागज़ों, भाषणों एवं नारों में सीमित रह जाने पर समाज में जो कुछ दिखाया जाता है वह मात्र दिखावा रह जाता है। इससे आगे किसी स्त्री अधिकार के संरक्षण की प्रतीक्षा नहीं किया जा सकता। अनामिका कहती हैं- "व्यवस्था परिवर्तन ही इनका समाधान है। मेरी राय में स्त्री का हर मुद्दा व्यवस्था से जुड़ा है।"[45] व्यवस्था में परिवर्तन लाने से ही इसका समाधान निकालना संभव है। वरन् अधिकार पर होने वाले भाषण एवं नारे खोखले रह ही जाएँगे।

4.14. निष्कर्ष

पितृसत्ता पुरुष प्रभुत्व को सुदृढ़ करनेवाली वह व्यवस्था है, जिसका पहला पाठ परिवार से शुरू किया जाता है। बेटा अक्रामक लड़ाकू बन सकता है, लेकिन बेटी ध्यान रखनेवाली होनी चाहिए। पितृतंत्र ने जिस प्रकार के सामाजिक उसूलों को बनाया है उसमें स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी दृष्टियों से आगे रखा। इस कारण से समाज के तथाकथित नियमों के अनुसार स्त्रियाँ मानवाधिकारों का उल्लंघन सहने के लिए मजबूर हो जाती हैं। अपने ढंग से जीवन जीने के अधिकार से वंचित स्त्री की आवाज़ को कवयित्री वीणा करमचंदाणी ने अपनी कविता 'आज़ादी' में अभिव्यक्ति दी है। प्यार में अनावश्यक अधिकार जताना मानवाधिकार उल्लंघन होने की संभावना बढ़ाती है। वहाँ अनादर और असम्मान पनपने की संभावना ज़्यादा है। 'नई इबारत' नामक कविता इसके लिए उदाहरण है। स्त्री को बोनसाई बनाने की सजिश पितृसत्ता की है। सुधा उपाध्याय की कविता 'बोनसाई', सांत्वा श्रीकांत की कविता 'सुनो लड़की' आदि इस संदर्भ में उल्लेखनीय कविताएँ हैं। स्त्री को सहनशील एवं चुप रहने का प्रशिक्षण पितृसत्ता द्वारा दिया जाता है। आरती स्मित की कविता 'मायने होने के' में इसको अंकित किया है। कन्यादान पितृसत्ता द्वारा निर्मित व्यवस्था है, जिसके कारण कन्या मानसिक रूप से तड़पने लगती है साथ ही अपनी जगह से बेजगह होती है। कवयित्री पद्मजा शर्मा की 'बिटिया', कुसुमलता अविचल की कविता 'बेटी', मनीषा झा की कविता 'अनन्य' आदि में कन्यादान रूपी पितृसत्तात्मक निर्मिति द्वारा होनेवाली कन्या के मानवाधिकार उल्लंघनों को पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। ससुराल और मायके में विभाजित स्त्री की रहन तथा विदाई जैसे संप्रदाय पर सुरभि नोगजा की 'विदाई', आभा भारती की 'बेटी को सीख' जैसी कविताएँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। शादी के बाद स्त्रियों की आत्म को उनसे अलग की जाती है। पारिवारिक रूप से सौंपे जानेवाले कष्ट एवं सारे दुख स्त्री पर ही थोपे

जाते हैं। अपनी इच्छाओं को छोड़कर अपनी निजी जीवन से अलग होकर दूसरों के लिए जीने के लिए वह मजबूर होती है । आभा बोधिसत्व की कविता 'सीता नहीं मैं' इस स्थिति पर विद्रोह करती है । अकेली स्त्री को सामाजिक बुरी नज़रों से बचना मुश्किल है । सामाजिक न्यायों के अनुसार किसी भी स्त्री को जीने के लिए मजबूर करना उसके मानवाधिकारों का उल्लंघन है , चाहे वह विधवा हो, अविवाहिता हो या तलाकशुदा। समाज की नज़रों में अकेली स्त्रियों पर जो दर्जा एवं भूमिकाएँ थोपी जाती हैं , उसको पर्दाफाश करने का सशक्त प्रयास कवयित्रियों ने किया है। कुसुमलता अविचल की 'विधवा दर्द', ओमलता की कविता 'संघर्षरत औरत' आदि इसके लिए उदाहरण हैं। स्त्री को मात्र भोग्य बनानेवाले समाज के ढाँचे का खुलासा कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया। स्त्री को मात्र देह समझकर उसको भोगने के लिए हत्यारेगण तैयार हैं । कात्यायनी की कविता 'हत्याओं के समय में प्रणय-विकल कविताएँ' में इसका उल्लेख मिलता है। स्त्रियों के वस्त्र पर पितृसत्ता द्वारा कब्जाकरण हुआ है। अपनी इच्छानुसार वस्त्र पहनने के अधिकार से स्त्रियाँ वंचित हैं। कुसुम अंसल की 'बुर्का' नामक कविता इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। पितृसत्तात्मक समाज से अपने आप को मुक्त करने के विचार को सविता सिंह ने 'मैं किसकी औरत हूँ' में अभिव्यक्ति दी है। मात्र भाषण बनती स्त्री सशक्तिकरण पर व्यंग्य करते हुए कार्यकर्ताओं को उजागर करने का सशक्त प्रयास कवयित्रियों ने किया है । कुसुमलता अविचल की कविता 'आखिर कब तक', कात्यायनी की कविता 'अब हम आपको क्या बताए साहब!', दीपाली गंगवार की कविता 'तब समझो कि हम उन्नति पर हैं' आदि कविताएँ इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि पितृसत्ता ने महिला अधिकारों के कब्जाकरण में कोई कसर नहीं छोड़ी । पितृसत्ता ने घर, समाज, वैवाहिक ज़िंदगी, कामकाज आदि में अपना उसूल चलाया, जिसके कारण स्त्रियों के ज़्यादातर अधिकार उनसे छीने गये । पितृतंत्र एवं पितृसत्ता किस प्रकार

महिला अधिकारों पर अपना हक जता रहे हैं, उसको बारीकी से अभिव्यक्ति देने का प्रयास कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

संदर्भ-सूची

1. एल.एस.दोषी, पी.सी.जैन, भारतीय समाज, पृ. सं,329.
2. साधना आर्य, लता सिंह (सं),भारत में महिला आंदोलन, विमर्श और चुनौतियाँ, पृ.सं. 27,28.
3. अरविंद जैन, औरत होने की सज़ा, पृ.सं.53,54.
4. बनारस जन, अंक 61, दिसंबर 2022, पृ.सं.132.
5. वसुधा (सं), स्त्री मुक्ति का सपना, पृ.सं.479.
6. वागर्थ, जुलाई 2014, अंक 228, पृ.सं.112.
7. वही, पृ.सं.112.
8. सुधा उपाध्याय, इसलिए कहूँगी मैं, पृ.सं.31.
9. वसुधा, (सं), स्त्री भूमिका का सपना, पृ.सं.107.
10. सुनो लड़की, अप्रैल 4, 2018, जनसत्ता ऑनलाइन
11. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, पृ.सं.107.
12. आरती स्मित, मायने होने के, पृ.सं.127.
13. मैत्रैयी पुष्पा, आवाज़, पृ.सं.43.
14. पद्मजा शर्मा, खामोशी, पृ.सं.109.
15. कुसुमलता अविचल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, पृ.सं.80.
16. धूमकेतु , अंक 1,2022, पृ.सं.27.
17. मैत्रेयी पुष्पा, आवाज़, पृ. सं,59.
18. सुरभि नोगजा, तुम प्रेम हो, पृ.स.51.
19. आभा भारती, धरती की धड़कन से, पृ.सं.42.

20. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए दरवाज़े में, पृ.सं.46.

21. ओमलता, नीले रंगों वाली देह, पृ.सं.47.

22. रेखा कतवार, स्त्री मुक्ति का सपना, पृ.सं.

23. राजेंद्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, पृ.सं.27.

24. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए दरवाज़ से, पृ.स.12.

25. नया ज्ञानोदय, अक्तूबर 2017, अंक 176, पृ.सं.

26. आभा बोधिसत्व, सीता नहीं मैं, पृ.सं.28.

27. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ.सं.142.

28. मृदुला सिंह, मात्र देह नहीं है औरहत, पृ.सं.212.

29. कुसुम लता अंसल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, पृ.सं.87.

30. मृदुला सिंहा, मात्र देह नहीं है औरत, पृ.सं.212.

31. कुसुम लता अंसल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, , पृ.सं.87.

32. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ.सं.162.

33. ओमलता, नीले रंगों वाली देह, पृ.सं.48.

34. वसुधा (सं),स्त्री मुक्ति का सपना, पृ.सं.25.

35. हंस, मार्च 2024, अंक 38, पृ.सं.69.

36. राजेंद्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, पृ.सं.15.

37. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.143.

38. नया ज्ञानोदय, अक्तूबर 2017, पृ.सं.124.

39. अरविंद जैन, औरत होने की सज़ा, पृ.सं.139.

40. कुसुम अंसल, पंख-एक भेंट, पृ.सं.97.

41. सविता सिंह, अपना जैसा जीवन, पृ.सं.40.

42. कुसुम लता अंसल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, पृ.सं.77.

43. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.140.

44. पगडंडी साहित्य, अक्तूबर-दिसंबर, 2013, पृ.सं.58.

45. अनामिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, पृ.सं.101.

पाँचवाँ अध्याय

मानवाधिकार और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

5.1. विषय प्रवेश

महिलाओं पर अत्याचार करने की स्थिति के प्रमुख कारण समाज द्वारा मनुष्यों के लिंगाधारित कर्तव्यों का निर्धारण है। कमला भसीन के अनुसार "लिंग से तात्पर्य पुरुष और स्त्री की सामाजिक सांस्कृतिक परिभाषा से है, जिसमें स्त्री और पुरुष को विशेष कायदे कानून देकर अलग करता है।"[1] 'लिंग' को पितृसत्तात्मक समाज ने इसलिए तैयार किया ताकि वह स्त्रियों पर लिंगाधारित शोषण कर पाए। अगर कोई पुरुष स्त्री पर अत्याचार नहीं करता तो यह समाज उसे 'चूड़ियाँ पहनी हुई है' बताते हैं। "अगर वह मर्द है तो वह मारेगा ज़रूर।"[2] स्त्रियों की निर्मिति में भी इसी तरह के सामाजिक अनुकूलन होता है।

इस प्रकार निर्मित समाज में बलात्कार, लैंगिक उत्पीड़न और दुर्व्यवहार, असम्मान हत्या, सती प्रथा, दहेज के लिए हत्याएँ, पत्नी की मार-पिटाई, कुपोषण-अल्पपोषण आदि के होने में आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो आम बात बन चुकी है।

यू एन वुमेन वेबसाइट के अनुसार "महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ़ हिंसा दुनिया के सबसे प्रचलित मानवाधिकार उल्लंघनों में से एक है, जो दुनिया के हर कोने में हर दिन कई बार हो रही है। इसका महिलाओं और लड़कियों पर अल्पकालिक और दीर्घकालिक गंभीर शरीरिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिणाम होता है, जिससे समाज में उनकी पूर्ण और समान भागीदारी बाधित होती है।"[3]

महिलाओं के प्रति हिंसा को पाबंदियों, भेदभाव, नियंत्रण से तथा औरतों पर खुले में होनेवाली हिंसा आदि को असमान जेंडर संबंधों और औरतों को परिवार, समुदाय और देश की इज़्ज़त के साथ जोड़कर देखने लगे। महिलाओं के विरुद्ध विविध प्रकार की हिंसाएँ होती हैं – जैसे कि शरीरिक हिंसा, यौन हिंसा, मनोवैज्ञानिक हिंसा, आर्थिक हिंसा आदि। हानिकारक प्रथाएँ, मानव तस्करी, बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या, तेजाब हमला, ऑनलाइन या प्रौद्योगिकी

प्रेरित हिंसा आदि प्रकार की हिंसाएँ स्त्रियों के खिलाफ़ हो रही हैं। "जनगणना 2011 के अनुसार, भारत में महिला श्रमिकों की कुल संख्या 149.8 मिलियन है और ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में क्रमशः121.8 और 28.0 मिलियन हैं। कुल 149.8 मिलियन महिला श्रमिकों में से, 35.9 मिलियन महिलाएँ कृषक के रूप में काम कर रही हैं और अन्य 61.5 मिलियन कृषि मज़दूर हैं। शेष महिला श्रमिकों में से, 8.5 मिलियन घरेलू उद्योग में हैं और 43.7 मिलियन अन्य श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत हैं।"[4] कोई भी मज़दूर हो स्त्री या पुरुष उसके साथ दुर्व्यवहार और भेदभाव करना उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन करना है। कामकाजी महिलाओं का समाज में उल्लेखनीय स्थान है, चाहे वह गृहिणी या यौनकर्मी हो। गार्हिक उत्पीड़न, अपने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न आदि से महिला श्रमिकों को बचाए रखने के लिए बहुत सारे कानून है। फिर भी कहीं न कहीं उसका पालन कम दिखाई देता है। "उन्होंने सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में होने वाले श्रम के बँटवारे की अवधारणा और समाज तथा अर्थव्यवस्था में औरतों द्वारा किए जाने वाले काम के आधार पर महिलाओं की अधीनता की व्याख्या की।"[5] समकालीन साहित्य की कवयित्रियों की कविता में महिलाओं के खिलाफ़ होनेवाली हिंसा, कामकाजी स्त्रियों के कार्यस्थल पर होनेवाली हिंसा, समाज में व्याप्त हानिकारक प्रथाओं से हिंसा, बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या आदि को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

5.2. ऑनर किलिंग (असम्मान हत्या)

महिलाओं के प्रत्येक करतूतों से हमारे 'इज़्ज़त को खतरा' हुआ है कहकर जो हत्याएँ स्त्रियों की होती हैं, उन्हें स्त्रियों की असम्मान हत्या कही जाती है। सामाजिक व्यवस्था में इसकी आड़ में होनेवाली क्रियाएँ एक व्यक्ति की यौनिकता, विवाह और संबंधों से जुड़े फैसले लेने के हक पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। रमणिका गुप्ता कहती हैं - "जो भी हो जहाँ एक स्त्री का स्वयं स्त्री होने की हीन-भावना से मुक्त होना अनिवार्य है, वहाँ दूसरी तरफ़ स्त्री शुचिता की ग्रंथि को इज़्ज़त

के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति ध्वस्त करना भी उतना ही ज़रूरी है । इससे ऑनर किलिंग में कमी आएगी और प्रेमीयुगल न तो फाँसी पर लटकाएँ जाएँगे, न ही पत्थरों से मारे जाएँगे । "[6] ऐसा माना जाता है कि परिवार और समुदाय की इज़्ज़त महिलाओं में बसती है । लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि एक ओर पुरुष प्रभुत्व वाले समाज के प्रतिनिधि इज़्ज़त के संरक्षक होते हैं, लेकिन दूसरी ओर यही लोग तथाकथित सामाजिक नियमों का पालन न करनेवालों पर हिंसा का प्रयोग करते हैं। इसे परिवार और अपने समुदाय की आपसी मामला कहकर बंद कर देता है । उनको युगलों द्वारा अपनी इच्छानुसार विवाह करना पसंद नहीं है । वे पुलिस, अदालत जैसी बातों को इसमें आने नहीं देते । बल्कि परिवार के बड़े बुजुर्गों द्वारा ही इसे निपटा दिया जाता है ।

रमणिका गुप्ता का कथन इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है । "मूँछ की लड़ाई में औरत की हत्या । और प्रेमी की भी । जैसे कि उनका अपना कोई वजूद ही नहीं, कोई मर्जी नहीं उसकी ।.... लेकिन जब कोई जीवन भर साथ निभाने को तैयार है तो सिर्फ इस खातिर उसका वध कर देना कि उसने जात-पाँत, गोत्र-फोत्र का बंधन नहीं माना, प्रेम भी करना था तो जात-पाँत देखकर करना चाहिए था, हैसियत देखनी चाहिए थी वगैरह-वगैरह...यह हद है ।"[7] ऑनर किलिंग यानी अपने और अपने परिवार के हॉनर या सम्मान बचाने हेतु हत्या करना अर्थात इज्ज़त बचाने हेतु हत्या करना । इज्ज़त के नाम पर परिवार अपने बेटा या बेटी को मारते हैं तब वे यह भूल जाते हैं कि इस तरह के करतूत से ही परिवार बदनाम होते हैं । कात्यायनी अपनी कविता 'खौफ़नाक शर्मिन्दगी' में कहती हैं–

> "जिस शहर में साल भर के भीतर
> -------------------------------
> एक भी प्रेमी जोड़े को पंखे या पेड़ या
> बिजली के खंभे से न टाँगा गया हो,
> -------------------------------

उस शहर के लोग लगभग देशद्रोही जैसा ही

समझते हैं अपने आप को ।”[8]

हमारे देश में ऑनर किलिंग साधारण बात बन गई है । किसी व्यक्ति द्वारा किसी ओर व्यक्ति या व्यक्तियों का जीवन जीने के अधिकार का उल्लंघन हो रहा है । कवयित्री ने यहाँ व्यंग्यात्मक ढंग से यह प्रस्तुत किया है कि अगर इस देश में किसी भी प्रेमी जोड़ा मारा नहीं जा रहा तो वहाँ के लोग अपने आप को देशद्रोही मान ले । यानी हमारे देश में यह आम-बात बन गई है कि किसी व्यक्ति द्वारा अपने कारणों से दूसरों को मारना । इज्ज़त को बचाने के नाम पर किए जानेवाली यह हीन करतूत असल में इज्ज़त को लूटनेवाली प्रवृत्ति है । यह प्रवृत्ति मनुष्य के अंदर के क्रूर जानवर को बाहर लाते है । बदनामी परिवार की हो या समाज की इसकी पूर्ण ज़िम्मेदारी दूसरों की ज़िन्दगी में दखल देकर उनके अधिकारों का अवरोध करनेवालों पर जाती है ।

5.3. कन्या भ्रूण हत्या

पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे में लैंगिक भेदभाव के कारण जन्म से पहले जब एक कन्या की हत्या की जाती है तो उसे कन्या भ्रूण हत्या या बालिका भ्रूण हत्या कहते हैं । बच्चों के लिंग का पता माँ के पेट में होनेवाले समय से ही सोनोग्राफ़ी के माध्यम से पता चलता है । भारत के सभी राज्यों तथा केंद्र शासित प्रदेशों में जन्म से पहले लिंग का जाँच करना दंडनीय अपराध है । 1994 में नियमन और दुरुपयोग से बचाव अधिनियम (Pre Natal Diagnostic Technique Regulation and Prevention of misuse – PNDT Act) लाया गया था । बाद में 2003 में गर्भ धारण से पहले और जन्म से पहले लिंग निर्धारण को अपराध के रूप में संशोधित किया गया । लिंग जाँच और उससे जुड़ी विज्ञापन भी दंडनीय अपराध है । कन्या भ्रूण हत्या का कारण यह रहा कि एक पितृसत्तात्मक सोचवाले परिवार में पैदा होनेवाली लड़की दूसरे घर में जानेवाली होती है । उसके विवाह का खर्चा परिवार को लेना पड़ेगा । कभी तो गर्भ धारण करनेवाली स्त्री को

न चाहते हुए भी इस अत्याचार का साथ देना पड़ता है। यहाँ दो व्यक्तियों के अधिकारों का हनन है, एक तो उस कन्या को जो अभी तक इस दुनिया में नहीं आयी तो दूसरी वह स्त्री की जो पितृसत्ता के दबाव में आकर अपने गर्भ गिराने के लिए मजबूर हो जाती है।

बालिका शिशु की हत्या उन परिवारों में ज़्यादा होती है, जहाँ लड़कों को अधिक महत्व दिया जाता है। इस संदर्भ में अनामिका का कथन उल्लेखनीय है – "स्त्री भ्रूणहत्या के समर्थन में तर्क यह दिया जाता है कि लड़कियों की सेना पालकर क्या होगा, उन्हें तो पराए घर जाना है, हमारे मयूरतख्य की और परलोक की रक्षा तो मर्द बच्चा करेगा।"[9] कन्या भ्रूण हत्या में एक लड़की इस दुनिया में जनम लेने से पहले ही अपने जीने के अधिकार से वंचित है। पूर्ण रूप पाने से पहले ही लड़की होने के कारण उसकी हत्या की जाती है। 'एक लड़की की शिनाख्त' कविता में अलका सिंहा की पंक्तियाँ हैं –

"अभी तो मैंने
रूप भी नहीं पाया था
मेरा आकार भी
नहीं गढ़ा गया था
स्पंदनहीन मैं
महज माँस का एक लोथड़ा

रूपहीन आकारहीन
अस्तित्वहीन मैं
अभी बस एक चिह्न भर ही तो थी
जिसे समाप्त कर दिया तुमने

मुझे अफसोस नहीं

कि मेरी हत्या की गई।"[10]

यहाँ कवयित्री ने एक रूप, आकार या अस्तित्व धारण करने से पहले ही मात्र एक कन्या भ्रूण होने पर होने वाली उसकी हत्या को दर्शाया है। और मात्र एक चिह्न भ्रूण कन्या द्वारा इन पंक्तियों के ज़रिए व्यंग्य के रूप में कवयित्री कुसुमलता अविचल ने कहलवाया है कि उसे कोई अफसोस नहीं कि उसकी हत्या की गई। अपनी हत्या के कारण ढूँढती हुई भ्रूण कन्या अपनी माँ से पूछती है –

"माँ मेरा अपराध क्या था कल जो

मेरा हुआ है

जिसके हिस्से से बनी थी वह मेरा

कातिल हुआ है।"[11]

यहाँ कवयित्री कुसुमलता ने अपनी पंक्तियों के माध्यम से मार दी गई भ्रूण कन्या द्वारा अपनी माँ से किए जानेवाले प्रश्न को दर्शाया है। वह कहती है कि जिसने मुझे बनाने के लिए मदद की थी उसी ने मुझे मार डाला। यहाँ पिता द्वारा मार दिए जानेवाले भ्रूण कन्या यह बात कह रही है। 'कविता का स्त्री पक्ष' में प्रमीला कहती हैं –"भ्रूण हत्या को लेकर सभ्यता की मनुष्यता खोखली है, बेदिल है। जनसंख्या के अनुपात में लड़कियों की संख्या बहुत अधिक घटने के बाद भी इस मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आया।"[12]

कवयित्री कुसुमलता अविचल अपनी कविता 'कन्या भ्रूण हत्या' में भ्रूण हत्या को प्रतिबंधित करने का नारा बुलंद करते हुए कहती हैं–

“भ्रूण हत्या प्रतिबंधित हो, नारा बुलंद
करना होगा
बेटी-बेटे का जन्म बराबर सृष्टि
संतुलन रखना होगा।
जो प्रकृति की आकृति है, उसे
विकृति नहीं होने देंगे
विकलांग मानसिकता जिनकी है,
स्वीकृत नहीं होने देंगे।”[13]

यहाँ कवयित्री ने कन्या भ्रूण हत्या करने वाले लोगों की विकृत मानसिकता को पर्दाफाश करने का सशक्त प्रयास किया है। प्रकृति की आकृति को तोड़नेवाली विकलांग मानसिकता पर कवयित्री प्रश्न चिह्न लगा रही हैं। बेटा और बेटी प्रकृति की बराबर संतुलित सृष्टि हैं। उनमें किसी को भी मारना उनके जीवन जीने के अधिकार का उल्लंघन है। इस तरह की विकलांग मानसिकता को किसी भी हाल में स्वीकारा नहीं जा सकता। ज़रूरत है इस मानसिकता को बंद करने के साथ ही आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक बदलाव लाने की। मनुष्य को मात्र मनुष्य के रूप में देखे और लिंग के आधार पर उसका भेदभाव न करें। उपर्युक्त कविताओं के साथ ही मृदुला जोशी की कविता ‘माँ मुझे आने दो’ भी कन्या भ्रूण हत्या की दर्दनाक स्थिति को दर्शाती है।

5.4. घरेलू हिंसा

नासिरा शर्मा का कथन है - “घर-घर रोज़ जीने का संघर्ष जो एक औरत को करना पड़ता है, वह किसी योद्धा की ट्रेनिंग से कम मशक्कतपूर्ण नहीं होता है। कपड़े धोना, झाड़ू लगाना, खाना पकाना, महंगी तरकारी और मसाला की अंधी दौड़ में बचत करना, मगर अंत में एक योद्धा

एवं गृहस्थन को क्या मिलता है? अपने अधिकार के लिए लड़ना और जान गंवाना कोई समझदारी की बात नहीं है।"[14] यहाँ नासिरा शर्मा ने स्त्री के गार्हिक जीवन को योद्धा के जीवन के साथ तुलना की है। एक ओर गृहिणी कपड़े धोना, झाड़ू लगाना जैसे काम करती है दूसरी ओर योद्धा युद्ध करता है। लेखिका अंत में दोनों को मिलने वाले परिणाम के बारे में शंकित होती हैं और कहती हैं कि योद्धा और गृहिणी दोनों लड़ते हैं और अगर कोई अपने अधिकार के लिए लड़े तो वह बड़ी बात बन जाती है और अगर कोई बिना वजह अपना जान गँवाए तो उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। बिना वजह के हमेशा से घरेलू हिंसा सहनेवाली स्त्री के आक्रोश को सविता सिंह 'मैं किसकी औरत हूँ' में व्यक्त करती हैं। कविता की पंक्तियाँ हैं –

"मैं अपनी औरत हूँ
अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं"[15]

अर्थात् कोई किसी के गुलाम नहीं है। स्त्री खुद कमाना और खुद खाना जानती है। परमेश्वर का दर्जा कोई भी स्त्री किसी को नहीं देती । समाज की मान्यताओं एवं आचार व्यवहारों ने स्त्री को हमेशा पुरुष से कमतर बनाकर रखा है जिससे स्त्री शोषण एवं उत्पीड़न को बढ़ावा मिला। पितृसत्तात्मक समाज की दृष्टि में स्त्री होने का अर्थ है गुलाम होना और मार-पीट सहनेवाली बनना। इसी संदर्भ को लेकर व्यंग्यात्मक ढंग से 'रोज़मरी एक अच्छी लड़की है' में कवयित्री सविता सिंह कहती हैं –

"तभी पहली बार उसके पति के बारे में पूछा था
कहाँ है वह क्या करता है

क्या अब भी उसकी पहचान है उससे

रोज़मरी सिर हाथ हिला

कठपुतली की तरह बोलने लगी

साल में एक बार अलास्का जाता है

ताज़ा मछलियाँ मार वहीं बर्फ़ पर

भुनकर खाता है

मुझे तो नहीं"[16]

यहाँ कवयित्री रोज़ मरने के समान जीवन जीनेवाली एक लड़की के जवाब के ज़रिए घरेलू हिंसा सहनेवाली लड़की की व्यथा प्रकट करती हैं। अपने पति के काम एवं उसके रहन-सहन के बारे में किसी के द्वारा पूछे जाने पर वह झूठ बोलती नज़र आती है। पत्नी कहती है कि साल में अलास्का जाने वाले पति द्वारा मछलियाँ भुनकर खायी जाती हैं और साथ ही वह एक ओर पंक्ति जोड़ती है 'मुझे तो नहीं'। यहाँ घरेलू हिंसा सह-सहकर पत्नी को 'स्टॉकहोम सिंड्रोम' हुआ है, जैसा प्रतीत होता है। यह एक ऐसी स्थिति है जब अगुवा होनेवाले व्यक्ति को अपने अपहर्ता के साथ सहानुभूति हो जाती है। इस स्थिति को दर्शाने के लिए कवयित्री ने 'रोज़मरी लड़की' का प्रयोग किया है। सरकार द्वारा घरेलू हिंसा पर रोकथाम लगाने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। लेकिन असली बात तो यह है कि जब तक स्वयं हिंसा को सहनेवाला व्यक्ति जागरूक होकर उसके खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठाएगा तब तक कोई बदलाव नहीं आ सकता। बदलाव की चिंगारी अपने अंदर से आनी होगी। ज्योति चावला की पंक्तियाँ हैं –

"इन नए उपमानों में नहीं होगी वह

कोई अबला, कमज़ोर या त्यागमयी

बल्कि इतिहास दर्ज करेगा उसके गुणों को

गुणों ही की तरह और

वे होंगी सृष्टि के निर्माण में अपनी

भूमिका तय करती"[17]

यहाँ कवयित्री स्त्रियों में बदलाव लाने के लिए प्रेरित कर रही हैं। इन गुणों एवं बदलावों को इतिहास दर्ज करेगा। सृष्टि के निर्माण में स्त्रियों द्वारा अपनी भूमिका तय करनेवाले दिन आएंगे।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार पुरुषमेधावी पति द्वारा पत्नी को पीड़ित करने के पीछे का लक्ष्य अपनी अग्रता को स्थापित करना होता है। पितृसत्तात्मक समाज पुरुष की अग्रता को अवश्य मान्यता देता है, पर कानून एवं नैतिकता ऐसा हरगिज़ नहीं करते। कवयित्री ओमलता की 'नीले रंगों वाली देह' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"नीले रंगों वाली देह

यह न उपमा है न रूपक

न बिंब है न छंद

न लय है न राग

यह कुम्हार के घड़े की तरह

दरअसल हर दिन पिटनेवाली औरत है

नीले रंगों वाली औरत"[18]

यहाँ कवयित्री हर दिन हर ढंग से शारीरिक, मानसिक सभी तरह से पीड़ित स्त्री को कुम्हार के घड़े से तुलना की है। हर दिन पिटे जानेवाली औरत नीले रंग में बदल जाती है। यहाँ नीले रंगों वाली देह का प्रयोग करके मार-पीट के कारण चकनाचूर हुई स्त्री की दयनीय स्थिति को दर्शाया है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार एक व्यक्ति का शरीर तभी नीला पड़ जाता है, जब उसके शरीर में

ऑक्सीजन की कमी हो। स्त्रियों को घरेलू हिंसा से बाहर आने की आवश्यकता है। मात्र हिंसा को भोगने से उससे चुटकारा पाने का कोई हल नहीं निकलेगा। अपने अधिकारों के हनन के खिलाफ़ आवाज़ उठाने से ही हल निकलेगा। सबकुछ खतम होने के बाद अपने अधिकार वापस नहीं मिलता। महिला संरक्षण अधिनियम 2005 के अनुसार राज्य का कर्तव्य है कि वह स्त्रियों के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा के विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई करें और खासकर जब हिंसा परिवार के अंदर से ही हो। रेखा व्यास की कविता 'मेरी तलाश', वंदना मिश्रा की कविता 'अधिकार', रंजना श्रीवास्तव की कविता 'जब मैं स्त्री हूँ' आदि कविताओं में भी गार्हिक उत्पीड़न से जुड़ी समस्याएँ विद्यमान हैं।

5.5. तेजाब हमले की समस्या

तेजाब एक ऐसा पदार्थ है जिसका पी एच 7 से नीचे होता है और उसका स्वाद खट्टा होता है। मजबूत अम्ल अथवा एसिड़ किसी के भी छूने पर हानि पहुँचा सकता है। बाज़ार में आसानी से मिलनेवाले सल्फ्यूरिक तेजाब से पुरुषों द्वारा महिलाओं पर आक्रमण होता है। इसको तेजाब हमला कहा जाता है। तेजाब एक व्यक्ति के त्वचे के दो परतों को खत्म करने में सक्षम है। तेजाब जैसे ही किसी व्यक्ति के चेहरे पर आ पड़ता है तत्क्षण उस व्यक्ति के आँख, कान, नाक पूरा मुँह जल जाने की संभावना है। भारत में तेजाब हमले के शिकार स्त्रियों के आधिक्य की ओर इशारा करते हुए तथा उस स्थिति पर आक्रोश एवं व्यंग्य करते हुए कवयित्री कात्यायनी कहती हैं –

"जिस शहर में साल भर के भीतर
एक भी औरत के चेहरे पर
तेजाब न फेंका गया हो
उस शहर के लोग लगभग
देशद्रोही जैसा ही
समझते हैं अपने आप को"[19]

यहाँ कवयित्री स्त्रियों पर होनेवाले तेजाब हमले की ओर इशारा करती हैं। आजकल ऐसा कोई शहर नहीं होगा जहाँ एक भी औरत के चेहरे पर तेजाब नहीं फेंका गया हो। कवयित्री व्यंग्य करती हैं कि अगर कोई ऐसा है जिसने तेजाब हमला कभी किया नहीं, तो अवश्य उसमें कुछ गड़बड़ी है या वह लगभग देशद्रोही ही समझता है अपने आप को। पितृसत्तात्मक सोच ने मानव मस्तिष्क को इस प्रकार तैयार करके रखा है कि अगर वह स्त्रियों के खिलाफ़ अत्याचार नहीं करता तो उसमें कुछ खामी अवश्य है। इस प्रकार के अत्याचार महिलाओं के मानवाधिकार उल्लंघन है। इस भयानक अपराध को रोकने के लिए बहुत कुछ करना है। तेजाब की बिक्री को विनियमित करने की सख्त ज़रूरत है। तेजाब की अनियमित बिक्री इस अपराध का प्रमुख कारण है। हमें पीड़ितों के साथ रहकर उनके अधिकारों का संरक्षण करना है।

5.6. ऑनलाइन / प्रौद्योगिकी प्रेरित हिंसा

सोशल मीडिया की सर्व स्वीकृति के साथ-साथ समाचार, वीडियो, तस्वीरें आदि की प्रामाणिकता पर भी संकट पैदा होने लगा। बातों को तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत करनेवालों की संख्या बढ़ गई। अफवाहें, झूठी खबरें आदि भी प्रचलित होने लगीं। किसी भी चीज़ की प्रामाणिकता की चिंता किए बिना लोग उसे शेयर करने लगे। आजकल जिस प्रकार की संस्कृति का निर्माण सोशल मीडिया ने किया है वह एक चिंता का विषय बन गया है। मानव के विरुद्ध मानव षड्यंत्र रच रहे हैं, धोखा दे रहे हैं, नस्लीय, जातीय, सांप्रदायिक एवं लैंगिक आक्षेप लगा रहे हैं। मानव के नैतिक एवं वैचारिक पतन इस तरह की करतूतों से द्रष्टव्य है। सोशल मीडिया में साइबर अपराध जैसे कि गाली गलौज, धमकी, घृणा, भेदभाव आदि की भरमार हैं। हमारे समाज की पितृसत्तात्मक सोच सोशल मीडिया में भी काम कर रही है। इस सोशल स्पेस के माध्यम से स्त्रियों ने अपना मत प्रकट किया। एक अदृश्य समाज उसे अपनी बात रखने के लिए जगह दे रहा है। लेकिन जिस प्रकार समाज में स्त्रियों पर अत्याचार चल रहा है, उसी प्रकार वर्चुअल समाज में स्त्री शाब्दिक हिंसा से बच नहीं पाती। "साइबर महारष्ट्र के अनुसार प्रमुख रूप से चार प्रकार की

धोखाधड़ियाँ होते हैं – सहानुभूती धोखाधड़ी, रोमांस धोखाधड़ी, सैबर स्टोकिंग, साइबर बुल्लियिंग ।”[20]

सोशल मीडिया की धोखाधड़ियों के बीच में ही ‘मीटू’ आंदोलन का आगमन हुआ । 2018 में महिलाओं ने अभिनेताओं से लेकर कलाकारों, राजनेताओं, विविध अफसरों आदि द्वारा किए गए बुरे हरकतों को पर्दाफाश करने के सशक्त माध्यम के रूप में सोशल मीडिया का उपयोग किया । इसने स्त्रियों के लिए अपने खिलाफ़ हुए अपराधों पर आवाज़ उठाने के लिए एक नयी जगह दी । साइबर क्राइम के खिलाफ़ कानून तो अवश्य है, लेकिन अगर इससे बचना है तो महिलाओं को हमेशा सशक्त एवं जागृत रहने की आवश्यकता है ।

हर शताब्दी किसी चीज़ के लिए पहचानी जाती है । इक्कीसवीं सदी इंटरनेट और वेब का युग माना जाता है । यह ही नहीं इस युग की खासियत यह है कि आज की दुनिया में लोगों को जोड़ने का सशक्त माध्यम है सोशल मीडिया । सोशल मीडिया जिस प्रकार की अभिव्यक्ति का माध्यम बना है उससे लोगों का नुक्सान भी होता है, खासकर महिलाओं का । समाज में जो बर्ताव दिखाई देता है, उसकी छवि सोशल मीडिया में भी देख सकते हैं । सोशल मीडिया अपने स्वरूप में किसी अदृश्य शक्ति की तरह है इसलिए वहाँ स्त्री शारीरिक हिंसा से तो बचकर निकल आती है लेकिन मानसिक या शाब्दिक हिंसा से नहीं बच पाती । वह अपनी मर्जी की तस्वीरें सोशल मीडिया में लगाने में भी कई बार सोचती है । क्योंकि सोशल मीडिया के उसूलों के अनुरूप अपने फोटो की जाँच पड़ताल करनी होती है । सोशल मीडिया के बारे में कवयित्री क्षत्रिय दीपिका की कविता ‘सोशल मीडिया के शिकार’ की पंक्तियाँ हैं –

“चेहरों पर नकाब था जिन के,
उन्हें अपना यार हम समझ बैठे
छलावे की आभारी दुनिया में
अपना सबकुछ गंवा बैठे”[21]

यहाँ कवयित्री ने सोशल मीडिया में महिलाओं पर होने वाले अत्याचार एवं छल-कपट को पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। जिस प्रकार समाज में पुरुष अपने आप को उच्च एवं स्त्री को निचला मानता है, उसी प्रकार की पितृसत्तात्मक सोच सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के अंदर भी होती है। सोशल मीडिया की सहायता से कोई और बनकर छल-कपट से महिलाओं पर कब्जा करने की कोशिश करता है। हमारे देश में साइबर क्राइम के कानून तो अवश्य बनाए गए हैं। लेकिन साइबर क्राइम में कोई कमी नहीं हैं। स्त्रियों पर होने वाले साइबर क्राइमों पर क्षत्रिय दीपिका की पंक्तियाँ हैं –

"अनजाने से मित्रता कर बैठे
कुछ यूं खुद को हम मुटा बैठे,
बताकर हर कहानी अपनी
साइबर क्राइम के शिकार बन बैठे"[22]

फैसबुक, इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया के माध्यम से जिस प्रकार लोग मित्रता स्थापित कर अपने आप किसी के जाल में फँस जाते हैं, उसका पर्दाफाश करने का प्रयास कवयित्री ने यहाँ किया है। सोशल मीडिया ने जिस प्रकार का मंच अभिव्यक्ति के लिए प्रदान किया है , उसका सशक्त उपयोग स्त्रियों को निडर होकर करना है। पितृसत्ता के ढीले बंधनों को तोड़कर स्त्रियों को आगे बढ़ना होगा, ताकि अपने अधिकारों की सुरक्षा खुद कर पाए।

5.7. बलात्कार

"आखिर मर्दों की मानसिकता स्त्री के लिए ऐसी हिंसक क्यों है। क्या इसलिए ही इन दिनों जहाँ-जहाँ सुनने को मिल जाता है – इंडिया इज़ कंड्री ऑफ रेपिस्ट्स (भारत बलात्कारियों का देश है)....आँखों देखी बात है कि यहाँ का पुरुष औरत-औरत में भेद नहीं करता। ...रिश्तों को तार-तार कर डालता है, नहीं तो बेटी से बहू से, बहन से बलात्कारों की खबरें आए दिन सुननी

पड़ती ?"[23] मैत्रेयी पुष्पा का यह प्रश्न बहुत समीचीन लगता है। आजकल भारत बलात्कारियों का देश बनता जा रहा है। "बी.बी.सी.के रिपोर्ट के मुताबिक वार्षिक तौर पर भारत में 10 हज़ार बलात्कार हो रहे हैं, जिससे इंडिया विश्व की बलात्कार राजधानी कहा गया।"[24] शताब्दियों पहले यौन उत्पीड़न को स्त्रियों पर कब्जा करने का एक साधन समझा जाता था। यौन उत्पीड़न को बदला लेने का एक साधन माना गया। इससे एक व्यक्ति को मात्र शारीरिक रूप से चोट नहीं लगता, मानसिक रूप से भी उसे तकलीफ़ होती है।

बलात्कार के शिकार स्त्रियों के अनुकूल 1983 में अदालत द्वारा एक फैसला सुनाया था कि आगे चलकर प्रताड़ित महिला को अपना बयान देने की ज़रूरत नहीं है। अदालत ने यह कहा कि ऐसी स्थिति में एक स्त्री से उसके साथ हुए हादसे के बारे में पूछना, उसके घाव पर नमक छिड़कने के समान है। यौन उत्पीड़न से ग्रस्त स्त्री का सशक्तिकरण तथा उसको अपनी खोई हुई ज़िंदगी को बचाना बहुत चुनौतिपूर्ण होता है। एक बलात्कृत व्यक्ति अपने आप से घृणा करने लगता है। सारी दुनिया से वह डर जाती है।

"क्राइम इन इंडिया रिपोर्ट में रविवार को खुलासा हुआ कि दिल्ली शहर में 2022 में महिलाओं के खिलाफ़ अपराध की 14,158 घटनाएँ दर्ज की गईं;जो लगातार तीसरे साल 19 महानगरीय शहरों में सबसे अधिक है, प्रत्येक 1,00,000 महिलाओं पर लगभग 186.9 अपराध दर्ज किए गए। एन.सी.आर.बी के आंकड़ों के अनुसार इसमें 1204 बलात्कार के मामले शामिल हैं।"[25] कवयित्री ओमलता की 'वह लड़की' कविता पंक्तियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं -

"गर्दन आ गई थी कंधों पर

मुँह से निकलने लगी थी अजीब चीख

गर्दन ने लचपचाना बंद कर दिया था

अब उसका पूरा शरीर धँसा जा रहा था।

रेत में धँसी बैलगाड़ी की तरह।"[26]

यह तीक्ष्ण पंक्तियाँ बलात्कृत लड़की की दयनीय स्थिति की ओर इंगित करती हैं। 'वह लड़की' कविता में कवयित्री ओमलता कहती हैं कि एक बलात्कृत लड़की का गर्दन उसके कंधों तक पहुँच गई है और वह लड़की चीख रही है। पूरा शरीर निश्चल हो गई था। बलात्कार में सहमति के शर्त का उल्लंघन होता है। भारतीय समाज में ऐसे बलप्रयोग से स्त्रियों के अधिकारों पर होनेवाले अत्याचार से बढ़कर इसको स्त्री की पवित्रता, सतीत्व, पातिव्रत्य या कौमार्य का भंग होना माना जाता है। उस औरत की दृष्टि में इज्ज़त का अर्थ ही बदल जाता है। स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों का कारण स्त्री को ही ठहराया जाता है। आभा बोधिसत्व की 'खुद से बातें' कविता पंक्तियाँ हैं –

"मैंने कोई जुर्म नहीं किया

पर फिर भी

मैं एक मुजरिम हूँ

हर अनहोनी का कारण मैं ही हूँ

मैं एक औरत हूँ।

जननी सारे पापों की।"[27]

यहाँ कवयित्री आभा बोधिसत्व ने स्त्रियों में समाज द्वारा थोपे जानेवाले पापों की ज़िम्मेदारी की ओर इशारा किया है। स्त्री समाज के नज़र में बिना जुल्म किए मुजरिम बन जाती है। समाज की ऐसी स्थिति से स्त्री अपनी नज़रों में गिर जाती है। "बलात्कार के बाद वह अपनी नज़रों में खुद को गिरा हुआ महसूस करने लगती है, जबकि बलात्कार की प्रक्रिया के लिए वह कतई

दोषी नहीं होती।"[28] अपने अधिकारों का उल्लंघन करनेवाले समाज को देखकर चुप रहने वाली नहीं है आज की नारी। 16 दिसंबर 2012 को दिल्ली में हुए 'निर्भया केस' एक सामूहिक बलात्कार मामला था। भारत की राजधानी दिल्ली में ऐसी घटना घटी जिसमें एक लड़की की बलात्कार करके हत्या हुई। बाद में चलकर 20 मार्च 2020 को सुबह 5.30 बजे तिहाड़ जेल में इस केस के दोषियों को फाँसी की सज़ा दी गई। इसी घटना को आधार बनाकर ऐसी घटनाओं का प्रतिरोध करते हुए आधुनिक लड़की की आवाज़ बनकर कवयित्री ज्योति चावला ने '2014 की बारिश में भीगती लड़कियाँ' में लिखी हैं -

"दिल्ली की सड़क पर भीगती ये लड़कियाँ
मानो फाड़ आई है इतिहास के सारे बन्नें
अपने पैने नाखूनों से और
अब एक नया इतिहास लिखना चाहती है
जिनमें उनके हिस्से भी आए भरपूर आज़ादी।"[29]

दिसंबर 16, 2012 को घटित दिल्ली की घटना के बाद लड़कियाँ इतिहास को फाड़कर एक नई दुनिया को रचना चाहती हैं, जहाँ उनके हिस्से की भरपूर आज़ादी हो। समाज ने उसे 'ढंग के' कपड़े पहनने, रात को बाहर न निकलने का निर्देश दिया है। कहीं न कहीं यह एक अलिखित नियम सा बन गया है। अनामिका का कथन है –"बलात्कार के बारे में बात करते हुए पितृसत्ता 'आ बैल मुझे मार' का तर्क आजमाती है, कहती है कि लड़कियाँ खुद मुसीबत मोल लेती हैं आकर्षक / भड़काई कपड़े पहनकर या देर रात घर से निकलकर... कुछ लोग यह भी कहते हैं कि कुछ चरित्रहीन औरतें खुद अपने कपड़े फाड़कर सद्पुरुषों को बदनाम किया करती हैं।"[30] समाज की पितृसत्तात्मक सोच ही इस प्रकार है कि स्त्री दूसरों को भड़काने के लिए कपड़ा पहनती है और लड़कियाँ बलात्कार जैसे मुसीबतों को अपने आप मोल लेती है। यह सरासर गलत है। हर

व्यक्ति का अपनी हर बात पर अधिकार है। अपने शरीर पर स्त्रियों का ही अधिकार है। किसी और व्यक्ति द्वारा उसके अधिकारों का कब्जाकरण और स्त्रियों पर होनेवाले आक्रमण खासकर बलात्कार पर कवयित्री कात्यायनी की कविता 'खौफ़नाक शर्मिंदगी' की पंक्तियाँ हैं –

"जिस शहर में साल भर के भीतर
एक भी औरत के गुफ्तांग में
न पत्थर भरे गए हो न
सरिया घुसेड़ा गया हो
एक भी औरत को सामूहिक बलात्कार
के बाद

उस शहर के लोग लग भग
देशद्रोही जैसा ही
समझते हैं अपने आप को "[31]

यहाँ कवयित्री ने व्यंग्यात्मक ढंग से लड़कियों पर होनेवाले अत्याचार को दर्शाने का सफल प्रयास किया है। हमारे शहर ऐसे हो गये कि स्त्रियों पर अत्याचार आम बात बन गई है। अगर नहीं हो रहा है तो वहाँ के लोग अपने आप को देशद्रोही समझ बैठे। कुछ जगहों पर तो बलात्कार को पुरुषसत्ता ने मर्दानगी का प्रतीक बनाया है। बलात्कार एक गंभीर अपराध है। और भी बहुत सारे गंभीर अपराध है, लेकिन बलात्कार को सर्वाधिक घृणास्पद माना जाता है। 2023 के केंद्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के रिपोर्ट के अनुसार 2022 में भारत में महिलाओं पर होनेवाले अत्याचार की संख्या 2,98,988 है। यह इतना भयानक है कि कुछ स्त्रियों को बलात्कार और हत्या के बीच चुनने की छूट दी जाए, तो वे हत्या को ही चुनेगी। किसी व्यक्ति को उसके मंजूरी के

बिना छूना तक सख्त अपराध है । बलात्कार के ज़रिए बलात्कृत व्यक्ति की भावनाएँ एवं अधिकार कुचले दिए जाते हैं। मानवाधिकारों के संरक्षण में कानून और प्रशासन को एक साथ मिलकर काम करना होगा, ताकि कोई भी व्यक्ति किसी और व्यक्ति के ऊपर अत्याचार न कर पाए।

5.8. कामकाजी स्त्रियों की स्थिति

महिलाओं को रोज़गार और काम के मामले में उच्च दर्जा देना तथा प्रोत्साहित करना किसी भी देश के समग्र विकास का महत्वपूर्ण मापदंड है। स्त्रियों से जुड़कर बहुत सारे कारण एवं मुद्दे हैं, जिसने उन्हें काम करने के लिए प्रेरित किया । दिन-प्रतिदिन बढ़ती महंगाई, बच्चों की लागत आदि के कारण कुछ महिलाएँ काम पर हैं । और कुछ महिलाएँ ऐसी हैं जो अपनी इच्छानुसार अपने सपनों को पूरा करने के लिए काम कर रही हैं । लेकिन जो महिलाएँ अपने सपनों के लिए या अपनी जीविका के लिए काम करती हैं उन्हें अपने कार्यस्थल पर विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसका एकमात्र कारण उनका स्त्री होना है। "श्रम का लिंग विभाजन समाजिक विचारों के आधार पर पुरुषों और महिलाओं को दी गई विभिन्न भूमिकाओं, जिम्मेदारियों और कार्यों के आबंडन को संदर्भित करता है कि पुरुषों और महिलाओं को क्या करना चाहिए और क्या करने में सक्षम हैं।....उनके वैयक्तिक इच्छानुसार या क्षमता के अनुसार नहीं।"[32] पितृसत्तात्मक समाज की दृष्टि में महिलाएँ केवल विशिष्ट कार्य के लिए ही उपयुक्त हैं। इसलिए ही काम करनेवाले कार्यस्थल पर भेदभाव होता है। अगर अच्छी योग्यतावाली महिलाएँ हैं, तो भी उसी तरह के पुरुष उम्मीदवार को वरीयता दी जाती है। 'कठिन काम' करने के लिए स्त्रियाँ समर्थ नहीं हैं, ऐसे कई प्रकार की सोच कामकाजी क्षेत्रों में व्याप्त है।

लिंग के आधार पर वेतन में अंतर कामकाजी महिलाओं के लिए एक जटिल समस्या है। "सर्वेक्षण के अनुसार भारत में पुरुषों और महिलाओं के बीच के वेतन में 25.4 प्रतिशत का अंतर

है ।"[33] इसके प्रमुख कारण महिला कर्मचारियों की तुलना में पुरुष कर्मचारियों को प्राथमिकता देना, पदोन्नति मात्र पुरुषों को देना, सामाजिक उसूलों को रखकर करियर में रुकावट पैदा करना आदि हैं।

कार्यस्थल में होनेवाले यौन उत्पीड़न दूसरी प्रमुख समस्या है । इसके अंतर्गत शारीरिक संपर्क और यौन आचरण से जुड़ी बातें करना, धमकाना, यौन संबंधी भाषा का प्रयोग करना, अश्लीलता का प्रदर्शन करना आदि आते हैं । कार्यस्थल में महिलाओं के खिलाफ़ होनेवाली उत्पीड़न पर रोकथाम लगाने के लिए अधिनियम कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम 2013 है । इसके अनुसार किसी भी वाणिज्य या सार्वजनिक संगठन के एक 10 सदस्यों वाला आंतरिक शिकायत आयोग का होना अनिवार्य है, जो कार्यस्थल पर होनेवाले उत्पीड़नों पर निषेध, निवारण तथा रोकथाम लगाए । सुरक्षा को सुनिश्चित करना तथा उसका समाधान निकालना कानूनी ढाँचे के भीतर ही हो जाए, ताकि महिलाएँ वैध नागरिक होने के नाते मिलनेवाले सभी अधिकारों का उपयोग करने में सक्षम हो पाए।

वर्तमान समय में भारत हो या बाहर हर कहीं कामकाजी महिलाएँ दिखाई देती हैं । महिलाओं को मिलनेवाली शिक्षा, जागरूकता, प्रतियोगिताएँ तथा अवसरों में होनेवाले दिन प्रतिदिन की वृद्धि इसके प्रमुख कारण हैं । लेकिन इन सभी कारणों से पितृसत्ता द्वारा उनके प्रति अन्याय भी बढ़ रहे हैं । अरविंद जैन के अनुसार "जैसे जैसे कामकाजी महिलाओं की संख्या बढेगी उसी दर से यह समस्या थोड़ी कम भी होगी । लेकिन औरतों में जितना अन्याय और उत्पीड़न के प्रति विरोध बढेगा, उनके प्रति पितृसत्ता द्वारा दमन भी बढ़ेगा ।"[34] स्त्री हर जगह पहुँच गई है, चाहे वह सेना हो या हवाई जहाज़ । लेकिन पितृसत्तात्मक समाज के नकारात्मक सोच से उसे अवश्य गुज़रना पड़ता है । 'नानी की राजुमारी' कविता में कवयित्री नमितासचान सुंदर कहती हैं–

“नानी की राजकुमारी
आ पहुँची है

दफ्तरों में कारखानों में
सेना में, हवाई जहाज़ की उड़ानो में

सबके साथ सबके बीच
पर
अपनी अस्मिता के जज़्बे को
काँधे पर लादे
स्व के सवाल पर उठे
नकारात्मक अक्रामक
दृष्टिकोणों से जूझती
और कहीं
अपने ही बनाए चक्रव्यूह में फँसी”[35]

कामकाजी महिला को पितृसत्ता के नकारात्मक अक्रामक दृष्टि से अवश्य जूझना पड़ता है और वह इन कारणों से अपने आप के बनाए गए चक्रव्यूह में फँसने की संभावना भी है। स्त्री अपने अंदर एक अपराधी का मनोभाव झेलने लगती है।

स्त्रियों पर घर को संभालने का उत्तरदायित्व थोपा जाता है, चाहे वह कामकाजी स्त्री हो या मात्र, गृहस्थी संभालनेवाली। पितृसत्ता ने जो सोच कामकाजी स्त्रियों के अंदर डाली है, जिससे उसको एक घुटन सी महसूस होती है। पिता बच्चों को छोड़कर घर से बाहर जा सकते हैं, लेकिन पत्नी ऐसा करने के लिए सोच भी नहीं सकती। ‘बेबसी स्त्री है कुछ’ कविता में ज्योति चावला की पंक्तियाँ हैं -

"मैं समझाने की करती हूँ एक नाकाम कोशिश भी
उस चार साल की मासूम को कि
जाना कितना ज़रूरी है मेरा ऑफिस

उसकी आँखों की मासूमियत, उसकी बेबसी
बेचैन करने लगती है मुझे और
मैं अगली सुबह कुछ और बेहतर
पकाने की जुगत में लग जाती हूँ।"[36]

कामकाजी महिला द्वारा काम पर जाते वक्त होनेवाले आत्मसंघर्ष को दर्शाने का प्रयास कवयित्री ने किया है। स्त्री के लिए काम करनेवाला ऑफिस ज़रूरी है और मात्र स्त्री पर थोपे गए बच्चों के देखभाल का उत्तरदायित्व भी उसके मन को परेशान कर देती है। हर दिन यह महिला दूसरों के लिए अपने आपको और बेहतर बनाने की कोशिश में लगी रहती है। असल में स्त्री अपनी जगह को बनाए रखने के लिए ही अंदर और बाहर काम करने के लिए मजबूर है। कवयित्री ज्योति चावला की पंक्तियाँ हैं-

"अपनी दुनिया को संवार ये जाने की
ये औरतें जो अभी-अभी निकली है घर से
घर और बाहर के बीच की दूरी को पाटने के लिए
दिल्ली मेट्रो के लेड़ीज़कूपे में सुस्ता रही हू पल भर"[37]

अपने परिवार रूपी छोटी सी दुनिया को बनाए रखने के लिए कामकाजी नारी घर और बाहर के बीच की दूरी को पाटने में लगी है जो इस पितृसत्तात्मक समाज के रहते नामुमकिन सा लगता है। दोहरे काम का बोझ ढोती स्त्री की स्थिति के कारण बताते हुए नासिरा शर्मा कहती हैं "कामकाजी महिलाओं के साथ असामनता का व्यवहार और यौन शोषण का एक बड़ा कारण,

समाज की वह मानसिकता भी है, जिसे वह पैसा और ताकत प्राप्त करने के बाद विकसित कर लेता है.....इस प्रकार की मानसिकता ही उसे औरत का इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित करता है ।''[38] यहाँ नासिरा शर्मा कहना चाहती हैं कि कामकाजी स्त्रियों के खिलाफ़ होनेवाले उत्पीड़न समाज की पुरुषवर्चस्वी मानसिकता है जो पैसों के हाथ आने से विकसित होती है। इस मानसिकता का उपयोग मात्र पैसों के लिए करने का है। इस मानसिकता में तभी बदलाव आएगा जब पुरुषसत्ता किसी भी स्त्री को चाहे वह कामकाजी हो या गृहिणी, को आदर देना शुरू कर दे। स्त्रियों द्वारा की जानेवाली मज़दूरी को कभी-कभार नज़रंदाज़ भी किया जाता है। कम वेतन देना, काम को कम करके दिखाना जैसी रीतियाँ समाज में चलती आ रही हैं। इसी संदर्भ को लेकर ज्योति चावला की पंक्तियाँ हैं -

> ''वह स्त्री काम कर रही थी
> और सड़क पर रखे बोर्ड पर लिखा था
> सावधान मेन एट वर्क, यानी आदमी काम पर है।''[39]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री कहना चाहती हैं कि स्त्री के काम करने के बावजूद उसके काम को अनदेखा किया जाता है। सड़क पर होनेवाले सावधान बोर्ड पर भी कवयित्री व्यंग्य करती हैं। 'सावधान मेन एट वर्क' यानी आदमी काम पर है जैसी पुरुष सत्तात्मक भाषा स्त्री के काम को कोई मूल्य नहीं देती। उसके स्थान पर 'लोग काम पर है' जैसे प्रयोग रखना अधिक उचित होगा। ताकि स्त्री को भी लगे कि उसके काम को भी समाज में मूल्य दिया जा रहा है। महिलाओं और पुरुषों को समान काम के लिए समान वेतन देना समान पारिश्रमिक अधिनियम के तहत प्रावधान दिया गया है। इसका उल्लंघन दंडनीय अपराध है।

5.9. आर्थिक स्वावलंबन

रमणिका गुप्ता के अनुसार “स्वावलंबन स्त्री में स्वाभिमान पैदा करता है और स्वाभिमान उन्हें चेतना से संपन्न करता है और यहीं चेतना उनकी सामर्थ्य का निर्माण करती है और उसे संगठित होने के लिए प्रेरित भी करती है।”[40] आर्थिक स्वावलंबन एक हद तक स्त्रियों को उनकी समस्याओं से मुक्त करा देती हैं। इससे पुरुष का स्त्री पर प्रभुत्व कम होने लगता है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर स्त्री के पैसे के उपयोग पर उसके अधिकार सुरक्षित नहीं है। लेकिन स्त्री इससे डरनेवाली नहीं हैं। वह परंपरा को तोड़नेवाली है। कवयित्री सुरभि 'हे नारी' में कहती हैं –

“पावों में परंपरा की बेडियाँ बाँधे
आखिर कब तक इस बोझ को सहती नारी
अंततः माहौल को अपने अनुरूप ढालकर
लक्ष्मी से काली बनने का सफर तय
करने चल पड़ी है नारी।”[41]

आज की नारी परंपरा की बेड़ियों को तोड़कर तथाकथित लक्ष्मी से 'काली' में रूपांतरित होने के सफर में है। वह समाज के बोझ को सहने के लिए तैयार नहीं है वह अपना रास्ता खुद बना रही है। नासिरा शर्मा कहती हैं -“आर्थिक स्वतंत्रता वास्तव में किसी भी इंसान के विश्वास की कुंजी होती है। वह अपना फैसला खुद कर सकता है।”[42] पितृसत्ता ने स्त्रियों को इतना ज़्यादा टाइपकास्ट करके रखा है कि वह दूसरों के लिए जीकर अपने अधिकारों से अनजान होकर मर जाती है। अगर वह आत्मनिर्भर होकर कुछ करती भी है फिर भी परिवार और बच्चों की ज़िम्मेदारी उस पर थोपा जाता है। पुरुष अगर कमाने जाते हैं, तो समाज के हिसाब से वह घर के कामों से मुक्त है। टाइपकास्ट किए गए स्त्री की स्थिति का पर्दाफाश कवयित्री सुरभि ने इस प्रकार किया है। 'औरत' कविता की पंक्तियाँ हैं –

"क्यू कर रखा है हमने औरत को इतना टाइपकास्ट
मत लगा के देखो टकटकी अब
ना ही रखो कोई आस
कर दो उन्हें हर गिल्ट से मुक्त
खुलकर साँस ले लेने दो
बस बहुत हुआ अब
जी भर कर खुद के लिए जी
लेने दो ।"[43]

अर्थ जगत में अपनी जगह बनाने के लिए अगर स्त्री ने कोशिश की है तो पुरुषसत्ता द्वारा उसे धक्का देकर गिराने का प्रयास निरंतर हुआ है। आर्थिक रूप से स्वावलंबित स्त्री को गिल्ट के गड्ढे में धकेल दिया जाता है । उस पर होनेवाले टाइपकास्ट को तोड़ने का प्रयास कवयित्री ने अपनी पंक्तियों के माध्यम से किया है। आधुनिक नारी किसी के लिए अपने पंखों को काटने के लिए तैयार नहीं हैं। वह खुद की दुनिया बनाना चाहती है और आत्मनिर्भर बनना चाहती है। 'अपनी उड़ान' के लिए तैयार होती नारी किसी भी पितृसत्ता या परंपरा के खातिर हार मानने के लिए तैयार नहीं। कवयित्री भावना आत्मनिर्भर स्त्रियों के प्रतिनिधि बनकर अपनी पंक्तियों के माध्यम से इसकी उद्घोषणा करती हैं । कवयित्री भावना की 'उड़ान' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं –

"मैं खुद नहीं काट सकती इन्हें
जैसे मेरी नानी -दादी ने काटा था
संस्कार और मर्यादा के नाम पर

आज मेरी बारी है
मैं नहीं दूँगी इन्हें

अपने सपने अपने हौसले
छुपा के रख लूँगी
मन के किसी कोने में
जिसे समय आने पर
निकाल भर सकूँगी
अपनी उड़ान।"[44]

यहाँ आधुनिक नारी ने यह उद्घोषणा दी है कि जिस प्रकार अपने पूर्वजों ने अपने सपनों को दबाकर रखा था, उसी प्रकार आधुनिक नारी हरगिज़ नहीं करेगी। वह अपने हौसले एवं सपनों को व्यर्थ नहीं बनने देगी। समय के आने पर उसकी उडान अवश्य हो जाएगी। आर्थिक रूप से स्वावलंबित एवं आत्मनिर्भर होकर जीना हर एक व्यक्ति का अधिकार है और उसपर कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं खड़ा कर सकता।

5. 10. घरेलू श्रम एवं महिला अधिकार

"घर जटिल सामाजिक और सांस्कृतिक नियमों से बँधा होता है, जिन्हें परंपरा और धर्म दोनों की स्वीकृति प्राप्त है। यह नियम पुरुष और औरतों की भूमिकाओं को परिभाषित करते हैं और वैधता देते हैं, और यदि कोई इन निर्धारित व्यवहारों को बदलने की कोशिश करे, तो उसे सज़ा भी.... ।"[45] घरेलू दुर्व्यवहार एक विनाशकारी कार्य है जो गृहिणी या घर के स्त्रियों को कठिनाई देती है। यहाँ दुर्व्यवहार शब्द मात्र हिंसा को ही नहीं स्त्रियों को अपने अधिकारों से वंचित रखने की ओर भी संकेत देता है। लड़की की शिक्षा को बंद करना, उसको स्कूल न जाने देना, लड़की का अल्पपोषण और लड़कों का बृहत्पोषण, स्त्रियों के साथ मार-पीट, गाली-गलौज, सामाजिक दबाव के लिए बाध्य बनाना आदि घरेलू दुर्व्यवहार के अंतर्गत आते हैं।

"अधिकांश स्त्रियों को इस आज़ादी का पता ही नहीं, देश की अधिकांश स्त्रियाँ यदि घरेलू गुलाम हैं तो सत्ता पुरुषों को इन थोड़ी सी स्त्रियों की आज़ादी से भला क्या नुकसान हो सकता है।"[46] पितृसत्तात्मक समाज के बीच जाने वाली अधिकांश स्त्रियाँ घरेलू गुलाम बनकर जी रही हैं। यह समाज घरेलू श्रम में योगदान देने वाली स्त्रियों को सहज रूप से स्वीकार नहीं करता। उनके प्रति नौकर या दास की तरह अन्याय और उपेक्षा का भाव दिखाया जाता है। घर के सभी काम औरत को ही करने पड़ते हैं। पुरुष सत्तात्मक परिवार के ढाँचे के अंतर्गत स्त्री को ही घर में काम करना होता है। यह एक अलिखित नियम है। उसकी अनुपस्थिति में घर के सभी काम वहीं का वहीं रह जाएँगे। इससे संबंधित कवयित्री कविता विकास की 'औरत' कविता की पंक्तियाँ हैं –

"आज बच्चे बिना टिफिन से
विद्यालय गए हैं
पुरुष उधड़ी हुई कमीज़ में
दफ़्तर गए हैं।

रसोई बिखरी पड़ी है
किसी आपातकालीन स्थिति से
उपजी कोई दुर्व्यवस्था नहीं है
घर की औरत बीमार है।"[47]

यहाँ कवयित्री ने पुरुषसत्तात्मक ढाँचे वाले एक परिवार के स्त्री एवं उस घर की स्थिति को दर्शाया है। कवयित्री कहती हैं कि जिस घर में औरत बीमार है, उस घर में और कोई अपना कार्य नहीं करेगा। औरत के अभाव में घर का सारा काम वहीं का वहीं रह गए। कवयित्री व्यंग्य करती

हैं कि घर की यह दुर्व्यवस्था कोई आपतकालीन स्थिति से उपजी हुई नहीं है, मात्र उस घर की औरत के बीमार होने से है। लेकिन कुछ स्त्रियों की स्थिति ऐसी है कि वह पितृसत्तात्मक ढांचे के अंदर डूब गयी है। "जिस प्रकार गुलाम को गुलामी में ही आनंद आने लगता है, उसी प्रकार ऐसी स्त्रियाँ अपनी दासता को ही सुख व सुरक्षा मानती हैं।"[48] यह बहुत खतरनाक स्थिति है कि एक व्यक्ति अपनी गुलामी का एहसास किए बिना जी रहा है। इस स्थिति को दर्शाते हुए कवयित्री अंबिका दत्त 'दमित आकांक्षाओं का गीत' में लिखती हैं-

"काम में इतना आनासक्त
और सुंदर क्या करती कोई रहा होगी
गोल चेहरे और पतले होठों वाली
दुबली-इकहरी-सफ़ेद ब्लाउज पहने
रंगीन साड़ी से साथ
कि गरकर निर्मल हो चुके जिसके
हाथ कपड़े धोते हुए।"[49]

यहाँ कवयित्री ने दिन-रात काम करके अपना 'फर्ज़' निभाती स्त्री की स्थिति का पर्दाफाश किया है। कवयित्री काम में व्यस्त होकर पूरी ज़िंदगी कपड़े धोते एवं मात्र घरेलू कामकाज में व्यस्त रहने वाली स्त्री के मनोभाव को दर्शाने का प्रयास करती हैं। ऐसी स्त्रियों का मन पितृसत्तात्मक ढाँचे में इस प्रकार डूब गया है कि उन्हें गुलामी और असल ज़िंदगी में फर्क नज़र नहीं आती। इस परिप्रेक्ष्य में घरेलू कामगरी करनेवाली औरतों को उनके अधिकारों की जानकारी देना तथा जागरूकता पैदा करना अनिवार्य है। साथ ही साथ आज के युग में जहाँ स्त्री – पुरुष दोनों ही देश के विकास में भागीदार है वहाँ घरेलू श्रम करने वाली स्त्रियों को अपने अधिकारों से वंचित रखना सरासर अन्याय है।

घर की बहू या बेटी का काम करना पितृसत्तात्मक सोच रखनेवाले लोगों के बीच हेय माना जाता था। कुछ महिलाएँ ऐसी भी हैं जो पितृसत्तात्मक सोच में लीन होकर पत्नी से मात्र घरनी में परिवर्तित होना चाहती हैं। इस प्रकार घर में रहनेवाली होने के कारण समाज उसे कोई मूल्य नहीं देता। बच्चे और परिवार को सँभालनेवाली अपने स्वास्थ्य को नज़रदाज़ कर देती है। हमेशा विडंबनाएँ उसके साथ होती रहती हैं। गृहस्थी को सींचती हुई अपने सुखद जीवन जीने के अधिकारों से वंचित रही। पुरुष शिकायत करते रहे। ज्योति चावला की पंक्तियाँ हैं-

"कि उनकी गृहस्थी को सींचने में ही बीत गई उनकी उम्र
और नाना की उम्र सिर्फ शिकायतों में
इन बुदबुदाहटों में लड़ती थी वे अपने पिता से भी
जिन्होंने कभी सुध ही न ली उनकी उन्हें ब्याहने के बाद"[50]

यहाँ कवयित्री कहना चाहती हैं कि शादी के बाद गृहस्थी को संभालनेवाले स्त्री और पुरुष का जीवन जीता है। साथ ही दायित्वों और शिकायतें भरी दुनिया ने नाना और नानी के जीवन जीने के अच्छे समय को बर्बाद कर दिया। किसी के साथ भी संतुष्टि से वे जी नहीं पाए।

हम अपने साथ जीनेवाली सहधर्मिणी की हैसियत का नाप-तोल करने वाले समाज में जी रहे हैं। शादी के बाद पत्नी जब घरनी बन जाती है तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए ममता तिवारी 'स्त्री की डायरी :दिवस 1' में लिखती हैं-

"तुम्हें इस खरीद-फ़रोख्त से
सिर्फ़ रोटी मिलती है
पर मुझे तो बोनस में घर भी
हासिल होता है।"[51]

यहाँ कवयित्री शादी को एक खरीद-फरोख्त शादी एवं विवाह संस्था पर व्यंग्य करती हैं। एक सेक्स वर्कर को ऐसे खरीद-फरोख्त में रोटी मिलती है। एक गृहिणी को सेक्स वर्कर से हटकर

घर बोनस मिलती है। लेकिन एक यौनकर्मचारी की नज़र से देखते हुए कवयित्री कहती हैं कि गृहिणी को यौनकर्मी से हटकर घर बोनस में मिलता है। यहाँ व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से कवयित्री ने गृहिणी की स्थिति का खुलासा किया है।

5.11. निष्कर्ष

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन है। स्त्रियों तथा लड़कियों के खिलाफ़ होनेवाली हिंसा ही सबसे प्रचलित मानवाधिकार उल्लंघनों में से एक है। औरतों को परिवार, समुदाय और देश के सम्मान एवं मर्यादा के साथ जोड़कर देखा जाता है। महिलाओं के खिलाफ़ शारीरिक एवं मानसिक हिंसाएँ होती हैं। भारत में प्रचलित हानिकारक प्रथाएँ, यौन उत्पीड़न जैसे कि बलात्कार तथा कन्या को जन्म से पहले मार दिया जाना, तेजाब हमला आदि स्त्रियों के खिलाफ़ होनेवाली विभिन्न प्रकार की हिंसाएँ हैं। इस स्थिति को समकालीन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में सशक्त ढंग से अंकित किया है। स्त्रियों पर हिंसा करना उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन है।

ऑनर किलिंग अर्थात 'असम्मान हत्या' या 'इज़्ज़त बचाने हेतु हत्या' जैसी स्थिति को 'खौफ़नाक शर्मिंदगी' नामक कविता में कात्यायनी ने प्रस्तुत किया है। कन्या भ्रूण हत्या को अलका सिंहा की कविता 'एक लड़की की शिनाख्त', कुसुम लता अविचल की कविता 'कन्या भ्रूण हत्या', मृदुला जोशी की कविता 'माँ मुझे आने दो' आदि में प्रकृति की आकृति को विकृत बनानेवाले विकलांग मानसिकता को पर्दाफाश करने का प्रयास हुआ है। घरेलू हिंसा को सविता सिंह की कविताएँ 'मैं किसकी औरत हूँ', 'रोज़मरी एक अच्छी लड़की है', कवयित्री ओमलता की 'नीले रंगों वाली देह', रेखा व्यास की कविता 'मेरी तलाश', वंदना मिश्रा की कविता 'अधिकार', रंजना श्रीवास्तव की कविता 'जब मैं स्त्री हूँ' आदि कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है। घरेलू हिंसा के कारण जिस तरह एक स्त्री 'स्टोक होम सिंड्रोम' का शिकार बनती है, उसको

पर्दाफाश करने का प्रयास कविता में हुआ है । अपनी अग्रता को स्थापित करने के लिए पुरुषसत्तात्मक सोच द्वारा प्रशिक्षित पुरुष स्त्रियों पर हिंसा करते हैं। बलात्कार, तेजाब हमला जैसी हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ भी इसी मानसिकता की देन हैं। बलात्कार की शिकार स्त्रियों की स्थिति को कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में दर्शाया है। यौन उत्पीड़न स्त्रियों पर कब्जा करने का साधन बन गया है। बलात्कार के ज़रिए बलात्कृत व्यक्ति की भावनाएँ एवं अधिकार कुचले दिये जाते हैं। बलात्कृत औरत की स्थिति को दर्शानेवाली कविताएँ हैं - ओमलता की 'वह लड़की', ज्योति चावला की कविता '2014 की बारिश में भीगती लड़कियाँ', कात्यायनी की कविता 'खौफ़नाक शर्मिंदगी' आदि।

भारत में आजकल तेजाब हमले के शिकार स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। किसी व्यक्ति पर हमला करना उसके मानवाधिकार का उल्लंघन है। तेजाब की अनियमित बिक्री इस अपराध का एक प्रमुख कारण है। तेजाब हमले की समस्या को आधार बनाकर लिखी गई कविताओं में कात्यायनी की कविता 'खौफ़नाक शर्मिंदगी' उल्लेखनीय है। आज का ज़माना सोशल मीडिया का है। सोशल मीडिया के साथ ही ऑनलाइन प्रेरित हिंसा का भी आगमन हुआ। साइबर दुनिया में सहानुभूति धोखाधड़ी जैसे विभिन्न प्रकार की धोखाधड़ियों के माध्यम से नवमानव के आँखों में धूल झोंका जाता है। कवयित्री क्षत्रिय दीपिका की कविता 'सोशल मीडिया के शिकार' में स्त्रियों द्वारा छल-कपट में फँसे जाने की स्थिति को दर्शाती है। किसी का छल-कपट करके उनको शारीरिक या मानसिक रूप से हानि पहुँचाना उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन है।

महिलाओं को अपने कार्यक्षेत्र से जुड़कर विभिन्न समस्याओं से गुज़रना पड़ता है। स्त्रियों का काम पर जाना तथाकथित सामाजिक न्याय के खिलाफ़ माना जाता है। अपने कार्यक्षेत्र में स्त्रियों के साथ होने वाले मार-पीट, गाली गलौज आदि स्त्री की ज़िंदगी को संत्रास से भर देते हैं।

लिंग के आधार पर वेतन में अंतर, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता का कब्जाकरण उसपर मानसिक हिंसा करना है । ज्योति चावला की कविता 'मेन एट वर्क यानी आदमी काम पर है', जैसी कविताएँ स्त्री को भी सामाजिक प्राणी होने के नाते आगे आने तथा समान रूप से काम करने एवं स्वीकृति दिलवाने के अधिकार को अभिव्यक्त करती है । कवयित्री नमिता सचान सुंदर की कविता 'नानी की राजकुमारी', ज्योति चावला की कविता 'बेबस स्त्री है कुछ' आदि इस संदर्भ में उल्लेखनीय कविताएँ हैं । संक्षेप में कह सकते हैं कि समकालीन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से महिलाओं के विरुद्ध होनेवाली शारीरिक एवं मानसिक हिंसा को सशक्त ढंग से दर्शाने का प्रयास किया है । स्त्रियों के खिलाफ़ होनेवाले अत्याचार तथा मानवाधिकार उल्लंघनों को सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति मिली है ।

संदर्भ-सूची

1. "Gender refers to the socio-cultural definition of man and woman, the way societies distinguish men and women and assign them social roles." - Kamala Bhasin, Understanding Gender, p.1

2. "If he is a man, he will certainly beat." - Prem Choudary, Gender, power and Identity, p.43.

3. "Violence against women and girls is one of the world's most prevalent human rights violations, taking place every day, many times over, in every corner of the globe. It has serious short and long - term physical, economic and psychological consequences on women and girls, preventing their full and equal participation in society." -www.unwomen.org/en/what wedo/ending violence -against women, 27 June 2024.

4. https://labour.gov.in/womenlabour/about-womenlabour.

5. साधना आर्य, लता सिंह, भारत में महिला (सं), आंदोलन विमर्श और चुनौतियाँ पृ.सं.330.

6. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, पृ.सं.101.

7. वही, पृ.सं.12.

8. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.292.

9. अनामिका, स्त्री विमर्श का लोक पक्ष, पृ.सं.80.

10. अलका सिंहा, तेरी रोशनाई होना चाहती हूँ, पृ.सं.49.

11. कुसुम लता अविचल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, पृ.सं.83.

12. प्रमीला के. पी, कविता का स्त्री पक्ष, पृ.सं.102.

13. कुसुम लता अविचल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, पृ.सं.83.

14. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ.सं.94.

15. सविता सिंह, अपना जैसा जीवन, पृ.सं.40.

16. वही, पृ.सं.69.

17. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए दरवाज़े से, पृ.सं.16.

18. ओमलता, नीले रंगों वाली देह, पृ.सं.73.

19. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.292.

20. Cyber security awareness for citizens, Vol.1.

21. साइबर क्राइम के शिकार, क्षत्रिय दीपिका, अमर उजाला, पृ.सं.1. www. amarujala. com

22. वहीं.पृसं.1.

23. मैत्रेयी पुष्पा, आवाज़ , पृ.सं.30.

24. BBC News, 13 December 2022.

25. The Hindu, 10 December,2023.

26. ओमलता, नीले रंगों वाली देह, पृ.सं.58.

27. आभा बोधिसत्व, सीता नहीं मैं, पृ.सं.51.

28. विनय विश्वास, आज की कविता, पृ.सं.43.

29. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए दरवाज़े से, पृ.सं.38.

30. अनामिका, स्त्री वीमर्श का लोकपक्ष, पृ.सं.80.

31. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ.सं.292.

32. "Gender division of labour or sexual division of labour, referes to the allocations of different roles, responsibilities and tasks to women and men based on societal ideas of what men and women should do and are capable of doing." – Kamala Bhasin, Understanding Gender, p.32.

33. Times of India, 8 April 2022.

34. अरविंद जैन, औरत होने की सज़ा, पृ.सं.53,54.

35. प्रेरणा -अंशु, अंक 2, अप्रैल 2024, पृ.सं.24.

36. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए दरवाज़े से, पृ.सं.48.

37. वहीं, पृ.सं.7.

38. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ.सं.112.

39. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए दरवाज़े से, पृ.सं.34.

40. विनय विश्वास, आज की कविता, पृ.सं.18.

41. सुरभि, हे नारी, पृ.सं.88.

42. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ.सं.164.

43. सुरभि, तुम प्रेम हो, पृ.सं.100.

44. नया ज्ञानोदय, अक्तूबर, 2017, अंक 176, पृ.सं.117.

45. साधना आर्य, लता सिंह (सं) ,भारत में महिला आंदोलन, विमर्श और चुनौतियाँ पृ.सं.50.

46. वसुधा (सं),स्त्री मुक्ति का सपना, पृ.सं.112.

47. हिमप्रस्थ, अंक 10, जनवरी 2024, पृ.सं.29.

48. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, पृ.सं.33.

49. अंबिका दत्त, दमित आकांक्षाओं का गीत, पृ.सं.72.

50. ज्योति चावला, जैसे कोई उदास लौट आए इस दरवाज़े से, पृ.12.

51. ममता तिवारी, और मीरा नाचती रही, पृ.सं.45.

छठा अध्याय

स्त्री अस्मिता एवं मानवाधिकार

6.1. विषय प्रवेश

किसी व्यक्ति की पहचान के समान ही किसी समुदाय या समाज की भी पहचान या अस्मिता होती है। आनंद पांडेय के अनुसार "अस्मिता पद का प्रयोग पहचान का वाचक है।"[1] बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में साहित्य में अस्मिता की चर्चा शुरू होती है। यह चर्चा स्त्री कविता में भी सक्रिय हुई। इसमें परंपरागत सहानुभूति के सिद्धांत के बजाय आत्मानुभूति पर बल दिया जाता है। इस पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया कि अस्मिता की सच्ची अभिव्यक्ति अस्मितागत इकाई ही कर सकती है।

स्त्री अस्मिता अपनी पहचान खोने के तख्त पर पहुँच गई थी। पितृसत्तात्मक समाज में बेटी, पत्नी, बहु के अलावा स्त्री की कोई अलग पहचान नहीं थी। हर एक क्षेत्र में चाहे वह मीड़िया, राजनीति, गृहस्थी हो उसको अपनी अस्मिता बनाए रखने के लिए लड़नी पड़ती है। दलित, आदिवासी, स्त्री, क्वीर आदि सारे के सारे हाशिएकृत वर्गों की स्थिति दयनीय हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों ने कविताओं के माध्यम से दलित औरत, आदिवासी औरत, क्वीर औरत, वृद्धा, कलाकार स्त्रियाँ, गृहिणी यौनकर्मी स्त्री आदि सभी की अस्मिता की सही पहचान के लिए आवाज़ उठाई है।

6.2. स्त्री : समाज, अस्मिता एवं अधिकार

अस्मिता से तात्पर्य स्वयं की पहचान है। अगर ज़ोरदार ढंग से अस्मिता की बात चल रही है, तो इसका मतलब यह है कि वह समुदाय हाशिए पर है। यह संघर्ष स्त्रियों के लिए उतना ही पुराना है जितना कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था। अस्मिता का संघर्ष उन पितृसत्तात्मक बंधनों से मुक्ति की लड़ाई हैं। डॉ.अर्चना कुमारी कहती हैं –"भारतीय समाज में स्त्री को सहधर्मिणी, अर्धांगिनी आदि कहा गया है, अर्थात् मनुष्य की सफलता में आधा हिस्सा उनका भी है। लेकिन

पुरुषवादी मानसिकता ने उसका पहचान ही मिटाने में अपना गर्व समझा ।”[2] मनुष्य की सफलता का आधा हिस्सा होने के बावजूद स्त्री को अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए लड़ने की आवश्यकता पड़ रही है । वह अपने अधिकारों से वंचित होकर अपनी अस्मिता को गिरवी रखकर जीने के लिए मजबूर हो रही है । “उसकी मुख्य पहचान पुरुष की वंश-परंपरा को जारी रखनेवाली मशीन और पुरुष के कार्य में सहायक एवं सके मनोरंजन व भोग का सामान बननेवाली होकर रह गई ।”[3] भूमिकाओं को निभाती स्त्री अंत में वह पहचान भी नहीं कर पाती कि वह असल में कौन है । अपने परिवार की विभिन्न भूमिकाओं को निभाते –निभाते वह भूल जाती है कि वह कौन है? कवयित्री ओमलता की कविता ‘बेटी समझदार हो गई है’ की पंक्तियाँ हैं –

“वह चहकती हुई बेटी
संकुचाती हुई बहू में बदल गई ।
बहू, पत्नी, भाभी, चाची और
माँ में बदलते – बदलते
वह घर के सामान में बदल गई
पता ही नहीं चली ।”[4]

अपने घर में चहकती हुई सुकून से जीनेवाली बेटी को दूरों के घर जाकर अपनी अस्मिता को खोकर विभिन्न भूमिकाएँ जैसे – पत्नी, बहू, भाभी, चाची आदि को निभानी पड़ती हैं । वह अपने अधिकारों से वंचित होकर जी रही है । वह रिश्तों को अपने खुलकर जीने वाली ज़िंदगी बर्बाद करने देती है । वह बहु, पत्नी, भाभी, चाची, माँ आदि भूमिकाओं में बदलते – बदलते अपनी अस्मिता एवं अधिकारों को भूलकर घर के सामान के रूप में बदल गई । स्त्री अपने आप को पाने का समय ही नष्ट कर देती है । विधु कीर्ति मैत्रेयी भनोत की कविता ‘मेरे अंदर की लड़ाई’ की पंक्तियाँ है –

"न रात रात ही सी है

न सुबह है न शाम है

क्या ज़िंदगी ही है ये

या कुछ और इसका नाम है।"[5]

कवयित्री ने यहाँ दिन-रात, दूसरों के लिए मेहनत करनेवाली स्त्री जिस प्रकार जीना भूल जाती है, उसकी ओर संकेत करने का प्रयास किया है। ऐसी ज़िन्दगी जीनेवाली स्त्री की ज़िंदगी को असली ज़िन्दगी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह अपने आप को नष्ट कर देती है। समाज एवं परिवार के लिए तथाकथित संस्कारित नारी बनने की कोशिश पितृसत्तात्मक सोच के कारण स्त्रियाँ करती हैं और समाज उनसे करवाती हैं। आभा भारती की 'सांसारिक नारी' कविता की पंक्तियाँ हैं –

"सांसारिक और सांस्कारित बनने की

कोशिश में नारी

रो-रो कर भी हँसती

हँस-हँस कर भी रोती

वह रोती ही रहती

या फिर हँसती ही रहती

तो कम से कम

सच्ची तो बनी रहती

भोगे हुए यथार्थों की दुनिया में"[6]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री कहती हैं कि तथाकथित संस्कारी बनने की कोशिश में नारी अपनी भावनाओं को प्रकट नहीं करती। वह अपने अंतर्मन से झूठ बोलती रहती है कि

वह ठीक है। कवयित्री सलाह देती हैं कि भोगे हुए यथार्थों की दुनिया में कम से कम नारी अपने आप से झूठ न बोले ताकि वह खुलकर ज़िंदगी जिए।

स्त्रियों की अस्मिता एवं अधिकार को प्रश्नचिह्न पर रखनेवाली एक रीति है कुलनाम बदलना। जन्म देने के बाद पितृसत्तात्मक व्यवस्था से बेटा हो या बेटी के नाम के पीछे पिता का नाम रखा जाता है। शादी के बाद मात्र बेटी के नाम के पीछे पति का नाम डाला जाता है। कुलनाम की समस्या को दर्शाते हुए कवयित्री अनुराधा सिंह अपनी कविता 'स्त्रियों का कुलनाम में' कहती हैं –

"तुमने उस पुरुष को जन्म क्यों
न दिया
जो अपनी संतान को अपनी स्त्री का
कुलनाम दे देता ?"[7]

यहाँ कवयित्री एक ऐसे समाज का सपना देख रही हैं जहाँ ऐसे पुरुष हो जो अपनी संतान को स्त्री का कुलनाम दे देने पर संतुष्टि पाए। पुरुष सत्तात्मक सोचवाले स्त्री या पुरुष कुलनाम डालने के प्रचलित पुरुषसत्तात्मक रीति के खिलाफ़ कभी नहीं बोलेंगे या करेंगे। लेकिन यह सुनकर यह प्रश्न अवश्य पूछा जाएगा 'नाम में क्या रखा है?'। अधिकार और अस्मिता की जागरूकता शुरू करने के लिए बदलाव कहीं से भी शुरू कर सकते हैं। एक व्यक्ति की पहचान नाम से ही शुरू होती है। अगर नाम से ही बदलाव आरंभ हो तो वह हमेशा एक सशक्त बदलाव रहेगा।

6.3. दलित औरतों की अस्मिता एवं अधिकार

"दलित शब्द का सामान्य अर्थ है 'टूटा हुआ', 'पिछड़ा हुआ', 'भ्रष्ट' या 'गिरा हुआ'। भारत में वर्तमान में 166.6 मिलियन दलित है।"[8] जाति और गरीबी अविभाज्य रूप में एक दूसरे

से जुड़े हुए है। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद ही कानूनी संविधान ने अस्पृश्यता को समाप्त किया था। उनके लिए प्रत्येक रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम1989 बनाया गया है। लेकिन किस हद तक यह लागू हो रहा है, यह चिंता का विषय है। इसके प्रमुख कारण केन्द्र और राज्य सरकारों के इच्छा शक्ति की कमी, उच्च जाति और वर्ग के नौकरशाही की प्रतिबद्धता की कमी, अनुसूचित जनजाति आयोग के वैधानिक शक्ति का अभाव आदि हो सकते हैं। अगर दलित वर्ग इसका प्रतिरोध करें तो हिंसा के ज़रिए इन्हें चुप कराए जाते हैं।

दलित औरतों की स्थिति यह है कि उन्हें समाज से दुगुनी मार झेलती पड़ती है। भारत में महिलाओं की आबादी के 16 फीसदी महिलाएँ दलित हैं। उन्हें लैंगिक भेदभाव, आर्थिक अभाव तथा जातीय भेदभाव इन तीनों को भुगतना पड़ता है। "2020 में उत्तरप्रदेश के हाथरस में 19 साल की एक लड़की के साथ जो हुआ वह एक उत्तम उदाहरण है। तथाकथित उच्च जाति के लोगों ने उसका गैंगरेप किया था। पुलिस द्वारा शिकायत दर्ज करने में देरी करना, जाँच की गति को धीमी करना, रातों-रात रेप की शिकार लड़की को जलाना, मीडिया और विपक्षी नेताओं को परिवार से न मिलने देना आदि दृश्य इसकी ओर संकेत करता है कि शायद अधिकारी वर्ग ऊँची जाति के लोगों का साथ दे रहे थे, जिन्होंने यह जुर्म किए हैं।"[9]

दलित समुदायों पर भीड़ का आक्रमण आजकल आम बात बन गई है। संवैधानिक रूप से सकारात्मक कार्रवाई नीतियों के बावजूद, आजकल समाज में जो घटित हो रही है, वह विचारणीय विषय है। पीड़ितों को न्याय दिलाने में न्याय प्रणाली की विफलता ने भी दलित लड़कियों की ज़िंदगी को और चुनौतीपूर्ण बना दिया है। स्वास्थ्य, शिक्षा, कानूनी अधिकारों का प्रयोग आदि से उन्हें दूर रखे जा रहे हैं। दलित महिलाओं पर आजकल अत्याचार बढ़ता जा रहा है। उनको अपनी लड़ाई खुद लड़नी पड़ेगी।

रामशरण जोशी के अनुसार “दलित औरतों में ‘मनुष्य होने’ का एहसास ही पैदा नहीं हो पाता, अस्तित्व व अस्तमिताबोध का प्रश्न तो उठता ही नहीं हैं। ऐसी औरत परिवेश में मौजूद सभी प्रकार के अन्यायों को जीवन यथार्थ के रूप में स्वीकार कर लेती है। जब गाँव में सवर्णों द्वारा उसका अपमान किया जाता है, उसे नंगा घुमाया जाता है, तब वह इसका विरोध नहीं कर पाती।”[10] दलित नारीवादियों के हिसाब से नारीवादी आंदोलन के अंतर्गत श्रम विभाजन पर चर्चा करते समय देवदासी, जोगिनी जैसे जाति आधारित श्रम या प्रथा पर कुछ नहीं कहा गया। दलित औरतें अनौपचारिक क्षेत्र में काम करती आई हैं। एक दलित स्त्री को समाज से दोहरी मार झेलनी पड़ती है। वह मनुष्य होने के एहसास से बहुत दूर है। उन सभी प्रकार के मानवाधिकार उल्लंघनों को जीवन के यथार्थ के रूप में झेलना पड़ता है। अगर उसे नंगा भी घुमाया जाता है, तब भी वह उसका विरोध नहीं कर पाती। रजनी तिलक ‘औरत – औरत में अंतर हैं’ में कहती हैं-

“औरत औरत होती है
एक सताई जाती है स्त्री होने के कारण
दूसरी सताई जाती है स्त्री और
दलित होने पर
एक तड़पती है सम्मान के लिए
दूसरी तिरस्कृत है भूख और
अपमान से।”[11]

पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री तो अक्सर सताई जाती है और दलित स्त्री तो दोहरी रूप से अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर होती है। उसे अपने सम्मान के लिए तड़पना पड़ता है और तो और भूख और अपमान तो उसके सहचारी होते हैं। इस प्रकार दलित नारी होने के कारण

उसके अधिकारों का हनन दोहरी दृष्टि से हो रही हैं। सुशीला टाकभौरे की कविता 'बदलेगा कठिन मानस' इसका सशक्त उदाहरण है।

6.4. आदिवासी औरत के अधिकार की समस्याएँ

आदिवासी आबादी का आधा हिस्सा लगभग महिलाएँ हैं। किसी भी समाज की भलाई कहीं न कहीं महिलाओं की स्थिति पर निर्भर होती है। यहाँ स्थिति से अभिप्राय अधिकार एवं स्वतंत्रता से है। पितृसत्तात्मक मूल्यों के तहत आदिवासी महिलाओं की स्थिति भिन्न नहीं है। लिंग के आधार पर भेदभाव तो पितृसत्तात्मक ढाँचे में सामान्य सी बात है। आदिवासी महिलाओं के स्वास्थ्य, पोषण,शिक्षा, आर्थिक स्थिति, रोज़गार के लिए तो संवैधानिक कानून अवश्य है, लेकिन उसका पालन नहीं होता।

आदिवासी महिलाएँ एवं बच्चे अल्पपोषण के कारण कमज़ोर बन गए हैं। भारतीय महिलाओं में 65 फ़ीसदी आदिवासी महिलाएँ अनीमिया से ग्रस्त हैं। औपचारिक शिक्षा का अभाव आदिवासी महिलाओं की दूसरी समस्या है। आदिवासी लड़कियों के बीच में स्कूल छोड़ना एक सामान्य कार्य है। स्कूल के स्थान का दूर होना, सुरक्षा का अभाव,स्थानीय भाषा में प्रासंगिक पाठ्यक्रम का अभाव आदि कई कारणों से वे स्कूली शिक्षा को आधे रास्ते में छोड़ देती हैं। महिलाओं पर होने वाले यौन उत्पीड़न और एक मुख्य समस्या है। 2023 जुलाई में मीडिया के माध्यम से एक वीडियो दुनिया के सामने आया, जिसने मणिपुर में चल रही जातीय और सांप्रदायिक हिंसे का पर्दाफाश किया। मणिपुर की इसी आपसी संघर्ष में महिलाओं के साथ यौन हिंसा हुई, वह कोई अकेली घटना नहीं रही। इस संघर्ष में सबसे बड़ा निशाना लड़कियाँ एवं महिलाएँ रहीं। मर्दाना वर्ग यह मानता कि किसी अन्य जाति के लोगों पर अधिकार स्थापित करना है तो पहले 'कमज़ोर वर्ग' स्त्रियों पर आक्रमण करें। "मेति वर्ग के लोगों ने कुकी ज़ोमी वर्ग की स्त्रियों पर हमला किया।"[12] यह एक इस संघर्ष में कुकी आदिवासी विभाग के ज़्यादातर

स्त्रियों को ही इस संघर्ष का शिकार होना पड़ा। इतने सारे संवैधानिक नियमों के बावजूद देश में आक्रमण और अत्याचारों कमी नहीं है। ज़रूरत है एक ऐसी व्यवस्था की जो बिना किसी प्रकार के भेदभाव के न्याय की रक्षा करे।

"आदिवासी औरतें अपने समाज की आर्थिक रीढ़ हैं। पुरुष से अधिक वे श्रम करती है। इस समाज का स्त्री विमर्श अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और यौन स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि वह अधिक ज़मीनी है।"[13] आदिवासी स्त्रियाँ हर कर्मक्षेत्र में पुरुष के साथ भागीदार बनती हैं। घर, खेत-खलिहान हर क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाती हैं। आदिवासी समाज में स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। कुछ सालों से बाहर के लोगों के आने से ही आदिवासी स्त्री अस्मिता एवं अधिकारों पर प्रश्न चिह्न उठ रहे हैं। आदिवासी स्त्रियाँ सामाजिक अज्ञानता, निरक्षरता एवं अंधविश्वासों के कारण शोषण के शिकार बन रही हैं। जल, ज़मीन, संपत्ति आदि की लालच में स्त्रियों को डायन कहकर उस प्रदेश से सरेआम दंडित किया जाता है। "बस्तर जैसे आदिवासी अंचलों में कबाड़ी प्रथा जैसी घोर बर्बर प्रथा भी प्रचलित रही है। इस प्रथा के तहत आदिवासी औरतें जीवन-यापन के लिए कोख पलनेवाले बच्चों (या भ्रूणों) को ही महाजन के पास बन्धक बना दिया करती थीं।"[14] इस तरह की मूर्खता के खिलाफ़ आवाज़ उठाती हुई व्यंग्यात्मक ढंग से कवयित्री निर्मला पुतुल अपनी कविता 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू' में कहती हैं –

"हक की बात न करो मेरी बहन
मत माँगे पिता की संपत्ति पर अधिकार
ज़िक्र मत करो पत्थरों और जंगलों की अवैध
कटाई का
सूदखोरों और ग्रामीण डॉक्टरों के लूट की
मिहिजाम के गोआकोला की
'सुबोधिनी मारंडी' की तरह तुम भी

अपने मगजहीन पति द्वारा
भरी पंचायत में डायन करार कर दंडित की
जाओगी।"[15]

यहाँ निर्मला पुतुल स्त्रियों के खिलाफ़ होनेवाली एवं अत्याचार के प्रति आवाज़ उठाने का सशक्त प्रयास कर रही हैं। अगर अपनी हक की बात करेगी या अपने समाज में चलने वाली अनीतियाँ जैसे कि पत्थरों एवं जंगलों की अवैध कटाई, ग्रामीण डॉक्टरों की लूट आदि पर बात कहेगी तो अपने शरीर पर अपने पागल पति द्वारा किए जानेवाले अनीति को भी झेलना पड़ेगा। इस प्रकार आदिवासी जीवन के स्त्री के अधिकार की समस्या ज़्यादा ज़मीनी है। निर्मला पुतुल की कविताएँ 'आदिवासी स्त्रियाँ', 'अपने गाँव आई रिसर्च टीम से', तथा सुनिता कटोच की कविता 'आदिवासी महिलाएँ' भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

6.5. क्वीर औरतों की अस्मिता एवं अधिकार

मनुष्य को जन्म के साथ ही एक जेंडर मिल जाता है। फिर समाज के नियमों के आधार पर हमें आदमी और औरत में तब्दील किया जाता है। "ये पहचान हम पर समाज द्वारा थोपी गई है या यह कहें कि दुनिया में सिर्फ़ दो जेंडर होते हैं यह भी समाज द्वारा बनाया गया मनगढ़ंत सच है।"[16] जो लोग अपने आप को इन दो हिस्सों (Binary Gender) में नही पाते, तो उन्हें बिना वजह समाज से निष्कासित किया जाता है। परंपरागत एवं पितृसत्तात्मक सामाजिक सोच जिसमें विषम लैंगिकता, बाइनरी शरीर आधारित स्थाई जेंडर आदि को महत्व दिया जाता है, उसे विषम मानकीय (hetero normative) समाज कहते हैं। इस तरह के समाज में जेंडर और यौनिकता का भी हाल भिन्न नहीं है।

क्वीर विभाग के लोगों में कई जेंडर पहचानवाले होते हैं। व्यक्ति अपनी पहचान खुद तय करता है। वे शरीर और जेंडर का सीधा संबंध नहीं मानते और उनके अनुसार जेंडर स्थायी नहीं होता और वे अपनी इच्छानुसार इसे व्यक्त कर सकते हैं।

समलैंगिक स्त्री (lesbian) अपने अस्तित्व को निडर होकर प्रस्तुत करनेवाली है। वह स्त्री अनुरागी होती है । वे परिवार के ढाँचे के लिए एक समस्या है, क्योंकि इस रिश्ते से संतानोत्पत्ति संभव नहीं है । उनके अनुसार जेंडर निर्धारण मात्र वैयक्तिक है । इसमें समाज या परिवार का कोई लेना -देना नहीं। क्वीर नारीवादियों के अनुसार एक व्यक्ति के जेंडर, किसके साथ रहता है?, पहनावा आदि के बारे में सवाल करना फ़िज़ूल है। विषम लैंगिकता या कोई भी सोच हो, यह एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य और सोच से निर्मित है । इसलिए नए समाज की परिकल्पना के अलावा बदलाव लाने का और कोई मार्ग नहीं।

समाज में हमेशा से सर्वस्वीकृत लैंगिक संबंध को ही महत्व दिया जाता है, क्योंकि वह बहुसंख्यकों की वृत्ति है । बहुसंख्यकों की वृत्ति यानि स्त्री-पुरुष के बीच-का यौन संबंध । बहुसंख्यकों की यौन वृत्ति प्रकृत और अल्पसंख्यकों की यौनवृत्ति को विकृत अर्थात प्रकृति के विरुद्ध माना जाता है। सेक्स अथवा यौनता शरीर केंद्रित है तो लिंग (जेंडर) तो इच्छा केन्द्रित होती है। एक समय ऐसा आया कि यह अल्पसंख्यक लोग 'कमिंग आउट' करके बाहर आ गए। और आत्मस्वीकृति (कमिंग आउट) सदियों की निंदा का प्रतिरोध था। उच्चन्यायालय ने सितंबर 2018 को वैधिक घोषित भी किया था। इसके बावजूद समाज इसको स्वीकारने में हिचक रहा है। यहाँ क्वीर शब्द 'एल जी बी टी क्यू' का प्रतिनिधित्व करता है। एक छाता 'क्वीर' के अंतर्गत यह सारे विभाग आ जाते है। सारे अल्पसंख्यक सेक्स और लिंग इसमें समाहित है।

समाज ने आधुनिक चिकित्साशास्त्र, मनोवैज्ञानिक संस्थाओं, धार्मिक विश्वासों के माध्यम से क्वीर को दूर करने की कोशिश अवश्य की, लेकिन वे लोग अवश्य ही विश्व-वैविध्य

की तरफ़ आँखें बंद करनेवाले रहे । समलैंगिक स्त्री (लेस्बियन) तथा बाई-सेक्सुअल स्त्री (उभयलैंगिक) के अधिकार की ओर दृष्टि डाले तो पता चलता है कि सामाजिक स्वीकृति न के बराबर है।

समलैंगिक स्त्री समकालीन संदर्भ में अपनी पहचान और स्वत्वबोध को प्रकट करनेवाला विशेष व्यक्तित्व है। "क्वीयर औरतें विषमनियामकता, जिसके अंतर्गत एक अंतरंग और स्वतंत्र रिश्ते के लिए पुरुष की आवश्यकता होती है, के पूरे आधार को चुनौती देती हैं। वे परिवार के ढाँचे के लिए चुनौती हैं क्योंकि यौन संबंधों से संतानोत्पत्ति नहीं होती या फिर वे विवाह की नियत कानूनी श्रेणी में फिट नहीं होती है ।"[17] क्वीर नारीवादी समूह विषमनियामकता (hetero sexuality) को पोषण देने वाले परिवार एवं समाज के एजेंडे के खिलाफ़ है और वे परिवार की धारणा को बदलना चाहते हैं। वे परिवार के वैकल्पिक स्वरूप को समझकर उसे स्वीकारने की सलाह समाज को देती हैं। साथ ही जेंडर रूपी संकल्पना को वैयक्तिक निर्धारण पर छोड़ने की माँग रखती हैं। समाज का विषमनियामक नियंत्रण समलैंगिक, उभयलैंगिक ज़िंदगियों पर थोपा जाना, उनके खिलाफ़ नाइंसाफ़ी है। लेस्बियन स्त्रियाँ इस तरह के पारिवारिक ढाँचे में शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न को झेलने के लिए मजबूर हो जाती हैं।

इस संदर्भ में रश्मि भरद्वाज की कविता 'बहनापा' की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

"किसी कामनावश नहीं मिले थे
उनके होंठ
सदियों से अतृप्त थीं वे
शताब्दियों से निर्वासित
देवों के हृदय से
जिनकी शय्या पर बिछाई जाती रही

फूलों की तरह

और मसल कर फेंकी जाती रहीं

भोगा गया तन

अनछुई रही आत्मा।"[18]

यहाँ कवयित्री समाज के विषमनियामक नियंत्रण के शिकार एक स्त्री की स्थिति को दर्शाने का प्रयास किया है। किसी भी प्रकार की कामना के बिना दो लोग मिलें और वे एक दूसरे के साथ निर्वासित एवं अतृप्त रहें। अनछुई आत्मा मात्र भोगा गया तन लेकर ज़िंदगी मर कर जी लेती है। जिस प्रकार की दोस्ती और नज़दीकी जीवन में चाहिए थी उसे अपनी ज़िंदगी से नहीं मिली। प्यार के अभाव से ग्रस्त ज़िंदगी में अपने जेंडर की अभिव्यक्ति दिए बिना क्वियर स्त्री के निराश जीवन की निराशा की ओर संकेत करती रश्मि भरद्वाज की 'बहनापा' की पंक्तियाँ है –

"उन्होंने मिट्टी की दीवारों पर साथ

उकेरे अपने स्वप्न

और उनमें अपनी दमित इच्छाओं

का रंग भरा।"[19]

कवयित्री ने जिस तरह की चुप्पी विषमनियामक विशेषाधिकार को और दृढ़ बनाती हैं उसकी ओर संकेत किया है। नियामक रिश्तों से हटकर अपने रिश्ते बनानेवाले लोगों पर जो दबाव समाज द्वारा होता है । यह दबाव उस क्वीयर स्त्री की ज़िंदगी को चकनाचूर कर देता है। अपनी दमित इच्छाओं के साथ जीने के लिए स्त्री बाध्य बन जाती है।

6.6. महिला लेखक का अस्मितामूलक अधिकार

स्त्री लेखक की अस्मिता एक विचारणीय विषय है। हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन का व्यापक प्रस्फुटन हुआ है। इसको एक ऐतिहासिक घटना के रूप में देखा जा सकता है। वर्तमान

स्त्री लेखन समानता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे मूलभूत अधिकारों को आगे रखते हैं। यह एक तरह से पितृसत्ता का नकार है। स्त्री लेखक अपने साहित्य के माध्यम से मूल चेतना में उसे पराधीन बनानेवाले पितृसत्ता पर आवाज़ उठाती है। स्त्री विरोधी भूमिकाओं पर प्रकाश डालनेवाली पितृसत्ता लेखक स्त्री की अस्मिता को पसंद नहीं करता। एक लेखक की अस्मिता को बनाए रखने के लिए उसे संघर्षों से गुज़रना पड़ता है। इस संदर्भ में नीलेश रघुवंशी की कविता 'कविता लिखनेवाली लड़की' नामक कविता उल्लेखनीय है। कविता की पंक्तियाँ हैं-

"जब कभी कविता लिखती है लड़की

कहा जाता है सीखो मशीन चलाना

रहो लड़कियों की तरह

मत लो बहसों में हिंस्सा

सीखो पहले घर के सारे काम-काज

और इन सबसे बच जाए समय

तो कर लेना कविता चविता भी "[20]

यहाँ महिला लेखन की अस्मिता पर दरार पहुँचानेवाले समाज को पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। लेखक की अस्मिता पसंद करनेवाली लड़की से अन्य 'तथाकथित स्त्री कौशल' सीखने के लिए मजबूर किया जाता है। और उससे बहस में न पड़ने के लिए कहती है। लड़की से कविता-वविता के पीछे न जाकर घर के कामो में रहने के लिए समाज आदेश देता है। अगर घर के काम-काज से समय बच जाए तो वह कविता लिख सकती है वरन् घर के चार दीवारों के अंदर ही अपने आपको बंद रखनी है। उसे अपनी अस्मिता से वंचित रखने के लिए समाज तत्पर है।

कवयित्रियाँ हार माननेवालों में से नहीं हैं। वे इसके खिलाफ़ आक्रोश करती हैं और समाज के अन्य रचनाकारों के समान अस्मिता को बनाए रखने के लिए समाज से प्रश्न करती हैं। स्त्री लेखक की अस्मिता पर उँगली उठानेवाले समाज के खिलाफ़ विद्रोह करती हैं। कवयित्री नीलेश रघुवंशी की कविता 'कविता लिखनेवाली लड़की' की पंक्तियाँ हैं –

"मैं भी बनूँगी कवि
मशीन पर सिलते हुए कपड़े सिलूँगी कविता
बुनते हुए स्टोर बुनूँगी शब्द
खुले आसमान के नीचे बैठकर करूँगी बनें
तुम्हारी कविताओं पर।" [21]

समकालीन स्त्री रचनाकार अपनी अस्मिता को खोने के लिए तैयार नहीं हैं। वे अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए लड़ रही हैं। अगर वे घर की चार-दीवारों के अंदर हैं तो भी कपड़े सिलते हुए कविता तैयार करेंगी, स्वेटर बुनते हुए भी शब्द गढेंगी। उनकी अंतर्मन की ताकत इतनी गहरी है कि हर हाल में अपनी अस्मिता को अपने आप से छूटने नहीं देंगी। वर्जीनिया वुल्फ़ अपनी पुस्तक 'रूम ऑफ वन्स ऑन' में कहती हैं – That woman, then, who was born with a gift of poetry in the sixteenth century, was an unhappy woman, a woman at strife against herself."[22] विर्जीनिया वुल्फ़ ने सोलहवीं सदी की कवयित्रियों की स्थिति को दर्शाने का प्रयास किया है, जब कवयित्रियों को अपनी लेखक अस्मिता को बचाकर रखने के लिए लड़नी पड़ती थी। समकालीन कवयित्रियों में कात्यायनी ने स्त्री लेखक की अस्मिता को अभिव्यक्ति दी है। स्त्री लेखक मुकुल अमलतास को कुल्हाड़ा से मार दिया गया था। इस संदर्भ में कात्यायनी की 'कुल्हाड़ा' नामक कविता इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। कात्यायनी कहती हैं –

"जिस शाम एक स्त्री की गर्दन पर

गिरा एक हत्यारा कुल्हाड़ा

जिन स्त्रियों के रोज़ उग आते हैं नए पंख

वे जानती हैं कि ऐसी शामों के बाद

पंखों को सजगत से काटता है

और कविताओं की डायरियों पर

गिलोटिन की तरह गिरता है।" [23]

यहाँ कवयित्री कात्यायनी ने स्त्री कवि मुकुल अमलतास की कुल्हाड़े से उनके पति द्वारा हत्या कर देने वाली घटना के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का प्रयास किया है। कुल्हाड़े से किस प्रकार क्रूरता उस स्त्री कवि पर बरत रही थी, स्त्री कवि के पंखों को अर्थात् उसकी सजगता को काटकर उसकी कविता की डायरी के ऊपर फेंक दिया गया, उसको कवयित्री ने अपनी कविताओं के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया है। स्त्री रचनाकार अपने हितों की रक्षा स्वयं करने लगी हैं। स्त्री लेखन के माध्यम से अपनी अस्मिता को पहचान देने का प्रयास रचनाकारों ने किया है। केरल की कवयित्री आर.लोपा की 'स्त्री तू क्यों लिखती है' भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि कवयित्रियाँ अपनी अस्मिता की स्थापना तथा दूसरी स्त्रियों को पितृसत्तात्मक व्यवस्था की गुलामी से मुक्त करने के लिए प्रयत्नरत हैं।

6.7. **वृद्धाओं की अस्मिता एवं अधिकार**

वृद्धावस्था को जीवन की अंतिम अवस्था समझा जाता है। जो व्यक्ति इस अवस्था में भी कुछ सीखने तथा कुछ अलग कर दिखाने की चाह रखता है, उसमें वृद्धावस्था का आगमन

धीमी हो जाता है। पचास वर्ष के ऊपर पहुँचे ही सभी को वृद्धावस्था का एहसास होने लगता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार वृद्धावस्था का संबंध तन से नहीं मन से है। मन के उत्साह एवं उमंग के साथ ही तन भी चिरायु और सक्रिय रह सकता है।

वृद्धों को आधुनिक समाज द्वयं दर्जे की ओर धकेल देता है। समाज का मानना यह है कि एक विशेष आयु के बाद स्वास्थ्य, आर्थिक तथा शारीरिक दशा में कमज़ोर हो जाने पर व्यक्ति परिश्रम नहीं कर सकता। आयु वृद्धि के साथ ही वृद्धों की सामाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं में भी बदलाव दृष्टव्य है। यह स्थिति समाज से लेकर परिवार तक सभी कार्यक्रमों में देखने को मिलती है। समाज और परिवार मात्र दर्शक बनने का विकल्प ही वृद्धों के पास छोड़ देते हैं। इस संदर्भ में अनामिका की कविता ‘वृद्धाएँ धरती का नमक है’ उल्लेखनीय है –

> “कहीं न कहीं सबसे मिल जाता है
>
> उनका तार छंद
>
> जो फटकर तार-तार हो जाते हैं –
>
> सार्वजनिक बन जाती है जिनकी
>
> निजता।”[24]

यहाँ सबके साथ घुल मिलने की चाह रखनेवाली वृद्धा की स्थिति को दर्शाया गया है। सभी के साथ उसका रिश्ता तो होता है, लेकिन उस रिश्ते को आगे बढ़ने नहीं दिया जाता। उनकी निजता को सार्वजनिक बननी पड़ती है। जब वे चाहती हैं कि दूसरों के साथ घुल-मिल ले, तब वे नहीं होने देते। उसको मात्र दर्शक बनने का विकल्प ही दिया जाता है। जब वे चाहती हैं कि अपनी चीज़ें निजी बनकर रहें, तब सभी लोगों द्वारा उसमें दखलंदाज़ी अवश्य होती है। उन्हें अपनी अस्मिता के साथ जीने का अवसर अनुपलब्ध है। समाज वृद्धाओं की सामाजिक भूमिकाएँ तय करता है , जो न चाहते हुए भी उसे करना पड़ता है। अनामिका की पंक्तियाँ हैं –

"वृद्धाएँ धरती का नमक हैं

किसी ने कहा था।

जो घर में हो कोई वृद्धा-

खाना ज़्यादा अच्छा पकता है,

परदे-पेटीकोट और पायजामे भी

दर्जी और रफ़ूगरों के

मुहताज नहीं रहते

बच्चे ज़्यादा अच्छा पलते हैं

उनकी नन्ही -मुन्नी उल्टियाँ सँभालती"[25]

यहाँ कवयित्री ने वृद्धाओं के घरेलू कामकाज में जिस प्रकार का कार्य वृद्धाओं को मजबूरन करना पड़ता है, उसको पर्दाफाश करने का प्रयास हुआ है। खाना पकाना, बच्चों की देखभाल करना आदि विभिन्न कार्य करने का सामाजिक उत्तरदायित्व मात्र उस पर थोपा जाता है। न चाहते हुए भी छोटे-बच्चों के ख़ातिर वह सबकुछ करती है। पर्दे, पेटीकोट या कोई भी कपड़ा हो सिलाई भी वही करती है। समाज के अलिखित नियमों के कारण इन सभी भूमिकाओं को न चाहते हुए भी उसे झेलना पड़ता है। इस कविताओं के अलावा सुनीता जैन की कविता 'देसी माँ विदेश में', 'समय नहीं', सारिका भूषण की कविता 'उस वृद्धा की संदूकची में', कात्यायनी की कविता 'बस स्टेशन पर दो बूढ़ी स्त्रियाँ', प्रियंका दुबे की 'रिहाई' आदि में वृद्धाओं की अस्मिता एवं अधिकार से जुड़ी समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कवयित्रियों ने कविताओं के माध्यम से किया है।

6.8. महिला कलाकारों की अस्मिता

जेंडर को कभी भी समरूपता से नहीं बनाया गया है। जेंडर एक सामाजिक निर्मिति होने के कारण ही स्त्री हो या पुरुष उसे सामाजिक भूमिकाओं के अनुरूप ही चलना होता है। महिला कलाकारों की स्थिति की ओर दृष्टि डाले तो पता चलता है कि उनकी स्थिति भी इससे भिन्न नहीं हैं।

जेंडर की श्रेणी के मुताबिक महिला कलाकारों को अलग ही सामाजिक स्थिति से गुज़रना पड़ता है। इस तरह की स्थिति महिला कलाकारों के राह में बाधा अवश्य डाल देती है। लता सिंह के अनुसार "औपनिवेशी काल के दौरान जब मध्यवर्गी औरतों ने सार्वजनिक दायरे में कदम रखा तो उन्होंने उसके साथ-साथ अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए पवित्र घरेलूपन की आत्म-छवि को अपना लिया।.......हालाँकि कलाकारों के काम का समय औरतों के लिए निर्धारित काम के समय से अलग होता है।"[26] अर्थात् औपनिवेशिक काल में जब मध्यवर्गी स्त्रियों का, सार्वजनिक क्षेत्रों में आगमन हुआ तब उन्होंने अपने साथ घरेलूपन को लिया जिससे उनके लिए सबकुछ जैसे कि समय आदि घटक निर्धारित किए गए। सामाजिक न्याय के अनुसार कला का क्षेत्र औरतों के लिए गैर पारंपरिक है, जिसमें काम का समय औरतों के लिए 'असमय' है क्योंकि इसमें समय अधिक लगने की संभावना ज़्यादा है। कभी कभार देर रात तक काम करना पड़ता है, जो कि 'अच्छी औरत' के लिए सटीक नहीं है। समाज की नज़र में अपरिचित पुरुषों के साथ अभिनय करना, कलाकारों की मंडली के साथ यात्रा करना आदि कार्य समुदाय के सामाजिक सीमाओं को पार कर जाते हैं। इस तरह की बातें तथाकथित सामाजिक आदर और सम्मान को प्रश्नांकित करती हैं। कलाकार की अस्मिता को चकनाचूर कर देता है। इसको आजीविका के रूप में न देखकर नज़रंदाज़ करने पर समाज अडिग रहा। इस संदर्भ में अनामिका की कविता 'महिला कलाकार' उल्लेखनीय है। कविता की पंक्तियाँ हैं –

"कमरे में लटकी है
इनकी सम्मान पट्टिकाएँ
स्थानीय महिला-मंडल के
सालाना जलसे में
रंगारंग सांस्कृतिक गतिविधियों की खातिर अर्पित
सम्मान-पट्टिकाएँ"[27]

यहाँ कवयित्री अनामिका अपनी कविता की पंक्तियों के माध्यम से कलाकार की अस्मिता को मात्र कमरे में लटकी सम्मान पट्टिकाओं में कैद करके रखने पर विद्रोह करती हैं। स्त्री को अपने अंदर के कलाकार की अस्मिता को पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचा प्रवेश करने नहीं देता। पितृसत्ता के अनुसार स्त्रियों की कलाकारी मात्र साल में होने वाले रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक ही सीमित रहे। घर के चार दीवारों के अंदर ही सम्मान पट्टिकाओं का स्थान है। उसको आगे बढ़ने देना सामाजिक उसूलों के लिए खतरा है। समाज स्त्री को इस अस्मिता से दूर रखकर मात्र घर एवं घरेलू कामकाज में ही समय बिताने की मजबूरी देता है। इस संदर्भ में अनामिका की कविता 'महिला कलाकार' की पंक्तियाँ हैं –

"ये पुराने बाजे
बजाते हैं बाजा किसका
ठहर-ठहरकर कुछ-कुछ बतियाते हैं क्या वे
फाँसी पर लटके
सम्मान-पट्टों से" [28]

यहाँ कवयित्री ने 'पुराने बाजे' शब्द का प्रयोग करके पुरानी सोच पर आधारित पितृसत्तात्मक ढाँचे पर व्यंग्य किया है। पुराना बाजा कलाकारों की अस्मिता रूपी बाजा को बजा

रहा है और अपनी ओर से पितृसत्ता किस प्रकार का परिश्रम दिखाता है, वह सब मात्र दिखावा है। अपना परिश्रम पितृसत्ता कमरे में लटके गए सम्मान पट्टों के आगे रखता है, जो सिर्फ़ दिखावा है। एक ओर पितृसत्ता ने कलाकार की अस्मिता सम्मान पट्टों को फाँसी पर लटकाया है और दूसरी ओर सिर्फ दिखावा है कि वे समाज एवं कलाकार स्त्रियों के हितैषी हैं। यहाँ स्त्रियों के समान रोज़गार के अधिकार (अनुच्छेद 11) पुरुषों के समान मूलभूत अधिकारों और स्वतंत्रता की गारंटी (अनुच्छेद 3) आदि अधिकारों का उल्लंघन हुआ है।

6.9. यौन कर्मियों की अस्मिता एवं अधिकार

"महिला जीवन का एक विकृत रूप है उसका वेश्या होना।.... यह सच है कि कोई स्त्री इस क्षेत्र में पदार्पण स्वेच्छा से नहीं करती । एक-एक इतिहास देखा जाए तो वे परिस्थिति की मारी होती है। एक बार वहाँ पहुँचने के बाद उनका वहाँ से निकलना अत्यंत कठिन हो जाता है। ...समाज से कटा हुआ इनका अपनी ही समाज है।"[29] यहाँ मृदुला सिंहा ने वेश्या की स्थिति, उसके वेश्या होने के कारण और वेश्याओं की अलग परिस्थितियों से आना, वेश्यावृत्ति से बाहर निकलने की कठिनाई जैसे मुद्दों को सामने रखने की कोशिश की है। 'स्त्री की डायरी:दिवस 1' कविता में ममता तिवारी की पंक्तियाँ हैं –

"ए मज़लूम औरत
मुझे माफ़ कर देना
जो, एक दिन मैंने बाज़ारू कह कर
गाली दी थी।
जो, वापस लौट कर मेरे ही मुँह पर लगी थी
मैं भूल गई थी
आइने पर पत्थर मारने से मेरा ही तो
प्रतिबिंब टूटता है।"[30]

ये पंक्तियाँ एक यौन कर्मचारी की निंदा करने वाले समाज की दोहरी नीति की ओर इशारा करती हैं। कवयित्री वेश्या को 'मज़लूम औरत' पुकारकर कविता शुरू करती हैं। वेश्या से माफ़ी माँगती हैं कि उसे गाली देकर कवयित्री ने गलती की है। कवयित्री को ऐसा लगा कि वह आइने में देखकर अपने आप पर पत्थर मार रही है। यहाँ कवयित्री अपने आप को समाज का प्रतिनिधि मानती हैं। और समाज को यह संकेत देती हैं कि अगर वे यौन कर्मचारी को गाली दे रही हैं, बाज़ारू बोल रही हैं, तो वे स्वयं भी वही गाली सुनने के हकदार हैं। क्योंकि स्त्री सेक्स कर्मचारी अकेले नहीं बनती। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार "बिकनेवाली से कई गुना ज़्यादा गुनाहगार खरीदनेवाला होता है, क्योंकि बिकना मजबूरी की निशानी है और खरीदना मालिकाना रवैय्या है। इसी तालमेल से वेश्या बनती है और कालगलर्स पैदा होती है।"[31] इस संदर्भ में कुसुमलता अविचल की'वेश्या-एक विवश नारी' कविता की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। जैसे-

"अब वेश्या वो कहलाती है
उसके दर्द का कोई मोल नहीं
मनोरंजन करना ऐय्याशों का

बस व्यापारिक वस्तु बनी है वो
उसका अपना कोई नाम नहीं।"[33]

वेश्याओं के दर्द को समाज देखता नहीं। वह सिर्फ एक व्यापारिक वस्तु बनकर अपने स्वत्व, अस्मिता सबकुछ खोकर उपभोक्ताओं के लिए जीनेवाली है। बिकना उनकी मजबूरी है और उनकी मजबूरी का फायदा खरीदनेवाले उठाते हैं। दुनिया इतनी तरक्की, विकास, सुधार आदि के बीच होने के बावजूद पुरुषों की मौज के व्यापार को ही महत्व दिया जा रहा है। सेक्स कर्मचारी तभी होते हैं जब उसके उत्पाद को खरीदनेवाला कोई है। यह हमेशा से दुनिया, समाज

सभी भूल जाते हैं, या भूलने का नाटक कर रहे हैं। हम सोनेवाले व्यक्ति को जगा सकते हैं, लेकिन सोने का बहाना करनेवाले को जगा नहीं सकते। उपर्युक्त कविताओं के अलावा अंकिता शाम्भवी की कविता 'पर वेश्याओं ने तुम्हें कभी प्यार नहीं की', सविता भार्गव की 'गालियाँ' जैसी कविताएँ भी यौनकर्मियों की समस्याओं की ओर इंगित करती हैं।

6.10. निष्कर्ष

अस्मिता का संबंध पहचान से है। स्त्री को अस्मितामूलक अधिकारों का उल्लंघन इस समय एवं समाज के लिए एक जटिल समस्या है। समाज द्वारा निर्धारित तथा कथित भूमिकाओं के अलावा स्त्री बाहर नहीं जा सकती। समाज द्वारा हाशिएकृत वर्ग जैसे कि दलित, आदिवासी, क्वीर आदि की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। समाज में कलाकार स्त्रियाँ, वृद्धाएँ, गृहिणी, यौनकर्मी आदि सभी स्त्रियों को अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

अस्मितागत अधिकारों के उल्लंघन को रोकने तथा उसको पर्दाफाश करने का सशक्त प्रयास समकालीन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। समाज में स्त्री की अस्मितामूलक अधिकारों की समस्याएँ कवयित्री ओमलता की 'बेटी समझदार हो गई हैं', 'वहीं, आभा भारती की 'सांसारिक नारी', अनुराधा सिंह की 'स्त्री का कुलनाम' जैसी कविताओं में मिलती हैं। पितृसत्ता एवं समाज स्त्री की अस्मिता को किस प्रकार तोड़-मरोड़कर अपने कब्जे में कर रहे हैं, उसको पर्दाफाश करने का सशक्त प्रयास कवयित्रियों ने किया है। दलित औरत की अस्मितामूलक समस्याओं को रजनी तिलक की 'औरत औरत में अंतर', सुशीला टाकभौरे की 'बदलेगा कुंठित मानस' आदि कविताओं में दर्शाया गया है। आदिवासी औरतों के अस्मितामूलक अधिकारों के बारे में सशक्त ढंग से निर्मला पुतुल की 'आदिवासी स्त्रियाँ', 'अपने गाँव आई रिसर्च टीम से', सुनीता कटोच की कविता 'अदिवासी महिलाएँ' आदि में कहा गया है।

समसामयिक समाज में आए परिवर्तन को बखूबी ढंग से कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है । रश्मि भारद्वाज की कविता 'बहनापा' क्वीर औरतों के अस्मितामूलक अधिकार संघर्षो को प्रस्तुत करती हैं । स्त्री लेखक अपने अस्मितामूलक अधिकारों को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। इससे जुड़ी समस्याओं एवं संघर्षो को बहुत बारीकी से नीलेश रघुवंशी ने 'कविता लिखनेवाली लड़की' नामक कविता में प्रस्तुत किया है। वृद्धाओं के अधिकार एवं अस्मिता से जुड़ी समस्याएँ अनामिका की 'वृद्धाएँ धरती की नमक है', सुनीता जैन की 'देसी माँ विदेशी में', 'समय नहीं', सारिका भूषण की 'उस वृद्धा की संदूकची में', कात्यायनी की 'बस स्टेशन पर दो बूढ़ी स्त्रियाँ', प्रियंका दुबे की 'रिहाई' आदि कविताओं में मिलती हैं। महिला कलाकारों की अस्मिता से जुड़े अधिकारों के संघर्ष को 'महिला कलाकार' नामक कविता में कवयित्री अनामिका ने बारीकी से प्रस्तुत किया है। यौन कर्मियों की अधिकार से संबंधित समस्याएँ ममता तिवारी की 'स्त्री की डायरी', कुसुम अंसल की 'वेश्या एक विवश नारी', अंकिता शाम्भावी की कविता 'वेश्याओं ने तुम्हें कभी प्यार नहीं की', सविता भार्गव की 'गालियाँ' जैसी कविताओं में द्रष्टव्य हैं। इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों ने कला,साहित्य आदि विभिन्न सामाजिक से जुड़ी हुई स्त्रियों के मानवाधिकारों के उल्लंघन पर सशक्त रूप से विचार व्यक्त किया है । दलित, आदिवासी, क्वीर, यौनकर्मी आदि के अस्मितामूलक अधिकारों के उल्लंघन को बखूबी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हथरस के दलित औरत के खिलाफ़ होनेवाले आक्रमण हो या मणिपुर में आदिवासी स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार यह सब समसामयिक समाज में स्त्रियों के अधिकारों के उल्लंघन से जुड़ी घटनाएँ हैं। इसलिए निस्संशय यह सकते हैं कि कवयित्रियों ने समसामयिक संसार की ज्वलंत समस्याओं को निडर होकर अपनी कविताओं के माध्यम से पेश किया है। जब तक समाज में

स्त्रियों के मानवाधिकार का उल्लंघन होता रहेगा तब तक इन कविताओं की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

संदर्भ-सूची

1. सर्वेश कुमार मौर्य, विमर्श की राजनीति, पृ. सं,.48.
2. International Journal of Arts, Humanities and Social Studies, p95.
3. प्रतिमान जनवरी – दिसंबर, 2021, पृ.सं.217.
4. ओमलता, नीले रंगों वाली देह, पृ.सं.47.
5. विधु कर्ति मैत्रेयी भनोत, तलाश, पृ.सं.22.
6. आभा भारती, धरती की धड़कन से, पृ.सं.44.
7. हंस, अगस्त 2022, विशेषांक भाग 1, पृ.सं.40.
8. https://minorityrights.org/communities/dalits
9. BBC News, 7 October 2020.
10. वसुधा (सं), स्त्री भूमिका का सपना, पृ.सं.38.
11. कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ.सं.144.
12. The Hindu, 29 July 2023
13. वसुधा (सं), स्त्री मुक्ति का सपना, पृ.सं.39.
14. वही, पृ.सं.40.
15. निर्मला पुतुल, नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.सं.24.
16. साधना आर्य, लता सिंह (सं), भारत में महिला आंदेलन, विमर्श और चुनौतियाँ पृ.सं.295.
17. वही, पृ.सं.325.
18. www.hindwi.org
19. www.hindwi.org

20. नीलेश रघुवंशी, घर निकासी, पृ.सं.24.

21. वही, पृ. सं,24,25.

22. Virginia Wolf, "That woman, then who was born with a gift of poetry in the sixteenth century' was an unhappy woman, a woman at strife against herself." –A room of one's own, p.42.

23. कात्यायनी, सर्पदंश और अन्य कविताएँ, पृ. सं,328.

24. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ.सं.48.

25. वही, पृ.सं.48.

26. साधना सहाय, लता सिंह (सं), भारत में महिला आंदोलन विमर्श और चुनौतियाँ पृ. सं,.270.

27. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ.सं.40.

28. वही, पृ.सं.41.

29. मृदुला सिंहा, मात्र देह नहीं है औरत, पृ.सं.122.

30. ममता तिवारी, और मीरा नाचती रही, पृ.सं.45.

31. मैत्रेयी पुष्पा, आवाज़, पृ. सं,89.

32. कुसुम लता अविचल, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक, पृ.सं.38.

उपसंहार

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ 'अनेकता में एकता' को संपोषित किया जाता है। भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समान रूप से अधिकार दिया है। मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो सभ्य समाज के सभी सदस्यों को प्राप्त हैं। समस्त मानव को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि का अधिकार है। मानवाधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियाँ हैं, जिसके बिना आम तौर पर कोई भी व्यक्ति व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से विकास पाने की आशा नहीं कर सकता। भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों एवं अधिनियमों में मानवाधिकार का उल्लेख मिलता है। मानवाधिकार का संरक्षण हर एक नागरिक का उत्तरदायित्व है। हर एक नागरिक का यह फ़र्ज बनता है कि वह अपने अधिकारों का संरक्षण करें, साथ ही दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन न करें। मानवाधिकार के इतिहास की ओर दृष्टि डाले तो पता चलता है कि मैग्ना कार्टा, द पेटिशन ऑफ राइट , संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता का घोषणा पत्र आदि इसके प्रमुख चरण हैं। यह न तो केवल अल्पसंख्यक के लिए है, न ही मात्र बहुसंख्यकों के लिए। यह पूरे मानव जाति के लिए बनाया गया है। मानवाधिकार के संरक्षण से जुड़कर भारतीय संविधान ने स्वतंत्रता, समता, शोषण के विरुद्ध अधिकार आदि पर बल दिया। संविधान एवं सरकार ने विभिन्न योजनाएँ एवं पद्धतियाँ तो अवश्य बनायी हैं, लेकिन इसका पालन किस हद तक होता है, यह गंभीर विषय है। समाज द्वारा 'हाशियेकृत' लोगों को अपने हक के लिए लड़ना पड़ता है, ताकि वे अपने अधिकारों का संरक्षण करें।

हमारे तथाकथित सामाजिक न्याय व्यवस्था में रहनेवाली स्त्री को अपने मानवाधिकारों के लिए लड़ाई खुद लड़नी पड़ती है। महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दृष्टियों से शोषण के पात्र हैं। उदारवादी नारीवादियों के अनुसार महिलाओं के शोषण एवं उत्पीड़न के प्रमुख कारण सामाजिक तौर-तरीके हैं, जो पुरुष को ऊँचा दर्जा देते हैं। मार्क्सवादी नारीवादियों ने पितृसत्ता और पूँजिवाद को आपस में जोड़ा। समाजवादी नारीवाद का अभिप्राय है कि पुरुषवादियों ने

पितृसत्तात्मक उत्पादन के केंद्र में महिलाओं के घरेलू श्रम को रखा। रेडिकल नारीवादियों का मत है कि 'निजी-सार्वजनिक' का विभाजन महिलाओं के शोषण को मान्यता देता है। वे उत्पीड़न के पितृतंत्र को पूर्ण रूप से मिटाना चाहते हैं। पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे के तहत जीनेवाली स्त्री की समस्याएँ बहुत ज्वलंत हैं। पितृसत्ता 'बाइनरी जेंडर' के तहत जीनेवाले व्यक्ति को ही 'अच्छा' ठहराता है। रूढ़िवादी 'जेंडर' को पितृसत्ता स्थापित करता रहता है। महिलाओं की लैंगिकता, श्रम, उत्पादकता, क्षमता, प्रजनन शक्ति आदि पर अपना हक जताता है। पितृस्थानीय निवास एवं वंशानुक्रमण के लिए मजबूर किया जाता है। यह उसके मानवाधिकार का उल्लंघन है।

महिलाओं पर होनेवाले अत्याचारों का मुख्य कारण समाज द्वारा लिंग और यौनिकता तथा उनके कर्तव्यों का निर्धारण है। सामाजिक अनुकूलन के ज़रिए स्त्री को 'स्त्री' बनाया जाता है। इसी निर्मिति के उत्पाद के रूप में स्त्रियों पर अत्याचार होता है। पुरुष को शोषक तथा स्त्री को शोषित बने रहने के लिए सामाजिक न्याय आदेश देता है। इसी कारण से पुरुष को यह लगता है कि वह स्त्री को कुछ भी कर सकता है। स्त्रियों पर बढ़ती लैंगिक उत्पीड़न, घरेलू दुर्व्यवहार, असम्मान हत्या, मार-पीट आदि इसके लिए उत्तम उदाहरण हैं। जन्म के पहले ही कन्या भ्रूणों की हत्या तो असहनीय है। यहाँ जन्म देनेवाली स्त्री को तथा इस दुनिया में आने से पहले ही भ्रूण को इसके दर्द को भुगतना पड़ता है। इसका भी मूल कारण समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाएँ एवं प्रथाएँ ही हैं। सोशल मीडिया में जिस प्रकार से स्त्रियों के खिलाफ़ साइबर अपराध होते हैं, उसमें आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि पितृसत्ता के वक्ता ही उसमें होते हैं, जिसके अंदर यह सोच भरी पड़ी है कि वह शोषक है और स्त्री शोषित है।

महिलाओं के श्रम से जुड़ी समस्याएँ कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। कामकाजी महिलाएँ, घरेलू श्रम करनेवाली महिलाएँ, यौन कर्मियाँ सभी को समान रूप से अपने अधिकार प्राप्त हो जाए। अपने कामकाजी क्षेत्र में बिना डरे काम करने का हक नागरिक का अधिकार है। लेकिन

कामकाजी क्षेत्र में स्त्रियों के खिलाफ़ दुर्व्यवहार होता है। पितृसत्ता कभी भी स्त्री द्वारा काम करना नहीं चाहता। इसीलिए ही पितृसत्ता के नकारात्मक अक्रामक दृष्टि से उसे अवश्य जूझना पड़ता है। आर्थिक रूप से स्वावलंबित नारी में अपने हक के लिए लड़ने की ताकत ज़्यादा होती है। यह पितृसत्तात्मक ढाँचे को पसंद नहीं है। वह हमेशा से उसको नीचा देखना चाहता है। पुरुष से पैसा माँगकर पुरुष के अधीन रहनेवाली स्त्री ही पितृसत्ता के लिए स्वीकार्य है। अगर स्वीकारता है तो अर्थ के अधिकारी पुरुष को ही होना है। स्त्री की अस्मिता को महत्व देना पितृतंत्र के बस की बात नहीं।

दलित एवं आदिवासी को समाज में अपना स्थान बनाना पड़ता है। उनका समाज से युद्ध तिहरी दृष्टि से है। लैंगिक, आर्थिक तथा जातीय इन तीनों दृष्टियों से भेदभाव झेलना पड़ता है। बिना वजह समाज द्वारा निष्कासित क्वीर औरत की स्थिति तो इससे भिन्न नहीं है। क्वीर के अंतर्गत आनेवाली स्त्री अनुरागी स्त्रियाँ (लेस्बियन), बाइसेक्सुअल स्त्री की समस्याएँ ऐसी हैं कि समाज उनकी यौनिकता को स्वीकारता नहीं। इन सबको अपनी अस्मिता के लिए लड़नी पड़ती है। स्त्री को सहनशील और चुप कराकर मात्र भाषण बनती नारी सशक्तिकरण समाज में द्रष्टव्य है। इसीलिए स्त्री को समाज में अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए खुद लड़ना पड़ता है।

समाज में जो कुछ भी घटता है, उसका साहित्य में प्रतिबिंब होना स्वाभाविक है। कविता साहित्य की वह सशक्त विधा है, जिसने समसामयिक समस्याओं को खुलकर लिखने का प्रयास किया। इक्कीसवीं सदी जिस प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिप्रेक्ष्य से गुज़र रही है, वह एक विचारणीय विषय है। आधुनिक काल की कविता भारतेंदु, द्विवेदी, छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता तथा अन्य काव्यांदोलनों से गुज़कर आगे आया। इक्कीसवीं सदी ने समाज में घटित घटनाओं के विभिन्न पक्षों जैसे कि संस्कृति और सभ्यता में बदलाव, बदलती मूल्यदृष्टि, पारिस्थितिक शोषण, प्रौद्योगिकी प्रेरित हिंसा, आदिवासी जीवन की स्थिति,

दिव्यांग जन की व्यथा, वृद्ध एवं कृषक जन की समस्या, लोकतंत्र की दशा आदि को अपनी कविताओं के माध्यम से सामने रखा। संस्कृति और सभ्यता के बदलते स्वरूप कुमार अंबुज की कविता 'नई सभ्यता की मुसीबत', बद्री नारायण की कविता 'नगाड़ा' आदि कविताओं में अभिव्यक्त हुए हैं। नई संस्कृति एवं सभ्यता किस प्रकार संस्कृति की स्थिति में घटाव ला रही है, वे वर्षा श्रीवास्तव की 'संवेदनशीलता', मनमोहन की 'देखते रहो', कुमार अंबुज की 'झंडा वंदन', चेतनक्रांति की 'मोक्षः इक्कीसवीं सदी', 'वे', 'दुनिया मर रही है' आदि में द्रष्टव्य हैं। भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण ने समाज का कब्जाकरण किया है। उसकी स्पष्ट झलक पंकज राग की 'भूमंडल की रात है', निलय उपाध्याय की 'मुझे पछाड़ दिया', कुमार अंबुज की 'खूबसूरत घर' एवं 'क्रूरता', अंजता देव की 'घर लौटना' आदि में मिलती है। समाज में व्याप्त अवसाद एवं आशावाद मुकेश कुमार की 'अवसाद', 'थका हारा', कात्यायनी की 'निराशा जैसी आशा' आदि कविताओं में मिलती है। प्रकृति के खिलाफ़ मनुष्यों द्वारा की गयी करतूतों के परिणामस्वरूप प्रकृति की विध्वंसात्मक प्रतिक्रियाएँ जैसे कि बाढ़, भूकंप आदि का आना तो स्वाभाविक है। पारिस्थितिक शोषण को इक्कीसवीं सदी के कविगण ने रेखांकित किया है। कवि केशव की कविता 'गज़ब हाल है', हरिश्चंद्र पाठक की कविता 'बचाना होगा', निशांत जैन की कविता 'पर्यावरण चेतना' आदि इसके लिए उत्तम उदाहरण हैं। प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन को वासुदेव शेष की 'परिवर्तन ही ज़िंदगी है', देवेश पथ सारिया की 'की वर्ड' आदि में अंकित किया है। समसामयिक समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता की ज्वलंत समस्या को इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों ने अभिव्यक्त किया है। राजेश जोशी की 'मारे जाएँगे', आलोक धन्वा की कविता 'सफ़ेद रात' आदि में सांप्रदायिकता के भयानक रूप को दर्शाया गया है। लोकतंत्र के बदलते स्वरूप एवं विकृत होती न्याय व्यवस्था का पर्दाफाश कात्यायनी की 'अपार खुशी का

मायावी लोकतंत्रिक गणराज्य', निशांत का 'झंड़ा ऊँचा रहे हमारा', त्रिपुरारि की 'वॉल ऑफ डेमोक्रेसी', पंकज चतुर्वेदी का 'राष्ट्रपति जी' आदि कविताओं में किया गया है।

इक्कीसवीं सदी में अस्मितामूलक विमर्शों की भरमार देखने को मिलती है। चाहे दलित, स्त्री, आदिवासी उनको समाज से अपने हक के लिए लड़ाई लड़नी पड़ती है , क्योंकि समाज ने उन्हें 'हाशिएकृत' किया है। जीवन का अर्थ होता है अपनी इच्छानुसार एक मूल्यवान ज़िंदगी जीना। कभी-कभार 'हाशिएकृत समाज' के साथ यह होता है कि उनका सामाजिक अनुकूलन किया जाता है कि वे शोषित बने रहें।

आदिवासी समाज के जीवन की स्थिति को सशक्त ढंग से निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, हरिराम मीणा आदि कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। निर्मला पुतुल की 'मेरा सबकुछ अप्रिय है', 'उनकी नज़र में' 'आदिवासी स्त्रियाँ', 'बिटिया मुर्मू के लिए', अनुज लुगुन की 'यह पलाश के फूलने का समय है' आदि सशक्त कविताएँ हैं। वृद्धाओं के जीवन की व्यथा को इस कालखंड की कविता ने बखूबी ढंग से रेखांकित किया है। अंजता देव की 'बूढे', राजकुमार तिवारी की 'मैं प्राचीन हो गया धरती पर', अशोक शाह की 'कहानी एक कही हुई', निरंजन श्रोत्रिय की 'पार्क के बूढे', नेहा नेरुका की 'चच्चा चल बसे' आदि कविताएँ वृद्धावस्था की दशा को प्रस्तुत करती हैं। कृषि प्रधान देश भारत के कृषकों की स्थिति का पर्दाफाश करनेवाली जेसिंता केरकेट्टा की 'सड़क पर किसान', निलय उपाध्याय की 'जा रहा हूँ', रामाज्ञा शशिधर की 'खेत' आदि हैं। दिव्यांग जन की स्थिति को भारतेंदु मिश्र की 'उडले साथी', डॉ.कुमार अजस्र की 'अयोग्य नहीं हैं हम' आदि में प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। इस कालखंड़ में नारी के अधिकारों के उल्लंघन पर आवाज़ उठाते हुए ज्यादातर कवयित्रियाँ आगे आने लगीं।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियाँ अपनी अस्मिता, अस्तित्व एवं अधिकारों के लिए लड़नेवाली स्त्रियों की आवाज़ बनीं। उन्होंने अपनी कविताओं में स्त्रियों के मानवाधिकार संबंधी

समस्याओं को बारीकी से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्त्री ही स्त्री के लिए बेहतर ढंग से लिख सकती है। जब स्त्री अपने बारे में लिखती है तो भोगे हुए यथार्थ का चित्रण मिलता है। जब पुरुष लिखता है, तो उसमें देखी या सुनी हुई बातें मिलने की संभावनाएँ ज़्यादा हैं।

पितृतंत्रात्मक नियंत्रण किस प्रकार स्त्रियों की ज़िन्दगी पर कब्जाकरण करता है तथा समाज द्वारा थोपी गयी विभिन्न भूमिकाओं एवं समस्याओं को इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। करमचंदाणी की 'आज़ादी', ज्योति चावला की 'जैसे कोई उदाज़ लौट आए दरवाज़े से', सुधा उपाध्याय की 'इसलिए कहूँगी मैं', मैत्रेयी पुष्पा की 'आवाज़', आमोलता की 'नीले रंगों वाली देह' आदि इनमें महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं में प्रमुख रूप से कवयित्रियों ने स्त्री को बोनसाई बनाने की साजिश, स्त्री की सहनशीलता एवं चुप्पी, विवाह संस्था एवं कन्यादान, अकेली स्त्री की सामाजिक स्थिति आदि को प्रस्तुत किया है। पितृसत्ता द्वारा जिस प्रकार वस्त्र पर अलिखित नियम थोपा जाता है उसका पर्दाफाश कवयित्रियों ने किया है। 'वस्त्र' जब अपने मतलबों से बाहर निकलकर किसी व्यक्ति या समाज द्वारा नियंत्रित रहने की उपाधि बन जाए, तो उसे प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति की इच्छा से बाहर 'नियंत्रण', किसी कार्य को करने के लिए मजबूर करता है, तो वह मानवाधिकारों का उल्लंघन है। कवयित्री कुसुम असंल की कविता 'बुर्का' में इस समस्या को सशक्त ढंग से संबोधित करती है।

महिलाओं पर होनेवाले अत्याचार को बेहतरीन ढंग से अपनी कलम रूपी औज़ार के माध्यम से कवयित्रियों ने प्रस्तुत किया है। महिलाओं के खिलाफ़ विविध प्रकार की हिंसाएँ होती हैं, जैसे कि शारीरिक हिंसा, यौन हिंसा, आर्थिक हिंसा, मानसिक हिंसा आदि। हानिकारक प्रथाएँ, कन्या भ्रूण हत्या, असम्मान हत्या, तेजाब हमला, बलात्कार, प्रौद्योगिकी प्रेरित हिंसा आदि इसके लिए उदाहरण हैं। ऑनर किलिंग या असम्मान हत्या को कात्यायनी ने 'खौंफनाक

शर्मिंदगी' में बखूबी ढंग से पेश किया है। कुसुमलता अविचल की 'कन्या भ्रूण हत्या', अल्का सिंह की 'एक लड़की की शिनाख्त' आदि कविताओं में इस दुनिया में जन्म लेने से पहले लड़की होने की वजह से मार दी गई कन्या के मानवाधिकार उल्लंघन पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। एक व्यक्ति का सुरक्षित स्थान सामान्यतः उसका घर होता है। उस घर में भी हिंसा झेलने के लिए मजबूरन स्त्री की स्थिति को सविता भार्गव की 'मैं अपनी औरत हूँ', ओमलता की 'नीले रंगों वाली देह' आदि कविताएँ दर्शाती हैं। तेजाब जैसे छूने पर हानि पहुँचाने वाले चीज़ों से हमला करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसके खिलाफ़ आक्रोश एवं प्रतिरोध कात्यायनी ने अपनी कविता 'खौंफनाक शर्मिंदगी' में प्रस्तुत किया है। ऑनलाइन या प्रौद्योगिकी प्रेरित हिंसा को क्षत्रिय दीपिका ने बहुत ही सशक्त ढंग से 'मेरे अल्फ़ाज़' में रेखांकित किया है। ओमलता की 'वह लड़की', कात्यायनी की 'खौंफनाक शर्मिंदगी' आदि कविताएँ बलात्कृत स्त्रियों की दयनीय स्थिति की ओर इंगित करती हैं।

आजकल भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं द्वारा कार्यबल के क्षेत्र में आना एक आम बात बन गई है। साथ ही 'निजी' क्षेत्रों में भी वे काम कर रही हैं। कामकाजी स्त्रियों को समाज से किस प्रकार की प्रताड़नाओं को झेलना पड़ता है, उसको पर्दाफाश करने का प्रयास कवयित्रियों ने किया है। महिला श्रम से जुड़कर विभिन्न कार्यस्थलों में काम करनेवाली स्त्रियों को अनेक समस्याओं को झेलना पड़ता है। आर्थिक स्वावलंबन और नारी के भोगे हुए यथार्थ को कवयित्रियों ने पेश किया है। नमिता सचान सुंदर की 'नानी की राजकुमारी', ज्योति चावला की 'बेबसी स्त्री है कुछ', अंबिका दत्त की 'दमित आकांक्षाओं का गीत', 'भावना की 'उड़ान', ममता तिवारी की 'स्त्री की डायरी' आदि इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

नारी अस्मिता एवं अधिकार को ज़ोरदार ढंग से इक्कीसवीं सदी की कविता ने प्रस्तुत किया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था जितनी पुरानी है यह संघर्ष बंधनों से मुक्ति की लड़ाई में तब्दील

हुआ है। स्त्री चाहे वह दलित हो, आदिवासी हो या क्वीर औरत (समलैंगिक एवं बाइसेक्सुअल) उसे अपनी अस्मिता के लिए लड़ना पड़ता है। हाल ही में घटित मणिपुर आदिवासी स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार हो या हथरस की दलित लड़की पर किया गया हमला, ये घटनाएँ हमारे समाज की दुस्थिति की ओर इंगित करती हैं। ओमलता की 'नीले रंगों वाली देह', अनुराधा सिंह की 'स्त्रियों का कुलनाम', आभा भारती की 'धरती की धड़कन से', रश्मि भारद्वाज की 'बहनापा' आदि कविताएँ स्त्रियों के अस्मितामूलक अधिकारों के लिए आवाज़ उठाती हैं।

निष्कर्ष रूप में उभरे हुए प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित हैं -

- स्त्रियाँ अपनी इच्छानुसार सुखमय जीवन जीने के लिए, तथाकथित सामाजिक न्याय के बारे में बार-बार सोचने के लिए मजबूर हैं। समकालीन स्त्री कविता में इस तरह के मानवाधिकार उल्लंघनों के खिलाफ़ सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।
- विधवा विवाह अधिनियम, दहेज प्रथा निवारण अधिनियम जैसे अधिनियमों की उपस्थिति के बावजूद समाज में स्त्रियों की असली स्थिति संवैधानिक प्रावधानों से कोसों दूर है। इक्कीसवीं सदी की स्त्री कविता इस स्थिति को प्रसारित करती है।
- समकालीन कवयित्रियों ने समाज में स्त्री को बचपन में 'बोनसाई' बनाकर तथा बड़ी होने पर महिमा मंडन रूपी छालाकी से उसके अधिकारों छीनने वाली दुस्थिति को दर्शाया है। समाज स्त्रियों की प्रश्नानुकूलता से कहीं न कहीं भयभीत है। कवयित्रियों ने स्त्रियों की चुप्पी के खिलाफ़ विद्रोह किया।
- पारिवारिक कष्ट एवं सारे दुखों का बोझ स्त्रियों को ही सहना पड़ता है। पारिवारिक ढाँचे के अंतर्गत उन्हें अपनी इच्छा के खिलाफ़ रेखा खींचनी पड़ती है। समकालीन स्त्री कविता पितृसत्ता द्वारा नियंत्रित पारिवारिक ढाँचे पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

- जब स्त्री पुरुष की सौंदर्य संकल्पनाओं एवं वासनाओं के अंतर्गत आती है, तो वह सौंदर्य की मूर्ति बन जाती है । पितृसत्ता के नियंत्रण से बाहर आने की कोशिश करे तो उसे तथाकथित सामाजिक न्याय द्वारा निर्धारित परिणामों को झेलना पड़ता है। स्त्री देह को मात्र देह समझकर उसपर अत्याचार करना शिक्षित समाज के लिए उपयुक्त नहीं है। समकालीन कवयित्रियों ने पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री देह से जुड़े अधिकारों के उल्लंघन को पर्दाफाश किया है।

- समाज का अलिखित नियम है कि स्त्रियों को पुरुषों के आकर्षण का पात्र न बनने के लिए उसे 'ढंग' के कपड़े पहनने होते हैं। यह ढंग पितृसत्ता द्वारा निर्धारित है। इसके कारण स्त्रियाँ अपनी इच्छानुसार वस्त्र पहनने के अधिकारों से वंचित हैं। इक्कीसवीं सदी की स्त्री कविता में वस्त्र के अधिकारों से वंचित स्त्री की स्थिति के खिलाफ़ विद्रोह है।

- मात्र भाषणों एवं सेमिनारों में कैद स्त्री सशक्तिकरण के मुद्दों को उससे आज़ाद करने की ज़रूरत है। समकालीन स्त्री कविता मात्र भाषणों में उल्लिखित स्त्री मुक्ति एवं संघर्ष पर व्यंग्य करते हुए स्त्रियों से अपने लिए संघर्षशील रहने सलाह देती है।

- इक्कीसवीं सदी की स्त्री कविता पितृसत्तात्मक विध्वंसकता पर प्रश्नचिह्न लगाती है। अपनी अग्रता को स्थापित करने के लिए पुरुष सत्तात्मक सोच द्वारा प्रशिक्षित पुरुष स्त्रियों पर हिंसा करते हैं। बलात्कार, तेजाब हमला, कन्या भ्रूण हत्या, ऑनर किलिंग, घरेलू हिंसा आदि इसी का परिणाम हैं।

- हथरस, मणिपुर, कोलकत्ता आदि जगहों में घटित घटनाएँ समाज में आजकल हो रहे दलित, आदिवासी एवं स्त्री अत्याचारों का चित्र प्रस्तुत करती हैं । समाज में दलित, आदिवासी, औरतों की समस्याओं को समकालीन कवयित्रियों ने स्पष्ट तरीके से कविता में

अंकित किया है। स्त्री कविता हाशिएकृत समाज की स्त्रियों की लैंगिक, आर्थिक एवं जातीय उत्पीड़नों पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

- समाज का विषमनियामक नियंत्रण समलैंगिक या उभयलैंगिक ज़िंदगियों पर थोपा जाता है। उन्हें अपने समाज द्वारा दी जानेवाली मानसिक एवं शारीरिक प्रताड़नाएँ झेलनी पड़ती हैं। उनके जीवन जीने के अधिकारों के उल्लंघन को समकालीन स्त्री कविता ने सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति दी है।
- इक्कीसवीं सदी की स्त्री कविता पितृसत्ता द्वारा निर्धारित भूमिकाओं का पालन न करके अपनी इच्छानुसार जीवन जीनेवाली महिला कलाकारों की स्थिति को अंकित करती है। पितृसत्ता के अनुसार यह उसकी पितृसत्ता द्वारा निर्धारित सामाजिक भूमिकाओं के खिलाफ़ है।
- निस्संशय कह सकते हैं कि समसामयिक स्त्रियों की समस्याओं एवं अधिकारों के उल्लंघनों को निडर होकर स्त्री कविता ने अभिव्यक्ति दी है।

संस्तुतियाँ (Recommendations)

संस्तुतियाँ (Recommendations)

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता समय और समाज का जीवंत दस्तावेज़ है। साहित्यिक विधाओं में कविता ने अपनी अलग पहचान बनाई है। समाज में व्याप्त समस्याएँ कविता में दृश्यमान हैं। मानव की जीवन स्थितियाँ ही समकालीन कविता का केंद्रित विषय रहीं। मानव होने के नाते जिस प्रकार के अधिकार मानव को मिलते हैं, उन्हें मानवाधिकार शब्द से अभिहित किया जाता है। मानवाधिकारों से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को समकालीन कविता ने अपने अंदर समेट लिया है। तत्कालीन समाज में स्त्रियों के मानवाधिकार से जुड़ी समस्याओं को कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने परंपरागत सिद्धांतों से हटकर अत्मानुभूति या स्वानुभूति को अधिक महत्व दिया। स्त्री ही अपने भोगे हुए यथार्थ का चित्रण बारीकी से लिख सकती हैं। किसी भी अस्मितामूलक समस्या को उस अस्मितागत इकाई ही बेहतर रूप से पेश कर सकती है। मानवाधिकार के स्त्री पक्ष का अध्ययन स्त्री कवयित्रियों की कविताओं के माध्यम से ही संपन्न हो सकती है। क्योंकि इसमें अनुभूतिजन्य यथार्थ का चित्रण है न कि देखा या सुना गया यथार्थ।

प्रस्तुत अध्ययन 'इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों की कविता में मानवाधिकार का स्त्री पक्ष' इक्कीसवीं सदी में उपलब्ध कविता संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मानवाधिकार के स्त्री पक्ष से जुड़ी कवयित्रियों की रचनाओं पर आधारित है। समाज के अभिन्न अंग होने के बावजूद स्त्रियों को अपनी हक की लड़ाई लड़नी पड़ती है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के दौरान इस विषय से जुड़कर अन्य शोध दिशाएँ भी मिली हैं, जिसपर स्वतंत्र रूप से शोध किया जा सकता है। कुछ प्रमुख मुद्दे इस प्रकार हैं –

- मीडिया में मानवाधिकार के स्त्री पक्ष का अध्ययन
- कात्यायनी की कविता में मानवाधिकार की अवधारणा का अध्ययन
- इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों की कविता की भाषा एवं शिल्पगत अध्ययन
- इक्कीसवीं सदी की हिंदी कवयित्रियों की कविता में वृद्धाओं का मानवाधिकार
- हिंदी कविता में पारिवारिक जीवन एवं मानवाधिकार
- स्त्री कविता में बाल विमर्श
- भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्त्रियों की स्थिति तथा मानवाधिकार - स्त्री कविता के संदर्भ में
- बदलती स्त्री दृष्टि एवं अधिकार - स्त्री कविता के विशेष संदर्भ में
- महिला श्रम एवं अधिकार - कविता के संदर्भ में
- वर्तमान समाज में हाशिएकृत औरत के अधिकार - स्त्री कविता के संदर्भ में
- धर्म एवं स्त्री अधिकार - स्त्री कविताओं के संदर्भ में
- स्त्री कविताओं में मानवाधिकार का स्त्री पक्ष : एक तुलनात्मक अध्ययन

सहायक ग्रंथ-सूची

कविता संग्रह

1. अंजता देव : राख़ का किला
वाग्देवी प्रकाशन,
संस्करण 2002

2. अंजना वर्मा : एक सीप देदो
अभिधा प्रकाशन
दिल्ली, संस्करण 2011

3. अज्ञेय : तार सप्तक
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
2000

4. अंबिका दत्त : दमित आकांक्षाओं का गीत
बोधि प्रकाशन, जयपुर
संस्करण 2000

5. अर्चना वर्मा : बस एक आंगन है चौकोर
ज्योति प्रकाशन
गाज़ियाबाद
संस्करण 2016

6. अनंत भटनागर : वह लड़की जो मोटरसाइकिल चलाती है
राधाकृष्ण प्रकाशन
संस्करण 2017

7. अनामिका : खुरदरी हथेलियाँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2005.

8.	अनामिका	:	बीजाक्षर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2019
9.	अनामिका	:	ढोकरी में दिगंत थेरी गाथा : 2014 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2015
10.	अनामिका	:	दूब -धान भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली संस्करण 2008
11.	अनामिका	:	पानी को सब याद था राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2019
12.	अनीता वर्मा	:	रोशनी के रास्ते पर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2008
13.	अल्का सिंहा	:	तेरी रोशनाई होना चाहती हूँ किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2008
14.	अनुज लुगुन	:	अघोषित उलगुलान राजमकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2023.
15.	आभा बोधिसत्व	:	सीता नहीं मैं वाणीप्र काशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019

16. आभा भारती : धरती की धड़कन से
ग्रंथ केतन, दिल्ली
संस्करण 2011

17. आलोक धन्वा : दुनिया रोज़ बनती है
राजकमल प्रकाशन
संस्करण 2014

18. आरती स्मित : माय ने होने के
वर्जिन साहित्य पीठ
संस्करण 2021

19. उमाशंकर चौधरी : कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
संस्करण 2009

20. उर्मिला जैन : देह से परे
नई किताब, दिल्ली
संस्करण 2018

21. ओमलता : नीले रंगोंवाली देह
ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2000

22. कंवल भारती (सं) : दलित निर्वाचित कविताएँ
इतिहासबोध प्रकाशन
जयपुर, संस्करण 2006

23. कात्यायनी : संपदंश और अन्य कविताएँ
चमन ऑफ़सेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली
संस्करण 2004

24.	कुमार अंबुज	:	अतिक्रमण राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2002
25.	कुमार अंबुज	:	अमीरी रेखा राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली संस्करण 2011
26.	डॉ. कुसुम अंसल	:	पंख एक भेंट राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट दिल्ली, संस्करण 2007
27.	कुसुमलता अविचल	:	अनुभूति से अभिव्यक्ति तक साहित्य रत्नाकर, संस्करण 2016
28.	गगन गिल	:	एक दिन लौटेगी लड़की राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2011
29.	जसिंता केरकेट्टा	:	ईश्वर और बाज़ार राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2022
30.	ज्योति चावला	:	माँ का जवान चेहरा पंचकूला प्रकाशन, हरियाना संस्करण 2013
31.	ज्योति चावला	:	जैसे कोई उदास लौट जाए दरवाज़े से वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2018

32. निर्मला पुतुल (अनुवादःअशोकसिंह) : अपने घर की तलाश में
रमणिका फाउंडेशन, दिल्ली
संस्करण 2004

33. निलय उपाध्याय : जिब हवेला
विजया बुक्स, दिल्ली
संस्करण 2013

34. निवेदिता : प्रेम मेंडर
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2017

35. नीलम रानी गुप्ता : रूह से कविता
अमन प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2018

36. नीलेश रघुवंशी : घर निकासी
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली,
संस्करण 1997

37. पंकज राग : यह भूमंडलीकरण की रात है
राजकमल प्रकाशन
संस्करण 2016

38. डॉ.पी.माणिक्यां मणि : महादेवी के काव्य में बिंब विधान
अन्नपूर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली
2011

39. बद्रीनारायण : खुदाई में हिंसा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2010

40. मनमोहन : जिल्लत की रोटी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2006

41. महादेवी वर्मा : संचयिता
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2008

42. ममता कालिया : खाँटी घरेलू औरत
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2004

43. मेधावी जैन : सृष्टि की आहटें
क्वालिटी बुक्स पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
कानपुर 2015

44. मैत्रेयी पुष्पा : आवाज़
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2004

45. रंजना जायसवाल : जब मैं स्त्री हूँ
नई किताब, दिल्ली
संस्करण 2016

46. राजेश जोशी : प्रतिनिधि कविताएँ
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2015

47. रामाज्ञा शशिधर : बुरे समय में नींद
अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद,
संस्करण 2004

48. वंदना देवेंद्र : आत्महत्या के पर्याय
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2010

49. वंदना झा : वरुणा का होना
अंतिका प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2015

50. विधु कीर्ति मैत्रेय भनोत : तलाश
दिव्यम प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2010

51. सविता भार्गव : किसका है आसमान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2012

52. सविता सिंह : अपने जैसा जीवन
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2003

53. सविता सिंह : खोई चीजों का शोक
राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली
संस्करण, 2021

54. सविता सिंह : नींद थी और रात थी
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2005

55. डॉ. साधना सहाय : भावदीप
विश्वभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2010

56. सुधा उपाध्याय : इस लिए कहूंगी मैं
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2013

57. सुनीता जैन : राग और आग
अनन्य प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2013

58. सुरभि नोगजा : तुम प्रेम हो
ऋषिमुनि प्रकाशन, उज्जैन, मध्यप्रदेश
संस्करण 2022

59. सुषमा कपिल : नवेली के पंख
क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स,
संस्करण 2017

60. सोनल : पता नहीं
अंतिका प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2015

61. हरिश्चंद्र पाठक : आदमी और पेड़
तेज़ प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2005

आलोचनात्मक ग्रंथ

हिंदी

1. अंबिली वी .एस : हिंदी साहित्य में मानवाधिकार
विद्याप्रकाशन
संस्करण 2019

2. अर्चना वर्मा, राजेंद्र यादव : अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2001

3. डॉ.अभिषेक प्रताप सिंह : स्वतंत्र्योत्तर हिंदी कविता और लोकतंत्र
(1950-1980),
माया प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2018

4. अनामिका : स्त्री विमर्श का लोक पक्ष
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2012

5. अरविंद जैन : औरत अस्तित्व और अस्मिता (महिला लेखन का समाज शास्त्रीय अध्ययन)
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
संस्करण 2001

6. अरविंद जैन : औरत होने की सज़ा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2016

7. अरविंद मोहन : लोकतंत्र का नया लोक
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2009

8. अशोक वाजपेयी : कविता क्या कहाँ क्यों
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2021

9. डॉ. उम्मेद सिंह इंदा : भारतीय लोकतंत्र की दशा और दिशा
पुरोहित प्रकाशन, राजस्थान
संस्करण 2009

10. ए.अरविंदाक्षन : समकालीन हिंदी कविता
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 1982

11. एकांत श्रीवास्तव : बढ़ई कुम्हार और कवि
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2013

12. के. वनजा : क्वीर विमर्श, लेस्बियन, गे, बाइ - सेक्सुअल,
ट्रांसजेंडर ,सतरंगीवाणी श्रृंखला
वाणी प्रकाशन
संस्करण 2021

13. कृष्ण कुमार : समकालीन कविता का बीजगणित
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2004

14. गायत्री माहेश्वरी : समकालीन कविता में स्त्री
संजय बुक सेंटर, गोलघर, वाराणसी
संस्करण 1998

15. चंद्रकांत बांदिवडेकर : कविता की तलाश
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2010

16. जगदीशनारायण श्रीवास्तव : इक्कीसवीं सदी कविता और समाज
अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2016

17. डॉ.जय जयराम उपाध्याय : (भूमिका) भारत का संविधान
संविधान [101वाँसंशोधन)अधिनियम, 2016
तकसंशोधित]

18. डॉ. जयप्रकाश पांडेय : आधुनिक हिंदी कविता में धर्म और संप्रदायवाद
परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2017

19. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' : स्त्री कवि कौमुदी, गाँधी - हिंदू –
पुस्तक - भंडार, प्रयाग
संस्करण 1961

20. डॉ. तारकेश्वर राय : मानव और पर्यावरण
आनंद प्रकाशन, कोलकत्ता
संस्करण 2010

21. दीपक कुमार पांडेय : दलित विमर्श और हिंदी साहित्य
लोकभारती प्रकाशन
अहमदाबाद, उत्तरप्रदेश, संस्करण 2017

22. नासिरा शर्मा : औरत के लिए औरत
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2003

23. डॉ. निर्मल कुमारी वाष्णेय : साहित्य के विविध आयाम
तिवारी प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी
संस्करण 2003

24. डॉ. नीता श्री ढौलतवर : हिंदी साहित्य बाल, युवा, वृद्ध तथा अन्य विमर्श
विनय प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2020

25. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन कविता नए प्रस्थान
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2014

26. पवनकुमार : भारतीय राजनीति की दशा (स्वतंत्रता से पूर्व)
वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011

27. डॉ. पी .ए .रघुराम : समकालीन हिंदी कविता और अस्मिता
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
संस्करण 2012

28. डॉ.पूरणमल : मानवाधिकार सामाजिक न्याय और भारत का संविधान
पोइंटर पब्लिकेशन, संस्करण 2010

29. डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत : पर्यावरण विमर्श और समकालीन हिंदी साहित्य
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2019

30. डॉ. प्रभाकर क्षोत्रीय : कविता की तीसरी आँख
नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली
संस्करण 2006

31. डॉ. प्रमोद कोवप्रत : समकालीन हिंदी कविता का तापमान
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
संस्करण 2011

32. डॉ. प्रमोद कोवप्रत (सं) : हिंदी साहित्य समय से साक्षात्कार
अमन प्रकाशन, कानपुर
2015

33. डॉ. प्रमोद कोवप्रत (सं) : साहित्य और संवेदना विविध आयाम
अमन प्रकाशन, कानपुर
2023

34. डॉ . प्रमीला.के .पी : अक्षरों के बीच गिरी औरत
अनन्य प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2016

35. डॉ. प्रमीला.के .पी : औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार (समकालीन स्त्रीपक्षीय कविता में मानवाधिकार की बहस)
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
संस्करण 2004

36. डॉ .फणीश सिंह : हिंदी साहित्यःएक परिचय
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2006

37. डॉ. बलदेव वंशी : नारीविमर्श आधी दुनिया का जलता संविधान
देशभारती प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2008

38. डॉ. भगवान गव्हाड : सामयिक साहित्य चिंतन के आयाम
साहित्यसागर, कानपुर
संस्करण 2014

39. डॉ .माधवी जाधव : इक्कीसवीं सदी का हिंदी काव्य
विद्याप्रकाशन, संस्करण 2013

40. मृदुला सिंहा : मात्र देह नहीं है औरत
सामयिक प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2012

41. रजना चावड़ा, विजय शिंदे, सुलक्षणा जाधव घुमरे : इक्कीसवीं सदी में हिंदी साहित्य स्थिति एवं संभावनाएँ
राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर,
संस्करण 2012

42. रमणिका गुप्ता : आदिवासी साहित्य यात्रा
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2018

43. रवींद्रनाथ मिश्र : इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य समय, समाज और संवेदना
लोकभारती प्रकाशन, अलाहाबाद, उत्तरप्रदेश
संस्करण 2011

44. राज किशोर : स्त्री के लिए जगह
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2017

45. राजेश्वर सक्सेना : उत्तर आधुनिक विमर्श
नई किताब, संस्करण 2020.

46. रामप्रसाद मिश्र : हिंदी की कवयित्रियाँ
प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली
संस्करण 1990

47. रेखा सेठी : स्त्री कविता पक्ष और परिप्रेक्ष्य,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2019

48. रेखा सेठी : स्त्री कविता : पहचान और द्वंद्व
राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली
संस्करण 2019

49. लता सिंह, साधना आर्य (सं) : भारत में महिला आंदोलन विमर्श और चुनौतियाँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2023

50. लीला दुबे : लिंगभाव का मनोवैज्ञानिक अन्वेषण
प्रतिच्छेदीक्षेत्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004

51. वर्जीनिया वुल्फ : अपना एक कमरा (अनुवाद: मोजेज माइकेल)
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2011

52. वसुधा : स्त्री मुक्ति का सपना
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2012

53. विनय विश्वास : आज की कविता
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2009

54. विश्वनाथ त्रिपाठी : मीरा का काव्य
मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली
संस्करण 1979

55. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिंदी कविता
लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 1982

56. डॉ. विश्वंभरनाथ गुप्ता : कविता का समाज शास्त्र
जवाहर पुस्तकालय
नई दिल्ली
संस्करण 2010

57. लेफ्टिनेंट डॉ. विष्णुदेव मल्लिक : इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक विमर्श
विकास प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2003

58. विष्णु नागर : कविता के साथ साथ
मेधाबुक्स, दिल्ली
संस्करण 2004

59. डॉ .वीणा ढाढे : समसामयिक साहित्य: चिंतन और चुनौतियाँ
अमन प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2015

60. शंभूनाथ : काव्य की नई दुनिया
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2010

61. शहनाज़ बानो : भक्तिकाव्य में पितृसत्ता और स्त्री विमर्श
अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली
संस्करण 2010

62. डॉ. शिवकुमार, सी एस हडपद : स्त्री कविता में मानवीय संवेदना
अमन प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2018

63. डॉ. के. श्रीलता विष्णु : इक्कीसवीं सदी के साहित्य की वैचारिकी
अमन प्रकाशन
कानपुर
संस्करण 2018

64. सच्चिदानंद सिंहा : भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2007

65. सर्वेशकुमार मौर्य : जनतंत्र के पक्ष में सोशल मीडिया की राजनीति
स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2019

66. सर्वेशकुमार मौर्य : लोकमत की राजनीति
स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2019

67. सर्वेश कुमार मौर्य : मानवाधिकार की राजनीति
स्वराज प्रकाशन
नई दिल्ली, 2019

68. सुधीर रंजन सिंह : कविता की समझ
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण 2018

69. सुमन राजे : हिंदी साहित्य का आधा इतिहास
भारतीय ज्ञानपीठ
संस्करण 2022

70. डॉ.सुमन सिंह : बदलते सामाजिक परिदृश्य एवं हिंदी साहित्य
विकास प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2016

71. डॉ. सुमित. पी. वी : अनामिका की कविताओं का संबोध्य
जवहर पुस्तकालय, दिल्ली
संस्करण 2012

72. सूरज पालीवाल : हिंदी में भूमंडलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध
शिलयन, दिल्ली
संस्करण 2008

अंग्रेज़ी

1. Alka Singh : Women in Muslim personal law
Ravat Publications, New Delhi, 1992

2. Bina Agarwal : Gender Challenges, property,
Family and the state
Oxford University press,2016

3. Declaration on the right and responsibility of individuals, groups and organs of society to promote and protect universally recognised human rights and fundamental freedoms, National Human rights commission, New Delhi, 2010.

4. Friedrich Engels : The origin of the family, private property and the state (Translated by Alickwest, 1942, Marx/ Engels Internet Archive (marxist.org) 1993, 1999, 2000.

5. Guidelines for police research personnel on various human rights issues, National Human rights commission, 2010

6. Kamala Bhasin : Understanding Gender, Women unlimited (an associate of Kali for woman), New Delhi, 2003

7. Mary Eagleton : Feminist literary criticism, Routledge, Newyork,2013

8. Mary Wollstone Craft : Vindication of rights of women Everyman's library, New York, Dover publications, Newyork,1996

9. Moi, Toril : Sexual/Textual politics, Feminist literary theory Routledge, London,2002

10. Naomi Black : Social Feminism Cornell University Press, Ithaca & London,1989

11. Prem Chowdary : Gender, power and identity Glorious printers, Delhi ,2019

12. Ranjit Guha : Subaltern studies Oxford University Press, Oxford 2011

13. Veena Poonacha : Gender within the human rights discourse
Research centre for women studies, SNDT Women's university, Bombay, 1995

14. Virginia Wolf : A Room of one's own
Feed books
Gutenberg. Org

मलयालम

1. ऐजास अहम्मद : उत्तराधुनिकता
चिंता प्रकाशन, 2022

2. सुधाकरन सी.बी : उत्तराधुनिकता
डी.सी.बुक्स
कोट्टयम, प्रकाशन 2000

3. कुडुंबम, समूहम्, स्त्रीपक्षनियमङल : एम.जी.एम.कौपुस्तकम
कैरली पब्लिकेशन
प्रकाशन, 2022

पत्र - पत्रिकाएँ

1. आजकल, अंक 2, जून 2018
2. आजकल, अंक 3, जुलाई 2018
3. आजकल, अंक 12, अप्रैल 2019
4. आजकल, अंक 21, मई 2019
5. आजकल, अंक 8, दिसंबर 2021
6. आजकल, अंक 11, मार्च 2022
7. आजकल, अंक 1, मई 2022
8. आजकल, अंक 2, जून 2022
9. आलोचना, अंक 12, जनवरी-मार्च 2003

10. आलोचना, अंक 13, अप्रैल-जून 2003

11. आलोचना, अंक 14, जुलाई -सितंबर 2003

12. आलोचना, अंक 56, अक्तूबर-दिसंबर 2016

13. आलोचना, अंक 57, जनवरी-मार्च 2016

14. किलोल, अंक 6, जून 2024

15. गर्भनाल पत्रिका, अंक 4, जून 2024

16. नयाज्ञानोदय, अंक 176, अक्तूबर 2017

17. नवकिरण, अंक 4, जुलाई -अगस्त 2022

18. पगडंडी साहित्य, अंक 2, अक्तूबर-दिसंबर 2023

19. पुष्पांजलि, अंक 53, जून 2024

20. बनास जन, अंक 51 जनवरी 2022

21. बनास जन, अंक 52, फरवरी 2022

22. बनास जन, अंक 53, मार्च 2022

23. बनास जन, अंक 54, अप्रैल 2022

24. बनास जन, अंक 55, मई 2022

25. बनास जन, अंक 57, अगस्त 2022

26. बनास जन, अंक 59, अक्तूबर 2022

27. बनास जन, अंक 61, दिसंबर 2022

28. मानवाधिकार : नई दिशाएँ, अंक 5, 2008

29. मानवाधिकार : नई दिशाएँ, अंक 6, 2009

30. मानवाधिकार : नई दिशाएँ, अंक 12,2015

31. मानवाधिकार : नई दिशाएँ, अंक 13, 2016

32. मानवाधिकार : नई दिशाएँ, अंक 14, 2017

33. मानवाधिकार : नई दिशाएँ, अंक 15, 2018

34. मेरीनिहारिका, अंक 4, जून 2024

35. लोटपोट ,अंक 2263, जून 24

36. वागर्थ, अंक 187, फरवरी 2011

37. वागर्थ, अंक 198, जनवरी 2012

38. वागर्थ, अंक 201, अप्रैल 2012

39. वागर्थ, अंक 204, जुलाई 2012

40. वागर्थ, अंक 209, दिसंबर ,2012

41. वागर्थ, अंक 211, फरवरी 2013

42. वागर्थ, अंक 213, अप्रैल 2013

43. वागर्थ, अंक 214, मई 2013

44. वागर्थ, अंक 215, जून 2013

45. वागर्थ, अंक 216, जुलाई 2013

46. वागर्थ, अंक 218, सितंबर 2013

47. वागर्थ, अंक 269, अक्तूबर 2013

48. वागर्थ, अंक 220, नवंबर 2013

49. वागर्थ, अंक 222, जनवरी 2014

50. वागर्थ, अंक 230, सितंबर ,2014

51. वागर्थ, अंक 232, नवंबर 2014

52. वागर्थ, अंक 341, अप्रैल 2024

53. वागर्थ, अंक 343, जून 2024

54. वीणा, अंक 1158, अप्रैल 2024

55. समांतर, अंक 9, जून 2024

56. साहित्य समय, अंक 25, जुलाई 2022

57. हंस, अंक 6, जनवरी 2013

58. हंस, अंक 11, जून 2014

59. हंस, अंक 2, सितंबर 2018

60. हंस, अंक 2, सितंबर 2021
61. हंस, अंक 3, अक्तूबर 2021
62. हंस, अंक 4, अक्तूबर 2021
63. हंस, अंक6, जून 2022
64. हंस, अंक 7, फरवरी 2022
65. हंस, अंक 10, मई 2023
66. हंस ,अंक 11, जून 2023
67. हंस, अंक 1, अगस्त 2023
68. हंस, अंक 8, मार्च 2024
69. हंस, अंक 9, अप्रैल 2024
70. हंस ,अंक 3 , अक्तूबर 2024
71. हंस, अंक 4 ,नवंबर 2024
72. India Today, August 12, 2024
73. India Today, November 4, 2024
74. ग्रंथालोकम, वोल्यम 76, सितंबर 2024 (मलयालम)

समाचार पत्र

1. कालवाड़ टाइम्स, 30 मई 2024
2. टाइम्स ऑफ इंडिया, 8 अप्रैल 2022
3. दि इंडियन एक्सप्रेस, 23 नवंबर 2022
4. दि हिंदू, 8 अप्रैल 2022
5. दि हिंदू, 26 नवंबर 2022
6. दि हिंदू , 7 जुलाई 2023
7. दि हिंदू, 29 जुलाई 2023
8. दि हिंदू , 28 नवंबर 2023

9. दि हिंदू, 7 दिसंबर 2023

10. दि हिंदू, 10 दिसंबर 2023

11. फ्रंट लाइन, 6 दिसंबर 2023

12. मलयाल मनोरमा, 11 दिसंबर 2023

13. मातृभूमि , 20 जनवरी 2023

वेबसाइट

1. cybercrime portal.gov.in
2. http://ginajournal.com/samakalin-sahitya
3. https://hindi.ipleaders.in/tejab-attacks-the-face-of-the-society-is-corruption/
4. https://.iemed.org/publication/the-role-of-social-media-in-the-fight-for-womens-rights/
5. https://indianfarmer.org
6. https://janchowk.com
7. https://labour.gov.in
8. http://notnul.com
9. www.amarujala.com
10. www.apnimaati.com
11. www.bbc.com
12. www.census.nic.in
13. www.coespu.org
14. www.epustakalay.org
15. www.garbhanala.com
16. www.goodreads.com
17. www.hindisamay.com
18. www.hindwi.org
19. www.jansatta.org

20. www.nhrc.nic.in

21. www.nwc.nic.in

22. www.parivartanpatrika.in

23. www.pdfbooks.ourhindi.org

24. www.rachanagar.org

25. www.streekal.com

26. www.streedarpan.com

27. www.socialstudies.journal.com

28. www.thehindu.com

29. www.unitedforhumanrights.in

30. www.wcd.nic.in

31. www.un.org

32. www.unwomen.org

33. www.population.org

परिशिष्ट

परिशिष्ट - I

NHRC Short term Internship Participation certificate

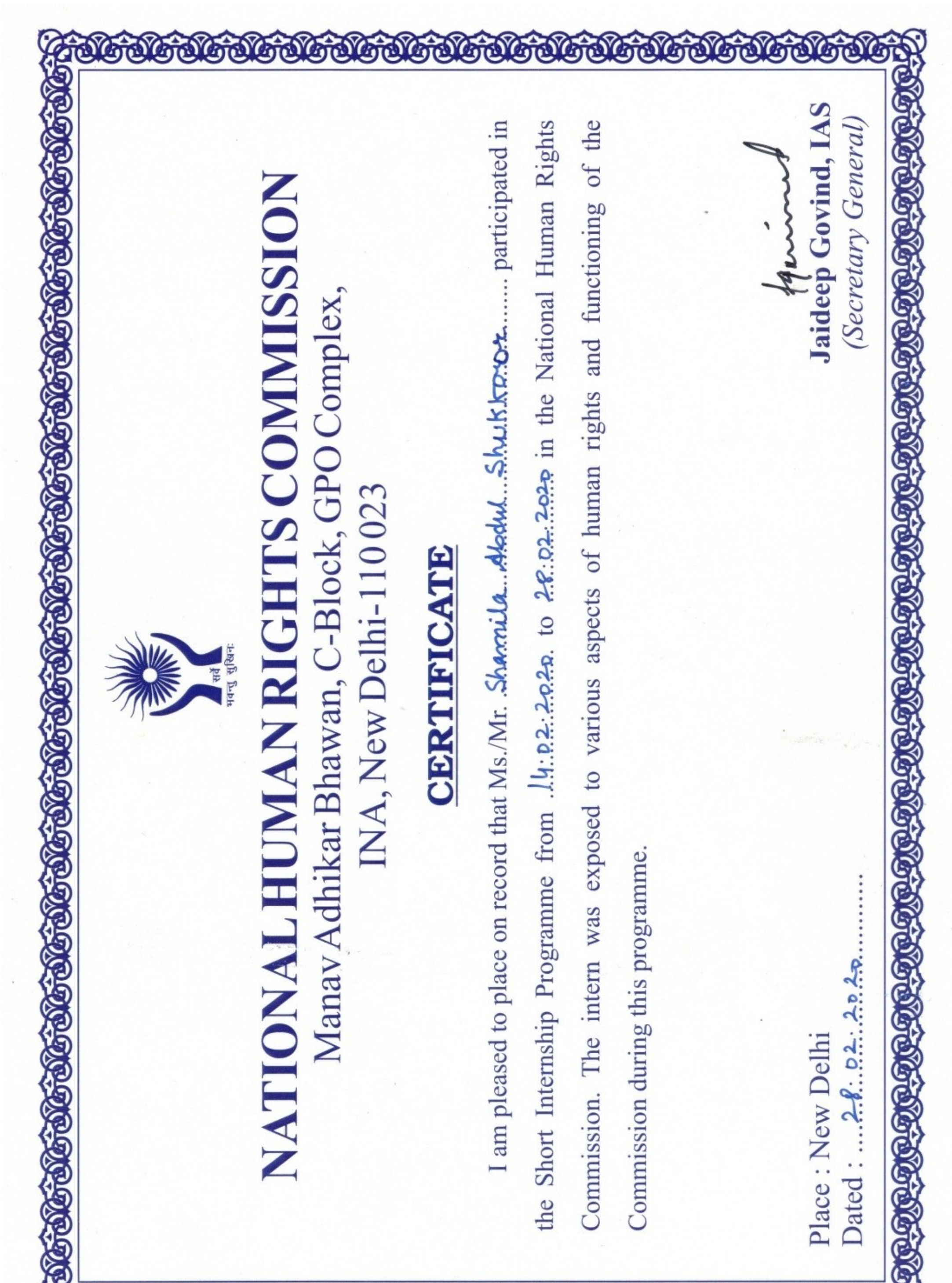

सर्वे भवन्तु सुखिनः

NATIONAL HUMAN RIGHTS COMMISSION

Manav Adhikar Bhawan, C-Block, GPO Complex,
INA, New Delhi-110 023

CERTIFICATE

I am pleased to place on record that Ms./Mr. Shamila Abdul Shukkoor....... participated in the Short Internship Programme from 14.02.2020 to 28.02.2020 in the National Human Rights Commission. The intern was exposed to various aspects of human rights and functioning of the Commission during this programme.

Place : New Delhi
Dated : 28.02.2020

Jaideep Govind, IAS
(Secretary General)

परिशिष्ट II

लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम की विभिन्न झाँकियाँ

14.02.2020 को न्यायमूर्ती श्री.पी.सी.पन्त, सदस्य, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी) द्वारा लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम का उद्घाटन

14.02.2020 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी) द्वारा संचालित लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम में भागीदार आयोग के सदस्य न्यायमूर्ती पी.सी.पन्त, श्रीमति अनिता सिन्हा और श्रीमान राज कुमार

14.02.2020 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी) द्वारा संचालित लघु अवधि इंटर्नशिप कार्यक्रम के दौरान सदस्यों के सामने अपने मुद्दों को प्रस्तुत करते हुए कालिकट विश्वविद्यालय की शोध छात्रा षामिला अब्दुल षुक्कूर

परिशिष्ट - III

REPORT

A DAY AT ASHA KIRAN SHELTER HOME

Date : 20/02/2020
Day: THURSDAY
Time : 10 AM to 4 PM

We started our journey to Asha Kiran by 10.30 a.m. and reached there by 11.30. We were directly taken to the auditorium where we got seated. Staffs of Asha Kiran were present there and the Superintend of the female wing – Rachana Bhardwaj gave us a brief introduction about Asha Kiran which included the basic functioning and structure of it. She told us that Asha Kiran was established in 1989 and it is comprised of two male and two female sections. The sanctioned strength of the shelter home is 590 but it is a fact that more than thousand people occupy there, which includes abandoned, destitute and orphans as well. She also explain about the different types of intellectual diseases and as a result they were divided into four categories they are **mild, moderate, severe and profound**. The patients with **Mild** mental retardation were provided with III to IV class education and the ones with **Model** mental retardation is provided with basis skill training. **Severe** mentally retarded where train to become self-reliant at least for small things and **Profound** were treated like babies with all time help. The home has its own medical care unit, which consists of medical staff available for 24 hours. If any major problem comes, the patients are taken to the nearby hospital. After the brief description of the home we got an opportunity to visit different and vibrant units of creativity by the inmates of Asha Kiran. The units were Pottery unit (मिट्टी बर्तन इकाई), Organic colour making (प्राकृतिक रंग निर्माण), Jewellery making unit (कृत्रिम आभूषण इकाई), Crafts unit (दस्तकला इकाई), Candle making (मोम बत्ती प्रशिक्षण), Clay modelling (मूर्ति कला) etc… After that we got a chance to interact with Dr. Dinesh Takar and some of the inmates Shefali (patient of down syndrome), Kiran (an autistic patient), as per directions and information provided by Dr. Dinesh Takkar. When we visited the control room we came to know that there are more than 25 CCTV cameras fixed there. After that we were asked to come back to the auditorium where we got entertained with wonderful dance performances of the specially abled children and some of our batchmates also joined them.

After the session we were provided with lunch.

Afternoon session was an interactive one in which we got chance to interact with the Head of the legal branch of Asha Kiran Ms. Sunita, Sharan Sing, Superintendent of the male wing and Superintendent of the female wing Ms. Rachana Bhardwaj. Sessions of the day ended by 4pm and we left for NHRC with thoughts and the major one that strikes my mind was the one exhibited on the wall which said "Troubles are often tools by which God fashions us for better things."

Shamila Abdul Shukkoor
Research Scholar
Dept. of Hindi
Calicut University

परिशिष्ट - IV

REPORT

A day at Tihar jail

Date : 25/02/2020
Day: TUESDAY
Time : 10 AM to 4 PM

We started our journey to Tihar jail from NHRC by 10.30 a.m. and reached there by 11.45 a.m. After going through the formal security checking we were allowed to enter inside the jail. As we entered the jail the beautiful garden there amazed us. Firstly we were taken to the **legal aid room** where the inmates of the jail were given counselling and together with that there was a video conferencing hall too. We came to know that none of the inmates were allowed to have legal aid on a day for not more than 15 minutes. After that on our way to fashion lab we met two South African sisters who were prisoners of the jail.

The fashion lab opened another world to the inmates, a world of creativity and talent. Fashion lab provided a three month internship course named 'Indian wear' in which the inmates have to attend exams. Currently they had 20 inmates as students over there as per the information provided by Ms.Kanchan, trainer, Fashion lab. The beautiful works of the Tihar pearl academy which included handmade block printings, Screen printings surprised us. There was a large screen printing machine inside the hall. The works were done by Ms. Anita, trainer, Tihar Pearl Academy and the trainees of that particular course. The jail had a library facility of its own and together with that e-library facility without internet was also made available to them. Beauty parlour and spa in the jail also provided courses for the prisoners and the customers for them where the officers and the prisoners. The courses to the prisoners were given to them according to their choice and qualification. The prisoners working there were provided with wages and it was directly credited to the account and they can use it by smart card to purchase things for them, as they can't keep money in their hands.

The creche project was the next interesting feature of jail. Kiran Bedi, firstly brought this initiative to the jail, which was an under six year old term project. It was an initiative from India vision foundation to save the next victims, the children. As we entered into the hall the children were there, we talked to little ones and had a good time with them. They sang songs and started dancing with us. They were very active and salute goes to the foundation and

trainers who train them. We got change to interact with Ms. Greeshma George, one of the trainers of the Creche project. Ms. Raju Mukharji was accompanying us to every section of the jail. She explained about the tree types of jail- Open, Semi open and Closed. In between a PP account office (prisoners property) was there, where the account details of the prisoners were kept. By reaching the end of the jail before the line office, we met Ms.Jyothi Choudhary, the assistant superintendent of police. She told us about the 10 bedded hospital facility, computer centre etc… The prisoners were allowed to make calls twice in a week. The Mulaiza ward was there for freshers where they were firstly taken to counsellors. The pregnant ladies were provided with prenatal and postnatal diets also. They were also given counselling for mood swings. The prisoners are allowed to watch TV from 6 p.m. to 11 p.m. Every barrel and each and every cell was provided with the TV and each cell has an emergency Bell of which they can make use in case of any emergency. Dermatologist, Otologist, Dentist, Psychiatrist etc…were made available to them on particular days of a week. Ladies were provided with sanitary napkins also. Among the prisoners 80% where under trials and 20 were convicted. After interacting with us Ms. Jyoti Chaudhari, we came out of the jail and were asked to go to the prison headquarters, where we got opportunity to meet the AIG and DIG of police. The Additional superintendent of Prison, Mr.Ajjay Bhatiai also interacted with students. The interactive session ended up by 3.00 p.m. and we left for NHRC with lots of memories of mixed feelings. The heart breaking scene of a father waiting for his child at ‘mulakat’-‘Pravesh’… yes I felt the same **‘Crime never pays’**.

Shamila Abdul Shukkoor
Research Scholar
Dept. of Hindi
Calicut University